उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

स्नातक (हिंदी) तृतीय वर्ष; षष्ठ सत्र

हिंदी आलोचना

BAHL(N)-350

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. रेनू प्रकाश मानविकी विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	प्रो.शिरीष कुमार मौर्य कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल
प्रो.प्रभा पंत हिन्दी विभाग एमबीपीजी कॉलेज, हल्द्वानी	डॉ. जगत सिंह बिष्ट हिन्दी विभाग सो. सिं. जी. विश्वविद्यालय, अल्मोडा
डॉ. शशांक शुक्ला एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डॉ. राजेन्द्र कैड़ा असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ. मंगलम कुमार रस्तोगी असिस्टेंट प्रोफेसर,हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	डॉ. अनिल कुमार कार्की असिस्टेंट प्रोफेसर,हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ. पुष्पा बुढ़लाकोटी असिस्टेंट प्रोफेसर,हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डॉ. शशांक शुक्ला एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल	डॉ. राजेन्द्र कैड़ा असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ. मंगलम कुमार रस्तोगी असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल	डॉ. अनिल कुमार कार्की असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ. पुष्पा बुढ़लाकोटी असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल	

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

नोटः - इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी स्थित सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।

संस्करण: 2025

प्रकाशकः उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139

मुद्रक :

ISBN -

BAHL (N)-350-1(004473)

हिंदी आलोचना BAHL(N)-350

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. शशांक शुक्ल सह-आचार्य हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	1,2,7,8,12,14
डॉ. मंगलम कुमार रस्तोगी सहायक प्राध्यापक हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	3,6
प्रो. शिरीष कुमार मौर्य आचार्य, हिंदी विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल	4,5,9,10
डॉ. शिव प्रकाश त्रिपाठी सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग, बुंदेलखंड कॉलेज, झाँसी	11
डॉ. राजेन्द्र कैड़ा सहायक प्राध्यापक हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	13

हिंदी आलोचना BAHL(N)-350

हिंदी आलोचना **पृष्ठ संख्या**

इकाई 1 – हिंदी आलोचना का विकास 4-11
इकाई 2 – भारतेंदु युगीन आलोचना 12-19
इकाई 3 –द्विवेदी युगीन आलोचना 20-36
इकाई 4 – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना 37-48
इकाई 5 – शुक्लोत्तर युग और हिंदी आलोचना 49-65
इकाई 6 – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और हिंदी आलोचना 66-79
इकाई 7 – डॉ. नगेन्द्र और हिन्दी आलोचना 80-86
इकाई 8 – डॉ. नंददुलारे वाजपेयी और हिंदी आलोचना 87-93
इकाई 9 – डॉ. रामविलास शर्मा और हिन्दी आलोचना 94-105
इकाई 10 – डॉ. नामवर सिंह और हिंदी आलोचना 106-117
इकाई 11 – डॉ. मैनेजर पाण्डेय और हिंदी आलोचना 118-138
इकाई 12 – गजानन माधव मुक्तिबोध और हिंदी आलोचना 139-146
इकाई 13 – समकालीन आलोचना 147-157
इकाई 14 – सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना 158-170

इकाई 1: हिंदी आलोचना का विकास

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 हिंदी आलोचना: परिचय
1.4 हिंदी आलोचना के विकास चरण
1.5 समकालीन आलोचना और आलोचक
1.6 हिंदी आलोचना: निष्कर्ष
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक / उपयोगी पाठय सामग्री
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.3 हिंदी आलोचना: परिचय

हिंदी आलोचना का इतिहास 140/145 वर्ष पुराना है। इस ढंग से इसे कविता, कहानी, नाटक आदि के मुकाबले नयी हिंदी विधा कहा जा सकता है, किंतु हिंदी आलोचना की चेतना व यात्रा इतनी सीमित नहीं है। कारण यह कि यह संस्कृत आलोचना के उत्तराधिकार से आगे बढ़ी है।

हम जानते हैं कि संस्कृत आलोचना का इतिहास दो हज़ार वर्ष से भी ज्यादा है। इस दृष्टि से हिंदी आलोचना की पारंपरिक यात्रा भी हज़ारों वर्षों तक चली जाती है। जिस प्रकार मनुष्य की यात्रा केवल उसके भौतिक शरीर की यात्रा तक नहीं चलती, उसी प्रकार साहित्यिक विधाओं की यात्राएँ भी केवल उस तक नहीं चला करतीं। हिंदी आलोचना की इस यात्रा में एक संदर्भ और जुड़ता है, वह है आधुनिक क्रिटीसिज़्म का | आधुनिक क्रिटिसिज़्म के फॉर्म या रूप को हिंदी आलोचना अपने विधा केलिए चुनती है और संस्कृत की आलोचना को अपनी चेतना यात्रा के लिए| यानी हिंदी की आलोचना पर संस्कृत आलोचना और पश्चिमी आलोचना विधा, इन दोनों का प्रभाव रहा है।

हिंदी आलोचना कहने से यहाँ हमारा आशय हिंदी साहित्य में लिखी गयी आलोचना से है। इसे एक प्रकार से आधुनिक भारतीय आलोचना की तरह ही देखे जाने की आवश्यकता है। हिंदी आलोचना की तरह ही बांग्ला आलोचना या गुजराती या मराठी आलोचना भी हो सकती है। हमारे कहने का

आशय यह है कि हिंदी आलोचना संज्ञा है, विशेषण नहीं | हम हिंदी साहित्यिक कृतियों पर लिखी गयी आलोचना को ही अपने केंद्र में रखेंगे और उसी की विकास यात्रा को समझने का प्रयास करेंगे। हिंदी आलोचना और संस्कृत की आलोचना में भेद करते हुए प्रायः कहा जाता है कि संस्कृत की आलोचना सिद्धांत केंद्रित रही है और हिंदी आलोचना कृति केंद्रित अर्थ यह कि एक के केंद्र में सैद्धांतिक आग्रह है और दूसरे के केंद्र में रचना को समझने का प्रयास | जब हम संस्कृत आलोचना शब्द का प्रयोग करते हैं तब हम संस्कृत के काव्यशास्त्र की बात कर रहे होते हैं। संस्कृत की काव्यशास्त्रीय आलोचना में काव्य की आत्मा का प्रश्न उठाया तथा काव्य हेतु, काव्य प्रयोजन, काव्य गुण, काव्य दोष आदि पर चर्चा की। इस आलोचना में साहित्यिक कृति का अस्वीकार नहीं है, अपितु साहित्यिक कृति को उच्च रूप में देखने की अभिलाषा है। काव्य गुण व काव्य दोष बिना कविता या काव्य को सामने रखे बिना हो ही नहीं सकता था। किंतु इन सब का अंतिम प्रयोजन काव्य की आत्मा के बहाने श्रेष्ठ कविता के मानक स्थिर करना था, स्वयं किसी कविता की समीक्षा करना न था। हालांकि ग्रन्थ यहाँ उपेक्षणीय न थे। हम जानते हैं कि अभिनवगुप्त ने आचर्य भरत मुनि के नाट्यशास्त्र की टीका अभिनव भारती नाम से लिखी थी| भरत मुनि के रस सूत्र की टीका भी भट्ट लोलल्ट, शंकुक, भट्ट नायक और अभिनव गुप्त करते हैं। अभिनवगुप्त ने स्वयं आनंदवर्द्धन के ध्वन्यालोक की टीका ध्वन्यालोक लोचनम के नाम से की थी| यानी टीका की समृद्ध परम्परा संस्कृत आलोचना में वर्तमान थी| इसलिए यह कहना कि संस्कृत आलोचना में ग्रन्थ केंद्र में नहीं थे, पूरी तरह से सच नहीं है। अलंकार पर लिखे गए प्रसिद्ध ग्रन्थ एक-दूसरे की टीकायें ही हैं। यहाँ अंतर समझने वाली बात यह है कि संस्कृत आलोचना का बल सैद्धांतिक समीक्षा पर ही ज्यादा रहा, व्यावहारिक समीक्षा पर नहीं | हिंदी आलोचना का यह प्रस्थान बिंदु था | यही कारण है कि भरतेन्दु हरिचंद्र के नाटक सम्बन्धी सैद्धांतिक आलोचना को बहुत से आलोचक आलोचना नहीं मानते। सैद्धांतिक आलोचना और व्यावहारिक आलोचना पर हम आगे विचार करेंगे, यहाँ हम हिंदी आलोचना की परम्परा को समझने का प्रयास करेंगे।

1.4 हिंदी आलोचना के विकास चरण

हिंदी आलोचना के इतिहास को हम विभिन्न चरण में बाँट कर अच्छे से समझ सकते हैं। यहाँ आलोचना की विकास परम्परा की समझ के लिए कुछ प्रमुख चरणों में विभक्त करना उचित होगा।

आधुनिक हिंदी आलोचना से पूर्व की आलोचना

हम जानते हैं कि आलोचना आधुनिक विधा है। किंतु ऐसा नहीं था कि हिंदी में आलोचना का कोई रूप प्रचलित ही न था। आधुनिक काल से पूर्व भी आलोचना अपने ढंग से प्रचलित थी, हाँ उसका स्वरुप थोड़ा भिन्न था। आधुनिक हिंदी आलोचना से पूर्व टीका प्रचलित थी। उदाहरण के लिए कालिदास की रचनाओं पर मल्लीनाथ की टीका। टीका की यह परम्परा संस्कृत आलोचना में तो प्रचलित थी ही, साथ ही मध्यकाल में भी हमें टीकायें देखने को मिलती हैं। भक्ति काल और रीति

काल में कुछ प्रमुख टीकायें मिलती हैं, जिनका नामोल्लेख करना उचित होगा| रामचरित मानस की बीसियों टीकायें भक्तिकाल में प्रचलित रहीं । मानस पर टिकाएं बाद के दिनों तक लिखी जाती रहीं। 20 वीं शताब्दी के विजया नन्द त्रिपाठी की टीका तक...यह क्रम चलता रहा| रीतिकाल के सरदार कवि द्वारा लिखित मानस-रहस्य को भी टीका -पद्धति के उदाहरण के रूप में स्वीकृत किया जाता रहा है। इस ग्रन्थ में काव्यांग परिचय और उदाहरण के सन्दर्भ से मानस की पंक्तियों की व्याख्या की गयी है। भक्तिकाल में ही नाभादास के भक्तमाल पर अग्रदास की टीका लिखी गयी| आचार्य विट्ठलनाथ जी द्वारा लिखित चौरासी वैष्णवन की वार्ता और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पर उनके शिष्य हरिराय की टीका चर्चित रही ही है। ये ग्रन्थ भक्तिकालीन टीका का निदर्शन कराते हैं। बिहारी सतसंई की टीका भी इस काल में बहुत हुई | बिहारी सतसईं पर लाल कवि की टीका प्रचलित रही। आधुनिक काल में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा बिहारी सतसई के भाष्य को टीका परम्परा के अवशेष के रूप में समझना चाहिए। रीतिकाल में कुलपति, श्रीपति, चिंतामणि त्रिपाठी और सोमनाथ द्वारा लिखित वचनिका, वार्ता, तिलक आदि में टीका परम्परा के रूप मिलते हैं। भक्ति काल और रीतिकाल में प्रचलित टीका की परम्परा मूलतः भाष्य के रूप में ही प्रचलित रही। इस समय तक आलोचनात्मक विवेक विकसित नहीं हुआ था, यही कारण था कि जब दो कवियों की कृतियों की तुलना करने का प्रश्न उपस्थित होता था, तब सूत्र कथनों से काम चलाया जाता था| उदाहरण के लिए हिंदी में प्रचलित कुछ सूत्र कथनों को देखें- 'सूर-सूर तुलसी ससी उड्गन केशव दास' **** "तुलसी गंग दुवो भये सुकविन के सरदार, उनके काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार", **** "और कवि गढ़िया, नंद दास जड़िया" आदि सूक्तियां भक्तिकालीन और रीतिकालीन आलोचना का कुछ निदर्शन कराती हैं। स्पष्ट है कि आधुनिक काल से पूर्व तक आलोचना की इस परम्परा में टीका पद्धति प्रचलित थी। इस पद्धति में कवियों की कविता की व्याख्या और उनकी प्रशंसा प्रचलित थी। इस पद्धति के साथ ही लक्षण ग्रंथों की परम्परा भी चल रही थी। रीतिकाल में लक्षण ग्रन्थ बहुत लिखे गए। केशव दास की कवि प्रिया, रसिक प्रिया, जसवंत सिंह का भाषा भूषण आदि ग्रन्थ को इसी क्रम में समझना चाहिए। इसी युग की आलोचना का प्रभाव सुक्ति कथन और तुलनात्मक कथनों में देखने को भी मिलता है, जिसका उदाहरण ऊपर दिया गया है। इस युग की आलोचना आधुनिक चेतना और हिंदी आलोचना वस्तुतः हिंदी आलोचना का सम्बन्धी बदली हुई स्थितियाँ थीं | दूसरे शब्दों में कहा जाए तो यह कि हिंदी आलोचना का संबंध आधुनिक चेतना से है... नवजागरण से है | नवजागरण ने पत्र -पत्रिकाओं के प्रकाशन की राह आसान की | अनायास नहीं कि भारतेन्दु युग की आलोचना के जन्म में पत्र -पत्रिकाओं की महती भूमिका थी |

भारतेन्दु के युग में हिंदी आलोचना का व्यवस्थित रूप देखने को मिलता है | इस आलोचना में जहाँ पत्र -पत्रिकाओं में पुस्तक समीक्षा का प्रारंभ होता है, वहीं इतिहास ग्रंथों में कवि परिचय के साथ उनके महत्त्व का प्रतिपादन करने वाली आलोचनाएँ भी भारतेन्दु युग में ही प्रारंभ हुई |

हिंदी आलोचना प्रारंभ करने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है | भारतेन्दु ने हिंदी कविता नामक आलोचनात्मक लेख लिखा | प्रारंभ में तो हिंदी आलोचना पुस्तक समीक्षा के रूप में ही रही, किंतु बाद में यह गंभीर रूप लेती गयी | बालकृष्ण भट्ट और बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन से प्रारम्भ होता है | इन दोनों ने 1886 ई में संयोगिता स्वयंबर की आलोचना हिंदी प्रदीप व आनंद कादम्बिनी में की | भारतेन्दु युग के अंत में 1896 ई में नागरी प्रचारिणी पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ | इस पत्रिका के माध्यम से शोध परक आलोचना का प्रारंभ हुआ| त्रैमासिक 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका के प्रकाशन 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका के प्रथम वर्ष में ही प्रकाशित गंगा प्रसाद अग्निहोत्री का 'समालोचना', बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' का 'समालोचनादर्श', अंबिका दत्त व्यास का 'गद्य काव्य मीमांसा' आदि लेख हिंदी समीक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के प्रकाशन से हिंदी में पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू श्याम सुंदर दास, अम्बिका दत्त व्यास, मिश्रबंधु जैसे धुरंधर लेखकों की प्रतिभा को विकसित होने का अवसर मिला। इसमें इतिहास, साहित्य, भाषा तत्त्व, पुरातत्व आदि के बारे में लेख प्रकाशित होने लगे और खोज संबंधी सामग्री भी पाठकों के सामने आने लगी। इसके अतिरिक्त 'सुदर्शन' (1900 ई.), 'सरस्वती' (1900 ई.) और 'समालोचक' (1902 ई.) जैसी पत्रिकाओं ने आधुनिक आलोचना को संवारने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना के विकास में सरस्वती पत्रिका की महत्वपूर्ण भूमिका रही है | वैसे तो सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन 1898 ई में ही प्रारंभ हो गया था, किंतु महावीर प्रसाद द्विवेदी के सरस्वती पत्रिका के संपादक बनने के साथ ही एक नए युग का सूत्रपात हुआ | आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का लेख कालिदास की निरंकुशता अपने ढंग का मौलिक आलोचनात्मक कार्य था | सन 1907 में पद्म सिंह शर्मा द्वारा लिखित बिहारी और शेख सादी की आलोचना से तुलनात्मक आलोचना का जन्म हुआ | इसी क्रम में मिश्र बंधु का हिंदी नवरत्न, पंडित कृष्ण बिहारी मिश्र का देव और बिहारी, लाला भगवान दीन का बिहारी और देव आदि पुस्तकें बिहारी और देव के झगड़े के कारण चर्चित रहीं | द्विवेदी युगीन आलोचना में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी आलोचना में रीतिवाद के विरुद्ध क्लासिक -नैतिक आलोचना को प्रतिष्ठित करने का कार्य किया | इसी ज़मीन पर हिंदी आलोचना में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना आगे बढ़ी |

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना का समय छायावाद का समय है | उनके महत्त्व के कारण हिंदी आलोचना का शुक्ल काल या शुक्ल युग कहा गया | आचार्य शुक्ल की तुलसीदास, सूरदास और जायसी पर लिखित आलोचनात्मक कृतियाँ अपने ढंग से विशिष्ट हैं | इन आलोचनाओं का संग्रह त्रिवेणी नामक पुस्तक में संकलित है | रस मीमांसा शुक्ल जी के काव्य शास्त्रीय लेखों का संग्रह है | शुक्ल जी द्वारा लिखित हिंदी साहित्य का इतिहास वस्तुतः अपने आलोचनात्मक विवेक के कारण चर्चित रहा है |

आचार्य शुक्ल की आलोचना दो प्रकार की रही है | एक सैद्धांतिक व दूसरी व्यावहारिक आलोचना | त्रिवेणी में आचार्य शुक्ल की व्यावहारिक आलोचना है और रस मीमांसा में सैद्धांतिक आलोचना |

हिंदी आलोचना को तार्किक व वस्तुनिष्ठ बनाने में शुक्ल जी का योगदान अप्रतिम है | वस्तुतः आचार्य शुक्ल से ही हिंदी आलोचना वैश्विक स्तर की होती है | किंतु आचार्य शुक्ल की आलोचना के अपने अंतर्विरोध भी कम नहीं हैं | कबीर को, विद्यापति को व छायावादी कविता को आचार्य शुक्ल सहानुभूति न दे सके | आचार्य शुक्ल की आलोचना के केंद्र में भक्तिकाव्य रहा है | इस ढंग से आचार्य शुक्ल के आलोचनात्मक प्रतिमानों के निर्माण में वर्तमान बोध तो है, किंतु वर्तमान साहित्य नहीं है | इस कारण आचार्य शुक्ल के अंतर्विरोध के कारण तीन बड़े आलोचक हिंदी आलोचना में आये - नन्द दुलारे बाजपेयी, डॉ नगेंद्र और हज़ारीप्रसाद द्विवेदी |

आचार्य नंददुलारे बाजपेयी को छायावादी कविता आंदोलन को प्रतिष्ठित करने का श्रेय दिया जाता है | छायावाद सम्बन्धी आपके लेख हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी नामक पुस्तक में संग्रहित हुए हैं | प्रसाद, निराला आदि कवियों को विश्व के बड़े कवियों में बाजपेयी जी स्थान देते हैं | छायावाद के अतिरिक्त बाजपेयी जी ने साकेत, गोदान आदि कृतियों पर भी लिखा है | जैनेन्द्र और अज्ञेय के साहित्य पर आपने सहानुभूति पूर्वक विचार किया है |

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी आचार्य शुक्ल के बाद के सबसे समर्थ आलोचक हैं| आचार्य शुक्ल के ऐतिहासिक दृष्टि, खासतौर से कबीर सम्बन्धी व भक्ति सम्बन्धी मतों पर द्विवेदी जी ने प्रश्न खड़ा किया| कबीर, सूरसागर, हिंदी साहित्य की भूमिका, कालिदास की लालित्य योजना आदि पुस्तकों के माध्यम से आचार्य द्विवेदी ने हिंदी आलोचना को समृद्ध किया| डॉ नगेंद्र इस दौर के महत्वपूर्ण आलोचक है| डॉ नगेन्द्र की आलोचना सुमित्रानंदन पंत नामक पुस्तक से प्रारंभ हुई| किंतु इसके पश्चात आप रीति काव्य और काव्यशास्त्र की ओर झुकते चले गए| साकेत एक अध्ययन, कामयनी के अध्ययन की समस्याएं, देव और उनकी कविता, रीतिकाव्य की भूमिका, रस सिद्धांत जैसी पुस्तकों के माध्यम से डॉ नगेंद्र ने हिंदी आलोचना को पर्याप्त समृद्ध किया|

डॉ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र रीतिकालीन वैदुष्य परम्परा के आचार्य-आलोचक हैं| बिहारी की वाग्विभूति, घनानंद कवित्त आदि कृतियों के माध्यम से विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने हिंदी आलोचना में रीतिकाल को समझने की नयी दृष्टि प्रदान की| शांतिप्रिय द्विवेदी की छायावादी आलोचक कहा गया है| छायावादी कविता पर सहानुभूति पूर्वक विचार करने की दृष्टि से आपको स्मरण किया जाता है |

अभ्यास प्रश्न)1

सही / गलत का चयन कीजिए |

1. हिंदी आलोचना के केंद्र में कृति केंद्रीयता रही है |
2. ध्वन्यालोक लोचन के रचनाकार अभिनवगुप्त हैं |
3. बिहारी सतसई की टीका लाल कवि ने लिखी है |
4. हिंदी आलोचना का संबंध पुस्तक समीक्षा से रहा है |
5. द्विवेदी युगीन आलोचना का संबंध हिंदी प्रदीप से रहा है |

मार्क्सवादी आलोचना

1936 ई में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना होती है| इसके पहले अधिवेशन की अध्यक्षता प्रेमचंद करते हैं| अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में प्रेमचंद ने साहित्य का उद्देश्य नामक भाषण पढ़ा| अपने उद्बोधन में प्रेमचंद ने ऐसे साहित्य की वकालत की थी, जो जगाये, न कि सुलाए| इसके बाद प्रगतिशील आंदोलन व प्रगतिगामी प्रवृत्तियों को नया बल मिला | पंत ने रूपाभ पत्रिका का संपादन प्रारंभ किया | प्रगतिवादी कविता आंदोलन भी 1936 के बाद चला | इन सब पर मार्क्सवादी विचार दर्शन व विचारधारा का बहुत प्रभाव रहा| मार्क्सवादी आलोचना के मूल में भी सामाजिक यथार्थ की भावना रही है| लेकिन मार्क्सवादी आलोचना का विस्तार स्वतंत्रता के पश्चात ही हुआ| हालांकि रामविलास शर्मा की निराला सम्बन्धी पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी| डॉ बच्चन सिंह की क्रांतिकारी कवि निराला का प्रकाशन काल भी 1946-48 के आसपास ही हुआ| रामविलास शर्मा की प्रेमचंद सम्बन्धी पुस्तक का प्रकाशन भी 1941 में हुआ था| अर्थ यह है कि प्रगतिशील आंदोलन ने मार्क्सवादी आलोचना को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योग दिया|

मार्क्सवादी आलोचना का प्रथम चरण अत्यधिक प्रतिक्रियावादी था | रांगेय राघव, प्रकाश चन्द्र गुप्त, शिवदान सिंह चौहान आदि आलोचकों में मार्क्सवादी कट्टरपन मिलता है | छायावादी कविता को दोयम दर्जे की कविता समझना, प्रेमचंद पर प्रश्न खड़ा करना तथा तुलसीदास को सामंतवादी कवि कहना, ये मार्क्सवादी आलोचना का प्राथमिक रूप है | डॉ रामविलास शर्मा के साथ मार्क्सवादी आलोचना गंभीर हुई | प्रेमचंद, प्रेमचंद और उनका युग, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, निराला, निराला की साहित्य साधना, आस्था और सौंदर्य, भाषा और समाज, भारत में अंग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद, पिछड़े हुए समाज और मार्क्सवाद जैसी कृतियों के माध्यम से हिंदी आलोचना को वैचारिक रूप से समृद्ध किया| डॉ रमेश कुंतल मेघ अपनी क्लिष्ट भाषा के कारण चर्चित रहे, किंतु उनकी आलोचना का उज्ज्वल पक्ष उनका ललित दृष्टि व विषय के साथ ही दर्शन, वास्तु आदि को साहित्य का भाग बना देने में भी निहित है | तुलसी आधुनिक वातायन से, रस सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र, मिथक शास्त्र, अर्थात सौंदर्य जिज्ञासा, सौंदर्य प्राश्निक जैसी अनेक महत्वपूर्ण कृतियों की रचना करके आपने आलोचना को व्यापक बनाया और नए शब्द दिये | डॉ शिवकुमार मिश्र भी प्रतिबद्ध आलोचक रहे हैं| मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्र, भक्ति आंदोलन और भक्तिकाव्य जैसी कृतियों से आपकी आलोचना दृष्टि का अच्छा परिचय मिलता है| डॉ नामवर सिंह चर्चित आलोचक रहे हैं| हिंदी के विकास में अपभंश का योगदान, छायावाद, हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां, कविता के नए प्रतिमान, कहानी नई कहानी, दूसरी परम्परा की खोज, वाद, विवाद, संवाद आपकी चर्चित आलोचनात्मक कृतियाँ रही हैं| डॉ निर्मला जैन ने भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र के तुलनात्मक रूप पर अच्छा कार्य किया है| हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी, रस सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र आपकी चर्चित रचनाएँ रही हैं |

1.5 समकालीन आलोचना और आलोचक

आलोचना आधुनिक पद है| उत्तर आधुनिकता ने आलोचक की जगह पाठक को केंद्रीयता प्रदान की| पाठ और पाठक को केंद्र में खड़ा करना उत्तर आधुनिकता की एक शैली, पद्धति है| उत्तर आधुनिकता में आलोचक की मृत्यु का नारा भी दिया गया| यही कारण है कि आलोचना का स्थान विमर्श लेते चले गए| दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि विमर्श ने वि-पाठ की वृत्ति को विकसित किया| | स्त्री विमर्श पर केंद्रित आलोचना, दलित विमर्श पर केंद्रित आलोचना एं भी खूब लिखी गयीं|

अभ्यास प्रश्न)२

टिपण्णी कीजिये|

आलोचना

.....

.....

.....

भारतेंदु हरिश्चंद्र

.....

.....

.....

मार्क्सवादी आलोचना

.....

.....

.....

1.6 हिंदी आलोचना: निष्कर्ष

प्रश्न है कि हिंदी आलोचना की प्राप्ति, मंजिल क्या रही है? हिंदी आलोचना लगभग 150 वर्ष की हो गयी है| इन वर्षों में हिंदी आलोचना पर्याप्त समृद्ध हुई| हिंदी आलोचना की उपलब्धियों पर प्रमुख रूप में विचार किया जा सकता है-

* हिंदी आलोचना में रामचंद्र शुक्ल, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे बाजपेयी, रामविलास शर्मा जैसे बड़े आलोचक रहे हैं | यह हिंदी आलोचना की समृद्ध विरासत का प्रतीक है |

* हिंदी आलोचना की प्रकृति अ सांप्रदायिक रही है| अमीर खुसरो, जायसी, रहीम, रसखान, सूफ़ी कविता को हिंदी आलोचना को केंद्रीयता प्राप्त हुई है|

* हिंदी आलोचना ने विमर्श को पर्याप्त स्पेस दिया है| दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श के माध्यम से नए प्रकार का सौंदर्यशास्त्र उत्पन्न हुआ|

* हिंदी आलोचना में सिद्धांत निर्माण का प्रयास भी हुआ है| सामवेदनिक साहचार्यता का सिद्धांत, रचना अंतराल का सिद्धांत जैसे प्रयास भी हिंदी आलोचना में हुए हैं|

* हिंदी आलोचना प्रगतिशील रही है| हिंदी जाति की चेतना को ऐतिहासिक ढंग से विकसित करने की दृष्टि से इसकी भूमिका को रेखांकित किया जा सकता है|

1.7 सारांश

हिंदी आलोचना संस्कृत आलोचना के दाय को लेकर विकसित हुई है| किंतु संस्कृत आलोचना की टीका परम्परा से आगे बढ़कर हिंदी आलोचना ने रचना के माध्यम से समाज के ऐतिहासिक सत्य का उद्घाटन किया है| भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्रारंभ हुई हिंदी आलोचना आज पाठक तक चली आई है| निश्चित ही हिंदी आलोचना प्रगतिशील और गतिशील रही है|

1.8 शब्दावली

रीतिवाद - काव्य को एक विशेष पद्धति पर लिखने की शैली
वर्तमानबोध - अपने युग व समय पर केंद्रित दृष्टि
वैदुष्य परम्परा - विद्वता की शास्त्रीय पद्धति व परम्परा
सौंदर्यशास्त्र - सौंदर्य की सैद्धांतिकी का शास्त्र

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1-सत्य 2-सत्य 3-सत्य 4-सत्य 5- असत्य

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिंदी आलोचना का विकास- नंदकिशोर नवल

1.11 सहायक / उपयोगी पाठय सामग्री

1. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली- डॉ अमरनाथ

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.हिंदी आलोचना के विकास क्रम पर निबंध लिखिए
2. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली पर विचार कीजिये |

इकाई 2 : भारतेन्दु युगीन आलोचना

इकाई की रुपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 हिंदी आलोचना का विकास और भारतेन्दु
2.4 भारतेन्दु युगीन हिंदी आलोचना
2.4.1 भारतेन्दु युगीन हिंदी आलोचना
2.4.2 भारतेन्दु की आलोचना दृष्टि
2.5 भारतेन्दु युगीन आलोचना का महत्त्व/अवदान
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

आधुनिक काल से हिंदी साहित्य में अन्य गद्य विधाओं का आगमन होता है | अन्य गद्य विधाओं को हम सुविधा की दृष्टि से कथेतर नाम दे देते हैं| प्रश्न है कि इन गद्य विधाओं के आगमन का वास्तविक कारण क्या था? युग सत्य का यथार्थ जब बंधे -बंधाएं रूप में अभिव्यक्त नहीं हो पाता, तब नये रचना रूप हमारे सामने आते हैं | नये रचना रूपों की उत्पत्ति के वस्तुगत कारण होते हैं| यही कारण है कि आधुनिक युग के माध्यम से निबंध, आलोचना जैसी रचना विधाएँ हमारे सामने आयीं|

हम जानते हैं कि रीतिकाल तक आलोचना संस्कृत आलोचना की पद्धति पर टीका रूप में हिंदी में वर्तमान थी ; किंतु पश्चिमी ढंग की आलोचना का विकास भारतेन्दु युग में ही हुआ| प्रश्न है कि यह आलोचना का पश्चिमी ढंग क्या है? जिस आलोचना में कृति के बहाने से सभ्यता समीक्षा का अनुशासनात्मक प्रयास किया जाता है, वह विधा आलोचना के रूप में विकसित हुई| ऐसा नहीं था कि आधुनिक आलोचना में सैद्धांतिक आग्रह या प्रयास न था, अपितु इसका केंद्र रचना बनती है| हिंदी आलोचना की विशेषता यह थी कि एक ओर तो यह संस्कृत आलोचना की सैद्धांतिक पद्धति स्वीकार्य करती है तो दूसरी ओर पश्चिमी आलोचना की व्यावहारिक पद्धति या कृति केंद्रित पद्धति | इस ढंग से आधुनिक काल व नवजागरण आलोचना के विकास के आधार बनते हैं|

भारतेन्दु युग नवजागरण का युग था | नवजागरण ने समाज सुधार, भाषा आंदोलन के साथ ही जन जागरण, धार्मिक -सांस्कृतिक जागरण के बड़े कार्य प्रारंभ किये| इन बड़े कार्यों के लिए समाचार पत्र व पत्रिकाएं भी प्रकाशित होनी प्रारम्भ होती हैं | अनायास नहीं कि भारतेन्दु युग की आलोचना में पत्र -पत्रिकाओं की महती भूमिका है| इस युग की आलोचना के प्रारम्भिक अंश को देखें तो एक तथ्य स्पष्ट हो जायेगा कि सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना दोनों इस युग में हुई है| भारतेन्दु की नाटक सम्बन्धित सैद्धांतिक आलोचना 1883 ई में होती है और बालकृष्ण भट्ट और बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन की आलोचना का समय 1985-86 के आसपास प्रारम्भ होता है| भारतेन्दु युग में वैसे तो काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ भी रचे गए, किंतु उनकी संख्या सीमित ही रही| इस सन्दर्भ में कविराजा मुरारिदान का जसवंत भूषण (1893 ई) एवं प्रताप नारायण साह का रस कुसुमाकर (1899 ii) आदि कुछ काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की रचना ही इस काल में हुई| इसी क्रम में भारतेन्दु का नाटक शीर्षक निबंध उल्लेखय है| भारतेन्दु ने पहली बार आलोचना में देश, काल, परिस्थिति का प्रश्न उठाया|

हमने पढ़ा कि भारतेन्दुयुगीन आलोचना और पत्रकारिता का गहरा सम्बन्ध है| भारतेन्दु युग में हिंदी की कई महत्वपूर्ण पत्रिकाएं निकलीं | यहाँ कुछ प्रमुख पत्रिकाओं का नामोल्लेख करना उचित होगा| भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पादित कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका तथा बालाबोधिनी पत्रिका निकली| बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी प्रदीप निकाला, प्रताप नारायण मिश्र ने ब्राह्मण | इसके अतिरिक्त बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन की आनंद कादम्बिनी तथा नागरी नीरद पत्र भी निकले | इस युग की अन्य पत्रिकाओं में भारत मित्र, सार सुधा निधि आदि की गणना की जा सकती है| मदन मोहन मालवीय जी ने हिंदुस्तान समाचार पत्र के माध्यम से नागारी लिपि का आंदोलन तेज किया | कहने का अर्थ यह कि भारतेन्दु युगीन साहित्य व आलोचना के विकास में पत्र -पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी | भारतेन्दु ने सबसे पहले पुस्तक समीक्षा प्रकाशित करनी प्रारंभ की | हरिश्चन्द्र चन्द्रिका के मुख पृष्ठ पर पत्रिका में प्रकाशित होने वाले विषयों की सूची के अंत में 'आलोचना संभूषिता लिखा होता था | यह तथ्य इस बात का संकेत है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आलोचना के महत्त्व से परिचित थे|

भारतेन्दु युगीन आलोचना के सन्दर्भ में एक तथ्य समझने का है कि 1880 तक आलोचना का स्वरुप सैद्धांतिक व परिचयात्मक ही था | भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का नाटक सम्बन्धी निबंध 1883 ई का ही है| वस्तुतः व्यावहारिक समीक्षा का प्रारंभ बालकृष्ण भट्ट और प्रेमघन से ही मानी जानी चाहिए| बालकृष्ण भट्ट और प्रेमघन ने 1886 ई में प्रकाशित लाला श्रीनिवास दास ने नाटक संयोगिता स्वयंबर की आलोचना हिंदी प्रदीप व आनंद कादम्बिनी में की | हिंदी प्रदीप में तो आलोचना के नियमित स्तम्भ छपते ही रहते थे| बालकृष्ण भट्ट ने घोषित किया -साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' | यह एक आलोचनात्मक दृष्टि थी| इसी प्रकार भारतेन्दु युग के सम्पूर्ण साहित्य में व्यंग्य की धारा अंतरव्याप्त है| 1893 ई में स्थापित नागरी प्रचारिणी सभा ने हिंदी आलोचना को एक नया रूप प्रदान किया| सभा की ओर से ही 1896 में नागरी प्रचारिणी पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ होता है| इस पत्रिका ने शोध परक

आलोचना को जन्म दिया| नागरी प्रचारिणी पत्रिका के प्रारंभिक अंकों में ही गंगा प्रसाद अग्निहोत्री का समालोचना, अम्बिका दत्त व्यास का गद्य काव्य मीमांसा, जगन्नाथ दास रत्नाकर का समालोचनादर्श जैसे लेख प्रकाशित हुए| ये लेख शोध आलोचना को स्थापित करते हैं, जिनका विकास आगे चलकर पर्याप्त हुआ|

2.2 उद्देश्य

हिंदी आलोचना सम्बन्धी पुस्तक की यह द्वितीय इकाई है| इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

* हिंदी आलोचना के विकास क्रम को समझ सकेंगे
* भारतेन्दु युगीन आलोचना को समझ सकेंगे
* भारतेन्दु युग के प्रमुख आलोचकों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे
* भारतेन्दु युगीन आलोचना पद्धति को जान सकेंगे|

2.3 हिंदी आलोचना का विकास और भारतेन्दु

2.31.1 हिंदी आलोचना और पत्र- पत्रिकाएं

हिंदी आलोचना के विकास में पत्र- पत्रिकाओं की विशिष्ट भूमिका रही है| भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, हरिश्चन्द्र मैगजीन आदि पत्रिकाओं की हिंदी आलोचना के विकास में विशिष्ट योगदान है| प्रारंभ में इन पत्रिकाओं में कविताएं छपती थीं, फिर गद्य छपने लगा| इन पत्रिकाओं ने पुस्तक समीक्षा की प्रवृत्ति को विकसित करने में योग दिया| भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1873 ई में हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में लिखा था- हिंदी नयी चाल में ढली| भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी प्रदीप का प्रकाशन किया तथा बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन ने आनंद कादम्बिनी और नागरी नीरद एवं प्रताप नारायण मिश्र ने ब्राह्मण नामक पत्र निकाला|

2.3.2 हिंदी आलोचना और भारतेन्दु

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रेरक व्यक्तित्व थे| उन्होंने साहित्य और समाज को एक धरातल प्रदान किया| आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतेन्दु के योगदान को याद करते हुए लिखा है-" समाज आगे जा चुका था, किंतु साहित्य पीछे चला आ रहा था| भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य को समाज से जोड़ा तथा समाज की धारा के साथ साहित्य को मिलाया|" स्पष्ट है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र युगान्तकारी व्यक्तित्व थे|

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविता, नाटक के साथ ही हिंदी की कई कथे तर विधाओं को भी जन्म दिया| कवि के रूप में आपने मुख्यतः ब्रजभाषा में ही रचना की है| वस्तुतः भारतेन्दु का सर्वाधिक योगदान नाटक, निबंध और आलोचना विधा में ही समझना चाहिए| भारतेन्दु ने मौलिक नाटकों की रचना करने के अतिरिक्त नाटकों का अनुवाद भी किया है| बांगला नाटकों के अतिरिक्त भारतेन्दु ने अंग्रेजी नाटक

मर्चेंट ऑफ़ वेनिस का अनुवाद भी किया था| भारतेन्दु ने नाटक तो रचे ही हैं, साथ ही नाटकों के मंचन में भी अपना योगदान दिया है| बनारस के नाट्य थिएटर की स्थापना में भी भारतेन्दु का योगदान महत्वपूर्ण है| भारतेन्दु के नाटक सम्बन्धी चिंतन का निचोड़ उनका नाटक सम्बन्धी आलोचना है| कई बार प्रश्न उठाया गया है कि आधुनिक साहित्य का प्रवर्तन नाटकों से ही क्यों हुआ? रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इस प्रश्न का समाधान तलाशते हुए लिखा है कि नाटक सामूहिक आस्वाद की विधा है| वस्तुतः भारतेन्दु का नाटक सम्बन्धी आलोचना हिंदी आलोचना का प्रस्थान बिंदु है|

2.4 भारतेन्दु युगीन हिंदी आलोचना

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नाटक सम्बन्धी चिंतन ग्रन्थ रचा, जो 1883 ई में प्रकाशित हुआ| भारतेन्दु ने अपने नाटक सम्बन्धी अध्ययन में लिखा है कि- रुग्णावस्था के कारण वे इसे पूरी तरह निदोष नहीं बना सके हैं। इसीलिए उन्होंने यह अनुरोध भी किथा 'आशा है कि सज्जनगण गुण मात्र ग्रहण करके मेरा काम सफल करेंगे' (भारतेन्दु हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास की दिशा / 13)

पुस्तिका का आरम्भ बहुत स्पष्ट रूप में 'नाटक' को परिभाषित करते हुए किया कथा है 'नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया। पर कहते हैं विद्या के प्रभाव से अपने वा किसी वस्तु के स्वरूप को फेर देने वाले को, वा स्वयं दृष्टि रोचन के अर्थ फिरने को।' ***फिर वे पात्रों के वेशविन्यास और रंगभूमि की चर्चा करते हैं। वे विस्तारपूर्वक संस्कृत नाटकों के विभिन्न भेदों का उल्लेख करते हुए-नाटक, एकरण, भाण, व्यायोग, डिम, अंक, प्रहसन, नाटिका आदि वे आधुनिक नाटकों तक आले हैं। आधुनिक पाठ्य रचना के उद्देश्यों का उल्लेख करते हुए वे नाट्य विधान की चर्चा भी करते हैं। वे नाटक में चित्रपटी और यवनिका के महत्व पर भी प्रकाश डालते हैं। प्राचीन संस्कृत नाटकों में इनके उपयोग की सम्भावनाओं पर विचार करते हुए वे लिखते हैं, 'यद्यपि महामुनि भरत प्रणीत नाट्यशास्त्र में चित्रपट द्वारा प्रासाद, वन, उपवन, विम्बाशैल, प्रभृति की प्रतिच्छाया दिखाने का कोई नियम स्पष्ट नहीं लिखा है, किन्तु अनुधावन करने से बोध होता है कि तत्काल में भी अन्तःपटी परिवर्तन द्वारा वन-उपवन वा पर्वतादि की प्रतिच्छाया अवश्य दिखाई जाती थी। ऐसा न होता तो पौर जनपद वर्ग के अपवाद भय से श्री रामकृत सोतापरिहार के समय में उसी रंगस्थल में एक हो बार अयोध्या का राज प्रसाद और फिर उसी समय वाल्मीकि का तपोवन कैसे दिखलाई पड़ता, इससे निश्चय होता है कि प्रतिकृति (Scenes) द्वारा पूर्वकाल में यह सब अवश्य दिखलाया जाता था। ऐसे ही 'अभिज्ञान शाकुंतल' नाटक के अभिनय करने के समय सूत्रधारे एक ही स्थान में रहकर परदा बदले बिना कैसे कभी तपोवन और कभी दुष्यन्त का राज प्रासाद दिखला सकेगा'| इसी आधार पर भारतेन्दु चित्रपट को नाटक के लिए अत्यन्त प्रयोजनीय वस्तु मानते हैं जिसके बिना नाटक अत्यन्त नीरस होता है।

अपनी इस मुस्तिका में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र संस्कृत के कालिदास, भवभूति, शूद्रक, विशाखदच आदि नाटककारों का मूल्यांकन भी करते हैं। इन प्रमुख नाटककारों के अतिरिक्त उन्होंने श्रीहर्ष, राजशेखर, जयदेव आदि नाटककारों के नाटकों की चर्चा भी को है। नाटकों को एक सूची देते हुए उन्होंने अलग-

अलग चिन्हों द्वारा इन नाटकों के प्रकाशित' होने और अपने पढ़े या न पढ़े होने में अन्तर भी किया है। इसके बाद 'अथ भाषा नाटक' के अंतर्गत उन्होंने हिन्दी नाटकों की चर्चा की है। वे मानते हैं कि हिन्दी भाषा में वास्तविक नाटकों को रचना को पच्चीस वर्ष से अधिक का समय नहीं हुआ है। इस क्रम में आरम्भ में उन्होंने कुछ ऐसे नाटकों का उल्लेख भी किया है जो नाटक के रूप में लिखे जाकर भी नाटक की शर्तों को पूरा नहीं करते। ऐसे नाटकों में वे नेवाज कवि के 'शाकुंतल', ब्रजवासीदास के 'प्रबोध चंद्रोदय', देवकवि के 'देवभाषा प्रपंच', रीवां नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह के 'आनन्द रघुनन्दन' आदि का उल्लेख करते हुए लिखते हैं, 'नाटक यद्यपि नाटक रीति से बने हैं किन्तु नाटकीय यावत नियमों का प्रतिपालन उनमें नहीं है और (ये) छंद प्रधान ग्रंथ है'... विशुद्ध नाटक के रूप में लिखित नाटकों में, जिनमें पात्र प्रवेश आदि नियमों का पालन हुआ है हिन्दी के प्रथम नाटक के रूप में वे भारतेन्दु पिता कविवर गिरिधर दास के 'नहुष नाटक' का उल्लेख करते हैं। उसके बाद वे लक्ष्मण सिंह के 'शकुंतला नाटक' का उल्लेख करते हैं। अपने पिता के सन्दर्भ में, अंग्रेजी न जानते हुए भी वे उनके परिष्कृत विचारों की चर्चा गर्व से करते हैं। वे वैष्णव थे और अपने प्रगतिशील विचारों के कारण ही उस काल में लोकनिन्दा की चिन्ता किए बिना उन्होंने पुत्री को स्कूल भेजा था। इन नाटकों की चर्चा के बाद वे अपने 'विद्यासुन्दर' और लाला श्री निवासदास के 'तप्ता संवरण' का उल्लेख करते हैं। इन नाटकों के सन्दर्भ में उनकी टिप्पणी है, 'यद्यपि हिन्दी भाषा में दस-बीस नाटक बन गए हैं किन्तु हम यही कहेंगे कि अभी इस भाषा में नाटकों का बहुत ही अभाव है। आशा है कि काल की क्रमोन्नति के साथ ग्रन्थ ही बनते जायेंगे और अपनी सम्मति शालिनी ज्ञान वृद्धा बड़ी बहन बंगभाषा के अक्षयरत्न भांडागार की सहायता से हिन्दी भाषा बड़ी उन्नति करें।...' | स्पष्ट है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की आलोचना दृष्टि गंभीर है व संस्कृत और यूरोप की नाट्य परम्पराओं से भिज्ञ होकर विकसित हुई है|

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक सम्बन्धी निबंध के संबंध में यह बात स्मरण रखने की है कि भारतेन्दु ने बहुत तैयारी के साथ अपनी आलोचना दृष्टि का विकास किया है| भरत मुनि के नाट्यशास्त्र का व्यवस्थित अध्ययन करने के साथ ही उनकी दृष्टि पश्चिमी नाट्य सिद्धांतों पर भी रही है| भारतेन्दु की आलोचना पर देवेंद्र राज अंकुर ने लिखा है कि - भरत के वाद भारतेन्दु ही पहले ऐसे व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं, जो स्वयं ही सिद्धांत कार भी हो, रचनाकार भी हो और प्रयोक्ता भी हो... " | आगे अंकुर जी लिखते हैं कि-") यूरोप में ऐसे त्रिआयामी व्यक्तित्व वाला व्यक्ति उनकी दृष्टि में, वॉल्ट ब्रेश्ट ही है। स्तानिस्लावस्की नाटककार नहीं थे, मात्र प्रयोक्ता और सिद्धान्तकार थे। इसी दृष्टि से वे नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरत से भी भारतेन्दु को अधिक महत्व देते हैं। भारतेन्दु के इस निबन्ध के सन्दर्भ में उनकी टिप्पणी है, 'इनके विपरीत, भारतेन्दु न केवल एक शास्त्र की रचना करते हैं, वरन् उस शास्त्र में विवेचित सिद्धान्तों के आधार पर नाटकों के प्रयोग कैसे किए जाएँ, इसकी भी बार-बार चर्चा करते हैं। तीसरी और सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण बात यही कही जा सकती है कि आज के भारतीय रंगमंच में जिस प्रकार से प्राचीन और आधुनिक पूर्वी और पश्चिमी नाट्य परम्पराओं और रंग-शैलियों के आपसी मेलजोल से जिस नए, ताजे भारतीय रंगमंच की खोज का काम पूरे जोर-शोर से किया जा रहा है,

उसकी ठोस जमीन भारतेन्दु अपने इस निबन्ध के माध्यम से आज से 117 वर्ष पूर्व ही तैयार कर देते हैं' (वही) | भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की आलोचना का प्रभाव भारतेन्दु युगीन आलोचना पर व्यापक रूप में पड़ा|

बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन ने 1881 में दृश्य रूपक वा नाटक शीर्षक लेखमाला लिखी| प्रेमघन ने संस्कृत नाट्यशास्त्र और मराठी, गुजराती और बांग्ला की नाट्य सक्रियता के सहयोग से हिंदी में नाट्य रचना और उसके शास्त्र को विकसित करने का प्रयास किया है| अंग्रेजी राज्य की जन विरोधी नीतियों के विरुद्ध जनता को जागरूक करना ही प्रेमघन की समीक्षाओं का लक्ष्य था|

भारतेन्दु युग में लिखे जाने वाले नाटकों की समीक्षाएं उस युग की पत्र- पत्रिकाओं में छपती थीं| लाला श्रीनिवास दास के नाटक संयोगिता स्वयंबर की समीक्षाएं बालकृष्ण भट्ट और बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन ने लिखी थी| भट्ट जी की आलोचना का शीर्षक था- सच्ची समालोचना| लाला श्रीनिवास दास ने अपने नाटकों में ऐतिहासिकता पर बल दिया था| बालकृष्ण भट्ट ने संयोगिता स्वयंबर की आलोचना करते हुए लिखा है-" 'लाला जी यदि बुरा न मानिए तो एक बात आपसे धीरे से पूछें। वह यह कि आप ऐतिहासिक नाटक किसको कहेंगे। क्या किसी पुराने समय के ऐतिहासिक पुरावृत्त की छाया लेकर नाटक लिख डालने से ही वह ऐतिहासिक हो गया-क्या किसी विख्यात राजा या रानी के आने से ही वह लेख ऐतिहासिक हो जायेगा? यदि ऐसा है तो गप्प हांकने वाले दास्तागों और नाटक के ढंग में कुछ भी भेद न रहा-किसी समय के लोगों के हृदय की क्या दशा थी, उसके आभ्यंतर के भाव किस पहलू पर ढुलके हुए थे अर्थात् उस समय भाग के भाव (Spirit of the times) क्या थे इन सब बातों को ऐतिहासिक नीतिपद समझ लीजिए, तब उसके दरसाने का भी यत्न नाटकों द्वारा कीजिए। केवल क्लिष्ट श्लेष बोलने ही से तो ऐतिहासिक नाम के पात्र क्या वरन् एक प्राकृतिक मनुष्य की पदवी हम आपके पात्रों को नहीं दे सकते' (हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1886) कुछ ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं के आधार पर लिखा गया नाटक कह देने मात्र से ऐतिहासिक नहीं हो जाता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाली रचना में अपने समय की चेतना को वे एक मुख्य कारक के रूप में स्वीकृति देते हैं। अपनी समीक्षा में भट्ट प्रकारांतर से लेखक की इतिहास-दृष्टि पर टिप्पणी करते हैं। राजा-रानी और अन्य ऐतिहासिक पात्रों तथा इतिहास की घटनाओं की अपेक्षा वे सामान्य जनता के चिन्तन की दिशा को विशेष महत्व देते हैं। बापकृष्ण भट्ट ने उपन्यास शीर्षक एक आलोचना में परीक्षा गुरु को अंग्रेजी ढंग के प्रभाव से युक्त बताया था| उपन्यास में उपदेश के संबंध में भी उनकी टिप्पणी महत्वपूर्ण है, जब वह कहते हैं कि उपदेश को सम्पूर्ण रचना के संघटन में व्याप्त होना चाहिए, न कि किसी प्रकार आरोपित रूप में| इसी प्रकार बांग्ला उपन्यास कार रमेश चन्द्र दत्त के बंग विजेता उपन्यास की समीक्षा भी बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी प्रदीप में अगस्त 1886 ई में की थी| इस समीक्षा में उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास में उपन्यासिकता के साथ ही ऐतिहासिक ता की रक्षा को भी अनिवार्य बताया था| वस्तुतः बालकृष्ण भट्ट की आलोचना का मूल था- साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है'| बालकृष्ण भट्ट रीतिवाद के खिलाफ लेखनी चलाने वाले हिंदी के प्रथम आलोचक हैं| बालकृष्ण भट्ट ने अक्टूबर, 1886 में हिंदी प्रदीप में सच्ची

कविता शीर्षक से एक निबंध लिखा| इस निबंध में भट्ट जी ने रीति कविता में आये नख शिख वर्णन का विरोध किया|

भारतेन्दु युगीन आलोचना का मुख्य स्वर संयोगिता स्वयंबर नाटक की समीक्षा पर बालकृष्ण भट्ट और बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन की समीक्षाएं थीं| बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी आलोचना में पहली बार ऐतिहासिकता और पात्र की स्थिति पर सवाल उठाया| भट्ट जी ने पात्रों के समुचित विकास का प्रश्न उठाया| भट्ट जी ने लाला श्रीनिवास दास के रणधीर- प्रेम मोहिनी को एक ट्रेजडी के रूप में व्याख्यायित करते हैं| प्रेमघन की आलोचना शास्त्रीय पद्धति पर की है|

भारतेन्दु युग में टीका परम्परा की आलोचनाएँ भी लिखी जा रही थीं| जगन्नाथ दास रत्नाकर ने बिहारी रत्नाकर नाम से आपने बिहारी सतसई की टीका भी लिखी| रत्नाकर जी ने पोप के ऐसे ऑन कृटिसिज्म का समालोचनादर्श शीर्षक से अनुवाद किया|

अभ्यास प्रश्न)1

सत्य/ असत्य का चुनाव कीजिए|

1- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक साहित्य के निर्माता हैं|

2- भारतेन्दु युग में नवीन गद्य विधाएँ अस्तित्व में आयीं

3- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नाटक सम्बन्धी आलोचना लिखी है|

4- हिंदी प्रदीप का संपादन बालकृष्ण भट्ट ने किया था|

5- हिंदी आलोचना के विकास में संयोगिता स्वयंबर की आलोचना का बहुत बड़ा योगदान था|

2.6 सारांश

भारतेन्दु युगीन आलोचना का क्षेत्र काफ़ी बड़ा था| भारतेन्दु युग में गद्य की नवीन विधाएँ सामने आयीं तथा पत्र- पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ| संक्षेप में भारतेन्दु युगीन आलोचना का अवदान निम्न ढंग से देखा जा सकता है-

* आलोचना का प्रारंभ भारतेन्दु युग में ही हुआ|
* भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रेमघन आदि की आलोचना दृष्टि के बीज आगे की आलोचना में विकसित रूप में हमारे सामने आये|
* रीतिवादी मनोवृत्ति के प्रतिकार की दृष्टि का विकास भी भारतेन्दु युगीन आलोचना में हुआ
* भारतेन्दु युगीन आलोचना के माध्यम से ही पुस्तक समीक्षा प्रारम्भ हुई|
* भारतेन्दु युगीन आलोचना के माध्यम से शोध परक आलोचना का प्रारंभ हुआ|
* भारतेन्दु युग में ही शास्त्रीय आलोचना का जन्म हुआ|
* भारतेन्दु युग के आलोचकों ने अंग्रेजी साहित्य से प्रभाव ग्रहण करने की पद्धति का विकास किया|

2.7 शब्दावली

समालोचना- भारतेन्दु युग में आलोचना का प्रचलित नाम, कृति की सम्यक आलोचना का भाव
ऐतिहासिकता- इतिहास के तथ्यों को देखने-परखने की दृष्टि
शास्त्रीय- किसी रचना को परम्परागत मापदंड पर देखने की दृष्टि
सामूहिक आस्वाद- समूह में रचना का आस्वाद

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1-सत्य
2-सत्य
3-सत्य
4-सत्य
5-सत्य

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

नाटक- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
हिंदी प्रदीप- बालकृष्ण भट्ट
आनंद कादम्बिनी- बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन

2.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

हिंदी आलोचना का विकास- नंदकिशोर नवल
हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली- अमरनाथ

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

भारतेन्दु युगीन आलोचना पर निबंध लिखिए|

इकाई 3 : महावीर प्रसाद द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना
    3.3.1 महावीर प्रसाद द्विवेदी
    3.2.1 मिश्रबंधु
    3.3.3 बालमुकुंद गुप्त
    3.3.4 श्यामसुंदर दास
    3.3.5 बाबू गुलाब राय
    3.3.6 कृष्ण बिहारी मिश्र
    3.3.7 पद्म सिंह शर्मा
    3.3.8 लाला भगवान दीन
3.4 द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना का महत्व
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.9 सहायक ग्रन्थ सूची
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 उद्देश्य

यह अध्याय हिंदी आलोचना से संबंधित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप हिंदी आलोचना के आरंभिक दौर के द्विवेदी युग अथवा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के आलोचना के पूर्व युग से परिचित हो सकेंगे। यह युग भारतीय नवजागरण एवं राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना के विकसित होने का युग है। मूलतः 1900 से लेकर 1920 तक की आलोचना अथवा यूँ कहें अपने समय की केंद्रीय पत्रिका सरस्वती में प्रकाशित आलोचना का समय है। आलोचना का अंकुरण भारतेंदु युग में हुआ और महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में उसका एक मुकम्मल रूप बना। इस अध्याय के अध्ययन के उपरांत आप आचार्य

महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू श्याम सुंदर दास, मिश्र बंधु, बालमुकुंद गुप्त, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बाबू गुलाबराय इत्यादि आलोचकों के बारे में परिचित हो सकेंगे। इस अध्याय के अध्ययन के उपरांत आप हिंदी आलोचना के व्यावहारिक आलोचना से परिचित हो सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

नागरी प्रचारिणी पत्रिका का प्रकाशन 1897 में हुआ और इसके प्रकाशन के साथ ही हिंदी में सरस्वती 1900 में, सुदर्शन 1900 में और समालोचक 1902 में के प्रकाशन ने हिंदी आलोचना का वर्तमान स्वरूप तैयार किया। नागरी प्रचारिणी पत्रिका के पहले ही अंक में गंगा प्रसाद अग्निहोत्री का समालोचना, बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर का समालोचनादर्श, अम्बिकादत्त व्यास का गद्यकाव्य मीमांसा शीर्षक आलेख प्रकाशित हुआ। नागरी प्रचारिणी पत्रिका ने महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुन्दर दास, अम्बिकादत्त व्यास, मिश्रबंधु सरीखे आलोचकों को पहचान दी और सरस्वती पत्रिका ने इन्हें एक आलोचक के तौर पर स्थापित किया। इन पत्रिकाओं में साहित्य, इतिहास, पुरातत्व, भाषा इत्यादि से संबंधित अंतर अनुशासनिक विषयों पर आलेख प्रकाशित होते थे। यह समय अनेक ऐसे विषय पर समालोचना प्रकाशित हुए जो न सिर्फ़ हिंदी के महत्व को बल्कि हिंदी में ज्ञान-विज्ञान-चिंतन के साथ साथ अंतर विषयी महत्व का भी उद्घाटन करने वाले थे। इसी समय कविता के लक्षण और सिद्धान्त निरूपण से भी संबंधित आलेख महावीर प्रसाद द्विवेदी का कवि और कविता; प्रताप नारायण मिश्र का रस कुसुमाकर, कविराजा मुरारीदान का यशवंत भूषण, जगन्नाथ प्रसाद भानु का काव्य प्रभाकर इत्यादि प्रमुख है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1903 में सरस्वती पत्रिका का संपादकत्व स्वीकारा और 1904 में सरस्वती में पुस्तक समीक्षा का आरंभ किया। इसने छिछली प्रसंशा को गंभीर आलोचनात्मक मूल्यांकन के अवसर में बदल डाला। महावीर प्रसाद द्विवेदी का निबंध कालिदास की निरंकुशता आलोचनात्मक निबन्ध है जिसमें भारतीय रस सिद्धांत और नवीन मौलिक उद्भावना मौजूद है। यह भाषा और शैली की शुद्धता, व्याकरण और मुहावरों के सही प्रयोग की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट कराती है। वहीं मिश्रबंधुओं की हिंदी नवरत्न की समीक्षा भी नए राहों के अन्वेषण की ओर ले जाने वाली प्रयास है। इसी समय मिश्रबंधुओं ने पुस्तक समीक्षा, अनुसंधान और विशुद्ध आलोचना से सम्यक गुण-दोषों का विवेचन, अनुसंधान की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। मिश्रबंधुओं का निबंध श्रीधर पाठक की कविता, हिंदी काव्य इसके उदाहरण है।

द्विवेदी युग में ही तुलनात्मक आलोचना का प्रादुर्भाव हुआ। हिंदी नवरत्न में इसका कुछ अंश देखने को मिलता है किंतु सरस्वती के 1907 के अंक में प्रकाशित पंडित पद्मसिंह शर्मा का बिहारी और फ़ारसी के कवि शेखसाड़ी की तुलनात्मक आलोचना से इसका व्यवस्थित नींव पड़ा। बाद में पंडित कृष्णबिहारी मिश्र ने देव और बिहारी, लाला भगवानदीन ने बिहारी और देव जैसा तुलनात्मक अध्ययन और आलोचना की शुरुआत की।

डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा कि "हिंदी आलोचना को साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता इसी युग ने प्रदान की। द्विवेदीयुगीन आलोचना ने चाहे गहराई का एहसास न हो, पर विस्तार और वैविध्य है। यह बंद गली की बासी आलोचना न होकर खुली खिड़कीदार ताजी आलोचना है जिसमें पाश्चात्य सिद्धांतों तथा विचारों की हवा स्वच्छंद गति से बह रही है। सामाजिक-सांस्कृतिक नवजागरण का यह काल साहित्य-समीक्षा में नवीन प्रवृत्तियों-आंदोलनों, विचारधाराओं और मूल्यों का महत्वपूर्ण काल है।"

3.3 द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना

भारतीय समाज में अंग्रेज़ी शासन के आने के बाद शिक्षा व्यवस्था में एक नया परिवर्तन भारत में संभव हुआ और आधुनिकता के विचार के आने के कारण समाज में एक नई सांस्कृतिक टकराहट ने जन्म लिया। आधुनिकता जन्य भारतीय नवजागरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन ने भारतीय विचार परम्परा में एक नई किस्म की ताजगी देने के साथ विचार के अवकाश और प्रचार-प्रसार के लिए उर्वर भूमि प्रदान की। मध्यकालीन की मुस्लिम-हिंदू रगड़घस्स कम हुआ और नवजागरण ने एक सौहार्द उत्पन्न किया और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन ने समन्वय और सामंजस्य की स्थिति पैदा की। हिंदी फोर्ट विलियम कॉलेज के आने से अध्ययन की भाषा बन चुकी थी। हिंदी में हिंदी नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु ने हिंदी को नई चाल में ढाल लिया था। महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग तक आते आते नागरी प्रचारिणी सभा और सरस्वती पत्रिका का काम आरम्भ हो चुका था।

अंग्रेज़ भारत को अपना राष्ट्र मुसलमानों की तरह नहीं मान रहे थे उनके लिए भारत एक उपनिवेश भर था। वे भारत की सम्पत्ति से ब्रिटेन का पेट भर रहे थे। इसकी प्रतिक्रिया भारतीय समाज में भारतेंदु के समय में ही शुरू हो चुकी थी और द्विवेदी युग तक आते आते इसका प्रबल विरोध होने लगा था। अंग्रेज़ों के आगमन से भारत में ज्ञान-विज्ञान ने भी खूब तरक्की की। जो रेल, तार, डाक, प्रेस इत्यादि अंग्रेज़ों के सहायक बने उन्होंने भारतीय नवजागरण को भी प्रसारित करने और भारत में विचार को संवादी बनाने में भी खूब योगदान दिया। फलस्वरूप हिन्दी सा साहित्यिक उत्थान गद्य में सबसे अधिक

दिखने लगा। भारतेंदु युग में ही हिंदी गद्य विचार और आलोचना की भाषा बनने लगी थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में न सिर्फ़ इसका प्रसार हुआ बल्कि हिंदी गद्य का सौष्ठव और प्रांजल रूप भी सामने आया। इसने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और ग्रामीण अंचलों को भी संसाधनों एवं उत्पादन से जुड़ने में अहम भूमिका निभाई। हिंदी को आज भले ही सांप्रदायिक भाषा मान लिया जाता है लेकिन हिंदी का जन्म ही राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और क्रांति के गोद में जन्म हुआ।

द्विवेदी युग में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक नवजागरण का प्रभाव और भी व्यापक और गहन हुआ। इस युग तक आते आते हिंदी में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन ने राष्ट्रीय स्वाधीनता चेतना और भारतीय सांस्कृतिक गरिमा को अभिव्यक्ति दी। यही वह समय है जब हिंदी की पत्रिकाओं ने हिंदी को परिमार्जित और परिनिष्ठित किया जिसका नेतृत्व सरस्वती पत्रिका के माध्यम से महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया। यही कारण है कि इस युग को जागरण-सुधारकाल कहा गया। छायावादी काव्यांदोलन के प्रभाव के कारण इसे पूर्व-स्वच्छंदतावाद काल कहा गया। इसका समय पूर्वापर 1900-1918 ई. माना गया है। इस युग को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी काव्य की नई धारा' कहा। दरअसल द्विवेदी युग का राजनीतिक-सामाजिक संदर्भ ऐतिहासिक महत्व का है। इस युग में एक और समकालीन संवेदना की अभिव्यक्ति हुई तो दूसरी ओर भारतेंदु युग की विचार सरणी को विस्तार भी मिला। इस युग में राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना, नई धार्मिकता (ईश्वरत्व को मनुष्यत्व के गुणों का संधान करके), विषय-वस्तु का विस्तार (प्रकृति का नया रूप उद्दीपन से अधिक आलम्बन) को अभिव्यक्ति मिली।

द्विवेदी युग का सबसे अहम योगदान है कि इस युग में हिंदी गद्य-भाषा के परिष्कार और परिमार्जन का यत्न किया गया। भारतेंदु युग का गद्य बहुत हद तक अपनी आरम्भिक उदय के कारणों से बहुत देर तक नहीं चल पाता द्विवेदी युग के लिए परिनिष्ठित हिन्दी की आवश्यकता थी। जिसके लिए महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुन्दर दास जैसे प्रभृति विद्वान हिंदी को व्याकरणसम्मत बनाने की चेष्टा कर रहे थे।

भारतेंदु युग की आलोचना में दो धाराएँ स्पष्ट थी। आलोचना की पहली धारा अपने समय और समाज की चिंताओं के गहराई से संलग्न थी तो दूसरी धारा साहित्यिक मानकों पर आधारित थी। इस दूसरी धारा में रीतिवाद की पुनर्स्थापना और पुनर्व्याख्या से संबंधित थी। इस समय भी यानी द्विवेदी युग में भी यह संघर्ष अथवा दो धाराएँ स्पष्ट दिख रही थी साथ में इस समय में हिंदी के व्याकरण और भाषा को परिनिष्ठित और परिमार्जित करने की कोशिश भी दिखायी पड़ती है। दयानंद सरस्वती के आर्य समाज की स्थापना ने पुनरुत्थानवादी आग्रहों के बीच राष्ट्रीयता के लिए भी अवकाश था। इस समय अंग्रजी प्रभाव के समानांतर ग़ुलामी की मानसिकता का विरोध, आधुनिकता जन्य बदलावों और

कुरीतियों से मुक्ति की आकांक्षा भी हिंदी प्रदेश के वैचारिक हलकों में बलवती हो रही थी। द्विवेदी युग का विषय-वैविध्य एक किस्म से अन्वेषण के स्तर तक जाती है। आधुनिकता, ज्ञान के प्रसार और छापाखाना के ईजाद ने विषयों पर गंभीर बहस करने की जगह दी। अंग्रेजी प्रभाव जनित आधुनिकता, आर्य समाज की वेदों की ओर लौटो ने पारम्परिकता और गुलामी से उपजा आहट दशा ने अपने मूल को जानने की जिज्ञासा पैदा की। जिससे प्राचीन इतिहास, संस्कृति और धर्म के प्रति चिंतन को अवकाश मिला। काशी प्रसाद जायसवाल, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, सुधाकर द्विवेदी इत्यादि ने संस्कृति, इतिहास, धर्म, भाषा इत्यादि के क्षेत्र में मौलिक चिंतन को नई दिशा दी। हिंदी प्रदीप, समालोचन, मर्यादा, सरस्वती और इस समय की कई पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले लेखक इन विचारों पर लेख लिख रहे थे और वे धर्म और विज्ञान, भारत विद्या और पाश्चात्य प्रभाव संबंधी विवाद, पौर्वात्य और पाश्चात्य अध्ययन पर बल दे रहे थे। भारतेंदु युग का राजभक्ति बनाम देशभक्ति के विवाद का स्वर क्षीण तो हो रहा था किंतु वैचारिक हलकों में यह स्वर भी बना हुआ था। साहित्य और भाषा के क्षेत्र में विवाद का केंद्रीय मुद्दा भाषा संबंधी विवाद और रीतिकालीन बनाम युगीन संवेदना का द्वंद्व ही प्रमुख था। काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी अभी जन स्वीकार्यता के लिए जद्दोजहद कर रही थी और ब्रजभाषा की जनस्वीकार्य थी। इस बीच अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध की प्रियप्रवास के प्रकाशित होने और सरस्वती पत्रिका के प्रभावी होने से खड़ी बोली हिंदी में कविता और वैचारिक बहसों की स्वीकृता मिलनी शुरू हो गई। इसी बीच हिंदी आलोचना भी अपना रूप बना रही थी। इस समय महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्र बंधु, पद्म सिंह शर्मा, कृष्ण बिहारी मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, लाला भगवान दीन, बाबू श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, काशी प्रसाद जायसवाल, गौरीशंकर ओझा इत्यादि प्रमुख हैं।

3.3.1 महावीर प्रसाद द्विवेदी

साहित्य को ज्ञानराशि का संचित कोश मानने वाले युगप्रवर्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी(15.05.1864-29.12.1938) का जन्म उत्तरप्रदेश के रायबरेली के दौलतपुर जिले में हुआ था। सरस्वती के 1902 के अंक में बाबू श्यामसुन्दर दास का एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ कि अगले अंक के संपादक वे नहीं अब महावीर प्रसाद द्विवेदी होंगे। और इस तरह महावीर प्रसाद द्विवेदी ने झाँसी में अपनी रेलवे की 200 रुपये प्रतिमाह की नौकरी छोड़कर 23 रूपये और 3 रुपये की भत्ता की नौकरी इस संतोष के साथ कर ली कि अब अंग्रेज़ों की ग़ुलामी से अधिक देश और भाषा की सेवा करेंगे। सरस्वती के संपादक होने के साथ उन्होंने अपने लिए चार प्रण लिया कि वे वक्त के पाबंद रहेंगे; रिश्वत नहीं लेंगे; ईमानदारी से काम करेंगे और ज्ञान वृद्धि के लिए प्रयास करेंगे। वे आजीवन इस प्रण पर डंटे

रहे और 1903 से लेकर 1920 तक सरस्वती के सम्पादन का कार्य किया। उनके समर्पण और साहस का प्रतीक यह हुआ कि उन्होंने सरस्वती पत्रिका को बनाया और सरस्वती पत्रिका ने उन्हें और हिन्दी भाषा को।

महावीर प्रसाद द्विवेदी बहुभाषाविद् और कई विषयों के पंडित थे। साहित्य के अतिरिक्त उनकी रुचि पुरातत्व, अर्थशास्त्र, समाजविज्ञान, इतिहास इत्यादि में भाई वे गंभीर दखल रखते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने बेकन के निबंधों का बेकन विचार रत्नावली, हर्वर्ट स्पेंसर की पुस्तक एजुकेशन का शिक्षा और जॉन स्टुअर्ट मिल की ऑन लिबर्टी का अनुवाद स्वाधीनता नाम से किया। अंग्रेजी कवियों में वे वडर्सवर्थ से प्रभावित थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सैद्धांतिक दृष्टि से रसवादी आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों तरह की आलोचना सम्भव की। रसज्ञ रंजन और नाट्यशास्त्र में सैद्धांतिक और कालिदास की निरंकुशता, कवियों के उर्मिला विषयक उदासीनता, कवि और कविता जैसे आलेखों में व्यावहारिक आलोचना के सूत्र दिखते हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि भविष्योन्मुखी है। कविता और भविष्य में वे लिखते हैं, "भविष्य का लक्ष्य इधर ही होगा। अभी तक वह मिट्टी में सेन हुए किसानों और कारखानों से निकले हुए मैले मजदूरों को अपने काव्यों का नायक बनाना नहीं चाहता था। वह राज-स्तुति, वीर गाथा, अथवा प्रकृति-वर्णन में ही लीन रहता था, परंतु अब वह क्षुद्रों की भी महत्ता देखेगा और तभी जगत का रहस्य सबको विदित होगा। जगत का रहस्य क्या है? इस पर एक ने कहा है कि असाधारणता में यह रहस्य नहीं है। जो साधारण है, वही रहस्यमय है, वही अनंत सौंदर्य से युक्त है। इसी सौंदर्य को स्पष्ट कर देना भविष्य के कवियों का काम होगा।"

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का रीतिकालीन संबंधी मत भी देखने लायक है। वे एक ओर मतिराम ग्रंथावली की समीक्षा को दो पृष्ठ देते हैं तो हिंदी नवरत्न की समीक्षा को पच्चीस से भी अधिक पन्ने खर्च कर डालते हैं। हिंदी आलोचना को महावीर प्रसाद द्विवेदी एक नया रूप देते हैं। साहित्य की रूढ़िवादिता के जाले को साफ़ करने के लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने रीतिवाद विरोधी अभियान चलाया। उनके अनुसार तुलसी और सूर के साथ देव और बिहारी को एक साथ रखना उचित नहीं है। इसके पीछे भी उनका एक सामाजिक मर्यादा उड़ नैतिकता बोध काम कर रहा था। आलोचक रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने तय कर लिया था कि हिंदी गद्य का विकास करना है, आधुनिक हिंदी को विविध विषयों के विवेचन का माध्यम बनाना है, कविता में ब्रजभाषा की जगह खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करना है और साहित्य से रीतिकाल को निकाल कर बाहर करना है। लगभग बीस वर्षों तक एकाग्र मन से इस निश्चित उद्देश्य की सिद्धि में वे लगे रहे और उन्हें सफलता प्राप्त हुई।"

आचार्य द्विवेदी ने हिंदी भाषा के परिमार्जन और परिनिष्ठित करने का बड़ा यत्न किया। उन्होंने भारत में अंग्रेजी की स्थिति, भारतीय भाषाओं में शिक्षा का माध्यम की समस्या, संपर्क भाषा की समस्या, हिंदी-उर्दू संबंध, हिंदी और जनजातीय भाषाओं के संबंध पर खूब विचार किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपनी एक टिप्पणी में लिखते हैं "यद्यपि द्विवेदी जी ने हिंदी के बड़े बड़े कवियों को लेकर गंभीर साहित्य समीक्षा का स्थायी साहित्य प्रस्तुत नहीं किया, पर नई निकली पुस्तकों की भाषा आदि की खरी आलोचना करके हिंदी साहित्य का भारी उपकार किया। यदि द्विवेदी जी न उठ खड़े होते तो जैसी अव्यवस्थित, व्याकरणविरुद्ध और ऊटपटांग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परम्परा जल्दी न रुकती। इनके प्रभाव से लेखक सावधान हो गए और जिनमें भाषा की समझ और योग्यता थी, उन्होंने अपना सुधार किया।"

भाषा-सुधार और खड़ी बोली के विकास में द्विवेदी जी की भूमिका अतुलनीय है। मैथिलीशरण गुप्त उनकी ही खोज थे और भारत भारती के कई हिस्से द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित किए थे। यहाँ तक कि रामचन्द्र शुक्ल के निबंध कविता क्या है? के हिस्से का संपादन भी द्विवेदी जी ने ही किया था। रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है कि "प्राचीनता से उचित का ग्रहण और अनुचित का त्याग, नवीनता से विवेकपूर्ण स्वीकृति, शास्त्र के स्थितिशील तत्वों की उपेक्षा, समाज संस्कार को महत्व, उपयोगिता, सोद्देश्यता, सदाशयता, स्वाभाविकता, सरसता और प्रभावोत्पादन की क्षमता को काव्य के आवश्यक तत्त्वों के रूप में प्रतिष्ठित करने का आग्रह आदि वे मूलभूत मान्यताएं हैं जिन पर द्विवेदी जी की आलोचना आधृत है। इसी दृष्टि से आपने भारतेंदु युग के लेखकों, मिश्रबंधुओं के हिंदी नवरत्न तथा मैथिलीशरण गुप्त की भारत भारती की आलोचना की।"

हिंदी आलोचना के विकास में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का महत्व आरंभिक आलोचना के प्रतिष्ठापक से कहीं अधिक है। इनके महत्व का आकलन करते हुए रामविलास जी ने लिखा है कि "महावीर प्रसाद द्विवेदी की सामाजिक चेतना की तुलना 19वीं सदी के पाश्चात्य प्रगतिशील विचारकों की सामाजिक चेतना से की जाए तो देखा जाएगा कि बीसवीं सदी का आरम्भ होते होते हिंदी बुद्धजीवियों की सामाजिक चेतना तेजी से बदल रही है और पूर्ववर्ती पाश्चात्य विचारकों की चेतना के समानांतर आगे बढ़ रही है। यही कारण है कि इतिहास और समाजशास्त्र के विवेचन में द्विवेदी जी की विचारधारा इतनी आधुनिक और वैज्ञानिक दिखाई देती है और दार्शनिक विषयों का विवेचन वह नवीन बुद्धिवादी तार्किक दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। यह स्थिति दर्शन और इतिहास के क्षेत्र में ही नहीं है, इनके साथ साहित्य के क्षेत्र में भी वही चेतना सक्रिय है।" वे आगे लिखते हैं, "द्विवेदी जी ने एक निश्चित मत और निश्चित कार्यक्रम के अनुसार हिंदी के ज्ञान कांड को समृद्ध करने का बीड़ा उताया था। उन्हें

यह दृढ़ विश्वास था कि हिंदी गद्य का विकास किए बिना, इस गद्य में ज्ञान-साहित्य लिखे बिना जातीय संस्कृति का विकास संभव न होगा।"

द्विवेदी जी के महत्व को स्थापित करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण में उल्लेख करते हैं कि "द्विवेदी जी की युगान्तरकारी भूमिका यह है कि उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से अनेक समस्याओं का विवेचन गहराई से किया। छायावादी साहित्य द्विवेदी-युग के प्रति विद्रोह का साहित्य माना जाता है। थोड़ी देर के लिए कलात्मक साहित्य को छोड़कर छायावादी कवियों की विचारधारा पर ध्यान दीजिए। निराला ने अंग्रेजी राज, जींदारी प्रथा, किसान आन्दोलन, वर्णाश्रम धर्म, नारी की पराधीनता, भाषा की समस्या आदि-आदि पर जो कुछ लिखा है उस पर ध्यान दीजिए तो पता चलेगा कि हिन्दी नवजागरण के सम्बन्ध में निराला का यह लेखन महावीरप्रसाद द्विवेदी के ही कार्य की अगली कड़ी है।" और रामविलास जी आगे अपनी बात बढ़ाते हुए कहते हैं कि "मेरी समझ में भारत के बड़े से बड़े मार्क्सवादी विचारक द्विवेदीजी के लेखन से अब भी बहुत कुछ सीख सकते हैं। जो लोग मार्क्सवादी नहीं हैं वे यह देखें कि द्विवेदी जी के चिन्तन की दिशा कौन सी है, वे उनके चिन्तन से आगे बढ़ रहे हैं या उससे पीछे लौट रहे हैं। इस तरह का अध्ययन मार्क्सवाद का ज्ञान कराने के लिए नहीं है, वह अपने देश और प्रदेश की सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के ज्ञान के लिए आवश्यक है।" आचार्य द्विवेदी को हिन्दी नवजागरण का भारतेंदु के बाद केन्द्रीय पुरुष कहा जा सकता है। वे अपने समय और परिवेश के अत्यन्त सजग आलोचक और व्याख्याकार थे। 'भारत भारती' की आलोचना में उन्होंने लिखा है, "यह सोते हुए को जगाने वाला, भूले हुए को ठीक राह पर लाने वाला, निरुद्योगियों को उद्योगशील बनाने वाला, आत्म-विस्मृतों को पूर्व-स्मृति दिलाने वाला, निरुत्साहितों को उत्साहित करने वाला तथा उदासीनों के हृदय में उत्तेजना उत्पन करने वाला है।" आचार्य द्विवेदी को हिन्दी नवजागरण का केन्द्रीय पुरुष कहा जा सकता है। वे अपने समय और परिवेश के अत्यन्त सजग आलोचक हैं। 'भारत भारती' की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है, "यह सोते हुए को जगाने वाला, भूले हुए को ठीक राह पर लाने वाला, निरुद्योगियों को उद्योगशील बनाने वाला, आत्म-विस्मृतों को पूर्व-स्मृति दिलाने वाला, निरुत्साहितों को उत्साहित करने वाला तथा उदासीनों के हृदय में उत्तेजना उत्पन करने वाला है।"

हिंदी के प्रति अप्रतिम निष्ठा रखने वाले और हिंदी को अपने लेखन, अनुवाद और संपादन कर्म से परिमार्जित और परिनिष्ठित करने वाले आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की महत्ता इस रूप में भी है कि उनके युग का नामकरण उनके नाम पर हुआ। द्विवेदी जी ने एक निश्चित मत के अनुसार हिन्दी के ज्ञानकाण्ड को समृद्ध किया उन्हें यह विश्वास था कि हिंदी के समृद्धि के बगैर जातीय संस्कृति का

विकास संभव नहीं है। भले ही उनके आलोचना में कहीं कहीं अतिरंजना और एकांगिता संभव है किंतु इससे उन्हें अलग कर के ही उनके महत्व को समझा जा सकता है।

3.3.2 मिश्रबंधु

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने में जिस इतिहास ने उनकी सर्वाधिक मदद की वह मिश्रबंधुओं का मिश्रबंधु विनोद था। हिंदी में मिश्रबंधु श्री गणेशबिहारी मिश्र, डॉ. श्यामबिहारी मिश्र और रायबहादुर शुकदेवबिहारी मिश्र को कहा जाता है। उत्तरप्रदेश के हरदोई के ये तीन सहोदर भाइयों ने अपनी सभी रचनाएँ एक साथ की। मिश्रबंधु विनोद, हिंदी नवरत्न इनकी प्रसिद्ध पुस्तक है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मिश्रबंधु विनोद के चारों खंड को 'प्रकांड कवि-वृत्त-संग्रह' कहा। हिंदी नवरत्न से ही हिंदी में तुलनात्मक अध्ययन की व्यवस्थित शुरुआत मानी जाती है। ये मूलतः दरबारी शृंगार काव्य के रसिक थे किन्तु द्विवेदीयुगीन नैतिकता के आग्रहों से बंधे हुए भी थे। हिंदी नवरत्न में आदिकाल से आधुनिक काल तक गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, देव, बिहारी, भूषण-मतिराम, केशवदास, कबीर, चंदबरदायी और भारतेंदु हरिश्चंद्र शामिल हैं। इनकी आलोचना की सबसे बड़ी विशेषता यही श्रेणी विभाजन है। मिश्रबंधुओं में इसी श्रेणीविभाजन के क्रम में बृहत्रयी, लघुत्रयी और मध्यत्रयी बनाया। बृहत्रयी में सूर, तुलसी और देव, मध्यत्रयी में बिहारी, भूषण और केशव और लघुत्रयी में सेनापति, चंदबरदायी और भारतेंदु हरिश्चंद्र शामिल हैं। हालाँकि ये इन विभाजन का कोई आधार प्रस्तुत नहीं करते। रामचन्द्र तिवारी हिंदी का गद्य साहित्य में लिखा है कि, "इन कवियों के चयन और श्रेणी विभाजन में तुलनात्मक मूल्यांकन का कोई वैज्ञानिक आधार मिश्रबंधुओं के सामने नहीं था। इसलिए रह-रह कर उनके निर्णयों में परिवर्तन होता रहा। वैज्ञानिक आधार के अभाव में मत परिवर्तन होने पर नीचे की श्रेणी का कवि ऊपर भी पहुँच जाता था। पहले सेनापति को नवरत्नों में स्थान दिया गया और मतिराम को उनके बाद रखा गया। बाद में मतिराम को नवरत्नों में रखा गया और सेनापति को उनके बाद।"

श्रेणी विभाजन के उपरान्त मिश्रबंधुओं का योगदान तुलनात्मक आलोचना से जुड़ता है। इन्होंने हिंदी कविता के भक्तिकाल की तुला अंग्रेजी के रिनेसां और रिफॉर्मेशन काल से की और रीतिकाल की तुलना आगस्टन काल से। इन्होंने तुलसीदास की तुलना शेक्सपियर से चंदबरदायी की तुलना चॉसर से की है। देव बड़े की बिहारी विवाद भी इसी तुलनात्मक आलोचना से हिंदी आलोचना में प्रारंभ हुआ। मिश्रबंधुओं की समीक्षा का सैद्धांतिक आधार भारतीय काव्यशास्त्र और पाश्चात्य प्रतिमानों के सम्मिलन से बना है। ये ब्रज भाषा की कविता के स्थान पर खड़ी बोली में कविता के पक्षधर थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी मिश्रबंधों की श्रेणी विभाजन के आलोचक थे तथा उन्होंने इनकी हिन्दी

नवरत्न की कड़ी आलोचना की है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि "जिसने उच्च भावों का उद्बोधन नहीं किया, समाज, देश या धर्म को अपनी कविता द्वारा विशेष लाभ नहीं पहुँचाया, जिसने मानव चरित्र को उन्नत करने योग्य सामग्री से अपने काव्य को अलंकृत नहीं किया— वह भी यदि महाकवि या कविरत्न माजा जा सकेगा तो प्रतीक देश क्या प्रत्येक प्रांत से भी सैकड़ों महाकवि और नवरत्न निकल आएँगे।"

मिश्रबंधुओं ने काव्य की विशेषताओं का निरूपण परंपरागत शास्त्रीय मानदंडों के आधार पर किया और पाठालोचन में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होंने देव ग्रंथावली, देवसुधा, भाव विलास, अष्टयाम, रस प्रबोध, भूषण ग्रंथावली, कविकुल कंठाभरण जैसे रीतिवादी पाठों का संपादन कर हिन्दी जनवृत्त से उनका परिचय कराया।

मिश्रबंधुओं की आलोचना के को रेखांकित करते हुए भगवत्स्वरूप मिश्र ने लिखा है, "द्विवेदी जी के समसामयिक आलोचकों में व्यक्तिगत राग-द्वेष का प्राधान्य हो गया था, जिससे आलोचक और आक्षेपों से ऊपर उठकर साहित्य की अग्रगति पर गम्भीरतापूर्वक सोचने के लिए बाध्य कर दिया था। अपने प्रकृत-मार्ग से पथभ्रष्ट हो गए थे। मिश्रबन्धुओं के इन ग्रंथों ने आलोचकों को इन व्यक्तिगत राग-द्वेष अब आलोचना का रूप केवल वाद-विवाद नहीं रह गया था। आलोचक इसे गम्भीर चिन्तन और पर्याप्त उत्तरदायित्व का कार्य समझने लगे थे। आलोचना को वास्तविक वैज्ञानिक रूप देने का श्रेय इन्हीं की है। यही कारण है कि प्रसिद्ध अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'माडर्न रिव्यू' ने 'हिन्दी नवरत्न' को नवीन युग का प्रवतंत्र (Aproch of marking) कहा है।" मिश्रबंधुओं की आलोचना का अन्तर्विरोध यह है कि वे समालोचक से अधिक सहृदय रसज्ञ थे साथ ही रीतिवादी संस्कारों और अंग्रजों की ओर तनिक झुके हुए या उनके विद्वत्ता के दबाव में दबे हुए थे और युगीन प्रवृत्तियों का दबाव भी उनपर था। आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी ने ठीक ही लक्षित किया है कि, "उनमें वह सहृदयता विद्यमान है जो सुंदर कविता का रस ग्रहण कर सकती है, किंतु उस रस की व्याख्या करके उसे वे आधुनिक पाठकों के लिए संदर्भवान एवं मूल्यवान नहीं बनाते। वे प्रशंसा कर सकते हैं— समालोचन नहीं।"

तथापि मिश्रबंधों का हिंदी नवरत्न और मिश्रबंधु विनोद आरंभिक हिंदी आलोचना के प्रतिमान हैं और मिश्रबंधु विनोद तो हिंदी साहित्य का इतिहास की पूर्व पीठिका।

3.3.3. बाल मुकुंद गुप्त

हरियाणा के रेवाड़ी जिले के गुड़ियानी गांव में जन्मे बालमुकुंद गुप्त (14.11.1865-18.09.1907) की ख्याति पत्रकार और निबंधकार के रूप में अधिक और आलोचक के रूप में कम है तथापि अधखिला फूल, गुलशन ए हिंदी, तुलसी सुधाकर और प्रवासी की आलोचना प्रमुख है। बाल मुकुंद गुप्त की

ख्याति उनके निबंध शिव शंभु के चिट्ठे और महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ भाषा और व्याकरण शीर्षक लेख में द्विवेदी जी द्वारा अनस्थिरता वाले विवाद को लेकर है। बालमुकुंद गुप्त ने आत्माराम के छद्म नाम से द्विवेदी जी के प्रयोगों की आलोचना करते थे। उन्होंने आत्माराम छन्द नाम से लेखों की एक माला लिखी थी जिसकी उस समय पर्याप्त स्वीकार्यता हुई। बालमुकुंद गुप्त जी रिफ़ाहे आम, मथुरा समाचार, अख़बार ए चुनार, हिन्दोस्थान, भारत प्रताप, हिंदी बंगवासी, भारत मित्र जैसी पत्र पत्रिकाओं के सम्पादन से जुड़े रहे।

बालमुकुंद गुप्त की आलोचना की कमजोरी यह है कि इनका मन रचना के दुर्बल पक्षों पर ही रमता रहा इन्होंने रचना को कभी समग्रता से मूल्यांकित नहीं किया। किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास तारा की समीक्षा हो या मुंशी उदित नारायण लाल द्वारा अनूदित बांग्ला नाटक अश्रुमती की समीक्षा इन्होंने सिर्फ़ इन रचनाओं की कमज़ोरी का ही उद्घाटन किया।

अपने समय की आलोचना पर इनकी टिप्पणी से इनकी आलोचना-दृष्टि को समझा जा सकता है, "आलोचना की रीति अभी हिन्दी में भली-भाँति जारी नहीं हुई है और न लोग इसकी आवश्यकता ही को ठीक-ठीक समझे हैं। इससे बहुत से लोग आलोचना देखकर घबरा जाते हैं और बहुतों को वह बहुत ही अप्रिय लगती है। यहाँ तक कि जो लोग स्वयं इस मैदान में कदम बढ़ाते हैं, अपनी आलोचना होते देखकर वहीं तुर्शरू हो जाते हैं। इससे हिन्दी आलोचना भिड़ के छत्ते को छेड़ लेना है। छेड़ने वाले को चाहिए कि बहुत-सी भिड़ों के डंक सहने के लिए प्रस्तुत रहें।" यही वजह है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल इनकी इसी चुटीली शैली के कारण 'चलते-पुरजे और विनोदशील' लेखक कहा है।

3.3.4 बाबू श्यामसुंदर दास

बाबू श्यामसुन्दर दास का जन्म 14 जुलाई, 1875 को काशी में हुआ और निधन 08 अगस्त, 1945 को हुआ। बाबू श्यामसुन्दर दास काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के संस्थापक अध्यक्ष थे। वे नागरी प्रचारिणी सभा के भी संस्थापक सदस्य थे। नागरी प्रचारिणी पत्रिका और सरस्वती पत्रिका के भी पहले संपादक बाबू श्यामसुंदर दास थे। बाबू श्यामसुंदर दास की ख्याति अध्यापक, संपादक, इतिहासकार, कोश-निर्माता, निबंधकार और आलोचक के रूप में है। साहित्यालोचन बाबू श्यामसुन्दर दास की आलोचना की पुस्तक है इसमें साहित्य, कविता, गद्यकाव्य, दृश्यकाव्य,रस, शैली इत्यादि की विवेचना मौजूद है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने साहित्यालोचन में छात्रों को ध्यान में रख कर साहित्य के तत्त्वों को परिभाषित किया है। इस प्रक्रिया में उन्होंने पश्चिमी विचार को भी मानने से परहेज नहीं है। वे लिखते हैं, "इस ग्रंथ की समग्र सामग्री मैंने दूसरों से प्राप्त की है। परंतु उस सामग्री को सजाने, विषय

को प्रतिपादित करने तथा उसको हिंदी भाषा में व्यंजित करने में मैंने अपनी बुद्धि से काम लिया है।...आज हिंदी को पूर्व और पश्चिम दोनों के समालोचना शास्त्र को देखकर अपना शास्त्र बनाना है।"

बाबू श्यामसुन्दर दास का महत्व आलोचक से अधिक हिंदी भाषा और साहित्य के पाठ को विकसित करने और पाठ्यक्रम निर्माण के अतिरिक्त हिंदी में शोध कराने के प्रतिमान बनाने वाले अध्यापक के रूप में दिया जा सकता है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के लिए इन्होंने कबीर ग्रंथावली और पृथ्वीराज रासो का बृहद संस्करण (जिसमें 1883 में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी और 1928 का नागरी प्रचारिणी सभा का संस्करण शामिल है) तैयार किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, "बाबू साहब ने बड़ा भारी काम लेखकों के लिए सामग्री प्रस्तुत करने का किया है। हिंदी पुस्तकों की खोज के विधान द्वारा आपने साहित्य, इतिहास, कवियों के चरित्र और उन पर प्रबंध आदि लिखने का बहुत-सा मसाला इकट्ठा करके रख दिया। इसी प्रकार आधुनिक हिंदी के नए पुराने लेखकों के संक्षिप्त जीवन वृत्त हिन्दी कोविदमाला के दो भागों में संग्रहीत किए हैं। शिक्षकोपयोगी तीन पुस्तकें भाषा विज्ञान, हिंदी भाषा और साहित्य तथा साहित्यालोचन भी आपने लिखी या संकलित की है।"

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिंदी का पहला शोध पीताम्बर दत्त बड़थवाल ने हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय विषय से बाबू श्यामसुन्दर दास के निर्देशन में ही किया। बाबू श्यामसुन्दर दास ने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों तरह की आलोचना की। सैद्धांतिक आलोचना पौर्वात्य एवं पाश्चात्य दोनों मानदंडों पर आधारित थी और व्यावहारिक आलोचना शैली मुख्यतः व्याख्यात्मक थी। भाषा और साहित्य ऐसी ही कृति है। रूपक रहस्य इनकी सैद्धांतिक आलोचना की कृति है। आलोचक रामचंद्र तिवारी ने अपनी किताब हिंदी का गद्य साहित्य में लिखते हैं, "व्याख्या की पूर्णता के लिए विवेचन, तुलना, निष्कर्ष, उदाहरण, निर्णय आदि आवश्यक उपकरणों का भी यथास्थान बाबूसाहब ने प्रयोग किया है। तुलसी की प्रबन्धपटुता पर विचार करते हुए आपने 'वाल्मीकि रामायण', 'हनुमन्नाटक' और 'अध्यात्म रामायण' के कथा-प्रसंगों से 'रामचरितमानस' की तुलना की है। इसी प्रकार उनके प्रकृति वर्णन की विशेषता बताते हुए आपने सूरदास और केशवदास का भी उल्लेख किया है। बाबूसाहब की व्यावहारिक समीक्षा में प्रासंगिक रूप से यह तुलनात्मक शैली बराबर प्रयुक्त हुई है।" कवियों का मूल्यांकन करते वे प्रायः निष्कर्ष रूप में निर्णय भी दे देते हैं। जैसे- तुलसी की कला का विवेचन करते हुए उन्होंने लिखा है, "संक्षेप में तल्लीनता, प्रबन्धपटुता, रचना-चातुर्य, भाषण सौष्ठव, रस परिपाक, अलंकार योजना आदि चाहे जिस दृष्टि से देखें, गोसाईं जी में हम सभी दशाओं में कला का अन्यतम उत्कर्ष पाते हैं।"

बाबू श्यामसुंदर दास का स्थायी महत्व नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की स्थापना है। नागरी प्रचारिणी सभा के लिए कई खोज ग्रन्थ, संपादन और आलोचना कर हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के लिए पाठ तैयार करने के लिए बाबू श्यामसुन्दर दास का योगदान अन्यतम है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इनके ही खोज थे।

3.3.5 बाबू गुलाब राय

बाबू गुलाब राय की प्रसिद्धि निबंधकार के रूप में अधिक है किंतु वे एक सजग आलोचक भी थे। इनकी प्रमुख पुस्तकें हैं— कर्तव्य शास्त्र; तर्क शास्त्र; शांति धर्म; मैत्री धर्म; पाश्चात्य दर्शन का इतिहास; फिर निराशा क्यों; निबंध रत्नाकर; विज्ञान विनोद; मेरी असफलताएँ; मेरे मानसिक उपादान; भारतीय संस्कृति की रूपरेखा; गांधीय मार्ग; मन की बातें; अभिनव भारत के प्रकाश स्तंभ; सत्य और स्वतन्त्रता के उपासक; कुछ उथले कुछ गहरे; मेरे निबंध; जीवन रश्मियाँ;जीवन पशु; अध्ययन एवं आस्वाद; विद्यार्थी जीवन; राष्ट्रीयता; ठलुआ क्लब; विज्ञान वार्ता; बाल प्रबोध इत्यादि। इन्होंने साहित्य संदेश नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया। इन्होंने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों तरह की आलोचना की और इनके आलोचना का अधिक हिस्सा छत्रोपयोगी है। हिंदी नाट्यविमर्श, सिद्धांत और अध्ययन, काव्य के रूप, नवरस, हिंदी कविता में रहस्यवाद इनकी सैद्धांतिक और प्रबन्ध प्रभाकर, हिंदी काव्य विमर्श, प्रसाद की कला, हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास, साहित्य समीक्षा, आलोचना कुसुमांजलि इनकी व्यावहारिक आलोचना है। इनकी आलोचना अध्यापकीय आलोचना है जिसमें रचना के गुण-दोषों का सम्यक विवेचन हुआ है। इनकी आलोचना में नैतिक मूल्यों का समावेश देखने को मिलता है। क्लिष्टता और दुरुहता को आलोचना से निकाल उसमें एक सरसता और जिज्ञासा समाधान का तत्व अधिक होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल और बाबू श्यामसुन्दर दास के बाद गुलाब राय की आलोचना छत्रोपयोगी अधिक है। इनके आलोचना कर्म पर रामदरश मिश्र ने लिखा है, "गुलाब राय की समीक्षाएँ शुक्ल जी की समीक्षाओं की अपेक्षा अधिक उदार हैं, क्योंकि वे समन्वयवादी थे। वे नए-पुराने, पूर्वी-पश्चिमी आचार्यों के मतों के लम्बे-लम्बे उद्धरण देकर उनमें एक समन्वय खोजने के पक्षपाती रहे हैं। यह कार्य निश्चय ही कम विवादास्पद किन्तु सतही होता है। गुलाब राय में पूर्वग्रह नहीं है। किन्तु अपना कहा जा सकने योग्य कोई सिद्धान्त भी नहीं है। इनमें स्वर का फैलाव है और यहाँ-वहाँ से बातें बटोरने की प्रवृत्ति है।"

3.3.6 कृष्ण बिहारी मिश्र

द्विवेदी युग की आलोचना परिदृश्य में देव बड़े कि बिहारी विवाद में देव के समर्थक आलोचक के रूप में कृष्ण बिहारी मिश्र की प्रसिद्धि है। इस युग में शृंगार के रस राजत्व पर विचार और बिहारी बड़े कि देव की बहसों में पद्मसिंह शर्मा बिहारी को बड़े मानते हैं और मिश्रबंधु की तरह कृष्ण बिहारी मिश्र देव को। इन्होंने पद्मसिंह शर्मा के प्रतिउत्तर में 'देव और बिहारी' पुस्तक लिखी। ये देव को रीतिकाल के प्रमुख कवियों में प्रथम स्थान देने पर जोर देते हैं। इनकी आलोचना की श्रेष्ठ बात है की देव की प्रतिष्ठा करते हुए ये बिहारी को कमतर नहीं आंकते। इनकी आलोचना में बिहारी के काव्यगत कलाओं की उपेक्षा नहीं है। इनके द्वारा सम्पादित मतिराम ग्रंथावली में भी इनकी आलोचना-दृष्टि देखी जा सकती है। इनकी दो टूक राय है कि, "हम कुरुचि प्रवर्तक कविता के समर्थक नहीं हैं। परंतु शृंगार कविता के विरुद्ध जो आजकल धर्मयुद्ध सा जारी कर रखा गया है, उसकी घोर निंदा करने से भी नहीं हिचकते हैं। कविता के लिए केवल रस-परिपाक चाहिए, उपयोगितावाद के चक्कर में डालकर ललितकला का सौंदर्य नष्ट करना ठीक नहीं।"

3.3.7 पद्म सिंह शर्मा

द्विवेदी युग में तुलनात्मक आलोचना का विकास हुआ। इस समय देव बड़े कि बिहारी विवाद इसी तुलनात्मक आलोचना के कारण हुआ। इस विवाद में पद्म सिंह शर्मा बिहारी के पक्षधर हैं। देव बड़े बिहारी के विवाद के प्रवर्तक पद्म सिंह शर्मा ही माने जाते हैं। बिहारी इनके प्रिय कवि हैं। इन्होंने बिहारी सतसई : तुलनात्मक अध्ययन लिखा। जिससे यह विवाद आरम्भ हुआ। इस पुस्तक में सतसई काव्य के उद्भव और विकास के अतिरिक्त सतसई आदर्श ग्रंथ, विवेचना, बिहारी काव्य का सौन्दर्य और गाथा सप्तशती, अमरूकशतक, आर्यासप्तशती से बिहारी की कविता की तुलना प्रस्तुत की गई है। कृष्ण बिहारी मिश्र की भाषा जहाँ विवादों में संयत है वहीं पद्म सिंह शर्मा की भाषा विनोदपूर्ण है।

3.3.8 लाला भगवान दीन

लाला भगवान दीन भी रीतिकालीन आलोचना के आलोचक थे। देव बड़े कि बिहारी विवाद में ये पद्मसिंह शर्मा की तरह बिहारी के समर्थक माने जाते थे। इन्होंने कृष्ण बिहारी मिश्र की 'देव और बिहारी' के प्रत्युत्तर में 'बिहारी और देव' नमक पुस्तक लिखी। बिहारी के बाद इनके पसंद के दूसरे कवि केशवदास थे। इसके अतिरिक्त ये खड़ी बोली हिंदी को कविता की भाषा नहीं मानते थे। इनके अनुसार खड़ी बोली हिन्दी में वह माधुर्य नहीं जो कविता के लिए चाहिए। काव्य भाषा के रूप में लाला भगवानदीन ब्रजभाषा के समर्थक थे। इनकी आलोचना में अक्खड़ता और विरोधियों पर व्यक्तिगत आक्षेप की भाषा अधिक देखने को मिलती है। इनके आलोचना का सर्वाधिक महत्व केशवदास के मूल्यांकन और बिहारी सतसई की टीका के लिए दिया जाता है। रामचंद्रिका का जैसा प्रामाणिक भाष्य

लाला भगवान दीन ने किया है वैसा किसी रीतिकाल के व्याख्याता ने नहीं किया है। केशवदास के मूल्यांकन के संदर्भ में अज्ञेय, विजयपाल सिंह, जगदीश गुप्त जैसे लोग लाला भगवान दीन की केशव विषयक समझ को सराहते हैं।

अभ्यास प्रश्न :

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी की आलोचना दृष्टि को रेखांकित कीजिए।

   .....

   .....

   .....

2. द्विवेदी युग के निर्माण में सरस्वती पत्रिका के महत्व को रेखांकित कीजिए।

   .....

   .....

   .....

3. मिश्रबंधुओं के रचनात्मक योगदान की चर्चा कीजिए।

   .....

   .....

   .....

4. द्विवेदी युग में बिहारी बड़े कि देव के मूल्यांकन को आप कैसे देखते हैं?

   .....

   .....

   .....

3.4 द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना का महत्व

भारतेंदु युगीन हिन्दी आलोचना ने हिंदी में व्यावहारिक आलोचना की शुरुआत की। जिसका विस्तार द्विवेदी युग में हुआ। इस समय हिंदी आलोचना और लोकवृत्त में संस्थानीकरण, मानकीकरण और आधुनिक दिशा-निर्धारण के गंभीर प्रयास हुए। द्विवेदी युग में आलोचना भावुकता और अनुभूति से निकल तर्क और सामाजिक दायित्व के यथार्थमूलक ज़मीन पर आई। इस युग में आलोचना को व्यवस्थित रूप मिला। तुलनात्मक आलोचना के क्षेत्र में भले ही देव और बिहारी के विवादों को हो-हल्ला इस युग में था किंतु आलोचनात्मक दृष्टियों और गंभीर बहसों की जगह यहाँ भी मौजूद रहा है।

इस युग से पहले आलोचना प्रायः टीका टिप्पणी और प्रशस्ति तक सीमित थी किंतु इस समय तक आते आते आलोचना गंभीर विषय विश्लेषण का अनुशासन हो गया। द्विवेदी युग में आलोचना स्वतंत्र अनुशासन के रूप में स्थापित हुआ जहाँ रचना का मूल्यांकन, भाषा, शिल्प और रचना के सामाजिक उद्देश्यों पर बातचीत होनी आरम्भ हुई। द्विवेदी युग की आलोचना में मानक भाषा और शुद्धता-बोध पर अधिक ज़ोर दिया गया। सरस्वती जैसी पत्रिका ने हिंदी के व्याकरणिक रूप का प्रतिमानीकरण किया और व्याकरणिक शुद्धता पर ज़ोर दिया। खड़ी बोली हिंदी को आलोचना की भाषा, स्पष्ट और तर्कपूर्ण भाषा बनाने का काम द्विवेदी युग में ही हुआ। द्विवेदी युग में सामाजिक और नैतिक उत्तरदायित्व पर बल दिया गया जिससे रचनाओं में समाज सुधार, राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और लोक-हित की चिंताओं के स्वर शामिल हुए। द्विवेदी युग का सबसे बड़ा महत्व हिंदी को ज्ञान और चिंतन का विषय बनाते हुए गंभीर बौद्धिक विमर्श का विषय बनाने के रूप में दिया जाना चाहिए।

3.5 सारांश

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आपने महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्र बंधु, लाला भगवानदीन, बाबू श्यामसुंदर दास के आलोचनात्मक महत्व को समझ गए हैं। आपने यह भी जाना कि द्विवेदी युग ने आलोचना को व्यवस्थित रूप दिया। यह वही समय है जब हिंदी ने मानक भाषा और शुद्धता बोध पर बल दिया गया। द्विवेदी युग को खड़ा करने में सरस्वती, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, समालोचक इत्यादि पत्रिका का प्रभाव भी अधिक रहा। इस युग ने न सिर्फ राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन बल्कि राष्ट्रीयता की व्यापक चेतना निर्माण करने में मदद की। सरस्वती जैसी पत्रिका मानक और मूल्यांकन की कसौटी बन गई।

3.6 शब्दावली

मुकम्मल : पूरा; सम्पूर्ण
अन्वेषण : खोज
प्रादुर्भाव : जन्म
वैविध्य : विविधता

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखें 3.3

2. देखें 3.3

3. देखें 3.3.

4. देखें 3.3

3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी आलोचना, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

2. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

3. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

3.9 सहायक ग्रन्थ सूची

1. हिंदी आलोचना, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

2. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. द्विवेदी युग के आलोचनात्मक परिदृश्य का रेखांकन करते हुए द्विवेदी युगीन आलोचकों का महत्व निरूपित कीजिए।

2. महावीर प्रसाद द्विवेदी और सरस्वती पत्रिका के महत्व का मूल्यांकन द्विवेदी युगीन आलोचना परिदृश्य के संदर्भ में कीजिए।

इकाई 4 हिन्दी आलोचना : आचार्य रामचंद्र शुक्ल और उनका युग

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 रामचंद्र शुक्ल: कृतित्व और व्यक्तित्व
4.4 रामचंद्र शुक्ल की आलोचना
4.5 शुक्ल-युग के अन्य आलोचक
4.6 हिंदी आलोचना में शुक्ल-युग का योगदान
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक युगीन सर्वाधित चर्चित एवं महत्वपूर्ण साहित्यशास्त्री एवं साहित्येतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित होंगे। साथ शुक्ल युग के अन्य महत्वपूर्ण आलोचकों की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप हिन्दी एवं अन्ततः सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में आचार्य शुक्ल एवं उनकी ऐतिहासिक आलोचनात्मक समीक्षा- दृष्टि की विशेषताओं को समझ सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल के कृतित्व और व्यक्तित्व से परिचित होंगे।
- आचार्य शुक्ल जी आलोचना के सिद्धान्तों से परिचित होंगे।
- शुक्ल-युग की हिंदी आलोचना की प्रमुख प्रवृत्तियों का ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।
- शुक्ल-युग के आलोचकों से परिचित होगे।
- सम्मुख हिंदी आलोचना के क्षेत्र में रामचंद्र शुक्ल के योगदान को जान सकेंगे।

4.3 रामचंद्र शुक्ल: व्यक्तित्व और कृतित्व

रामचंद्र शुक्ल का जन्म 1884 ई. में हुआ। उनका जन्मस्थान उ.प्र. के बस्ती ज़िले का अगोना गाँव है। 1892 से वे अपने पिता के साथ उ.प्र. के ही मिर्ज़ापुर में रहे, जो वहाँ सदर क़ानूनगो के पद पर

नियुक्त थे। नौ साल की उम्र में शुक्ल जी का माता का स्वर्गवास हो गया। विमाता का आगमन हुआ और फलतः उनका बचपन काफ़ी दुःख और अपमान में बीता। शायद जीवन के इस दुःखमय पक्ष के कारण ही शुक्ल जी के व्यक्तित्व में एक अतिरिक्त गम्भीरता शामिल हो गई जो जीवनपर्यन्त रही । वे पढ़ना चाहते थे किंतु जीवनस्थितियाँ प्रतिकूल थीं। उन्होंने अपनी लगन से एंट्रेंस और एफ.ए. की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। मिर्ज़ापुर के पं. केदारनाथ पाठक और बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' के सम्पर्क में शुक्ल जी की साहित्य-रुचि को और बल मिला। यहीं पर उन्होंने हिंदी, उर्दू, संस्कृत और अंग्रेज़ी के साहित्य का गहन-गम्भीर अध्ययन किया, जो आगे उनके लेखन को एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करने में सहायक हुआ। उनके पिता पं. चंद्रबली शुक्ल की इच्छा थी कि वे कचहरी में जाकर काम सीखें लेकिन शुक्ल जी उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। उनके पिता नहीं जानते थे कि वे जिसे कचहरी का मामूली बाबू बनाना चाहते हैं, वह बच्चा एक दिन साहित्य की कचहरी का मुख्य न्यायाधीश बनेगा। कचहरी के नुक़्ते सें ही पिता ने उन्हें वकालत पढ़ने इलाहाबाद भेजा पर उनका मन और कर्म वकालत न न होकर साहित्य में अवस्थित होना था, वे वकालत के इम्तिहान में असफल रहे। उनके पिता ने प्रयास किया कि उन्हे नायब तहसीलदारी हासिल हो पर अंग्रेज़ सरकार से भीख में मिला पद शुक्ल जी को स्वीकार्य नहीं था। वे मिर्ज़ापुर के ही मिशन स्कूल में चित्रकला के अध्यापक हो गए। इसी दौरान उनके लेख हिंदी के पत्र और पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे और उनकी साहित्यिक दृष्टि का यश फैलने लगा। 1909-10 में उनकी योग्यता से प्रभावित होकर बनारस की नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें हिंदी शब्द सागर के सम्पादन में वैतनिक सहायक का कार्य दिया। वे नागरी प्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक भी बने। अंत में शुक्ल जी काशी हिंदू विश्वविद्यालय में प्राध्यापन करने लगे। कुछ समय के लिए वे अलवर राज्य की नौकरी में गए लेकिन रुचि का कार्य न होने के कारण पुनः काशी हिंदू विश्वविद्यालय लौट आए। बाबू श्यामसुंदर दास की मृत्यु के बाद 1937 में उन्हें विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इसी पद पर रहते हुए 1941 में श्वास के दौरे के कारण हृदयगति रुक जाने से शुक्ल जी का देहान्त हो गया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना को उनके परवर्ती आलोचक डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी हिंदी में 'विशुद्ध आलोचना का प्रारम्भ' मानते हैं। हालाँकि रामचंद्र शुक्ल ने 'गोस्वामी तुलसीदास' के अलावा अपने समय में कोई पृथक आलोचना-पुस्तक नहीं छपाई, लेकिन उनका आलोचनाकर्म दरअसल उनकी दूसरी सभी पुस्तकों और निबंधों में मौजूद है। उदाहरण के लिए सूर पर 'भ्रमरगीतसार' की भूमिका या फिर जायसी पर 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका। वस्तुतः 'गोस्वामी तुलसीदास' भी तुलसी ग्रंथावली की भूमिका ही है। भ्रमरगीतसार की भूमिका भी 'महाकवि सूरदास' नामक पुस्तक के रूप में अलग से उपलब्ध है। आज उपलब्ध रस-मीमांसा जैसी पुस्तकें वास्तव में लंबे आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह ही हैं। शुक्ल जी ने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा, जिसमें उनकी आलोचना बीजरूप में स्पष्ट दिखाई देती है। ध्यान देने की बात है कि यह 'इतिहास' भी अलग से नहीं, बल्कि 'हिंदी शब्द सागर' की भूमिका के रूप में लिखा गया और बाद में अपने ऐतिहासिक-सैद्धान्तिक

महत्व के कारण पुस्तक रूप में छपा। फिर चिंतामणि 1-2 में संकलित उनके अद्भुत निबन्ध, जहाँ उनके आलोचक का विराट युगान्तरकारी व्यक्तित्व प्राप्त होता है। बहुत बाद में चिंतामणि -3 नामवर सिंह के सम्पादन में प्रकाशित हुआ।

आचार्य शुक्ल संयोगवश नहीं, बल्कि पूरी सैद्धान्तिक-वैचारिक तैयारी के साथ हिंदी आलोचना के क्षेत्र में आए थे। उन्होंने भारतीय वाङमय का अकूत ज्ञान तो अर्जित किया ही था लेकिन पश्चिमी साहित्य-सिद्धान्तों से उनका जैसा अंतरंग परिचय था, वैसा उनसे पहले किसी आलोचक का नहीं रहा। शुक्ल जी का समय स्वतंत्रता संग्राम के तीव्रतर होते जाने और फलतः अंग्रेज़ी के घोर विरोध का समय था। शुक्ल जी जानते थे कि इस विरोध का रुख़ अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद और शोषकशक्तियों की ओर होना चाहिए, न कि भाषा और उसकी साहित्यिक सम्पदा की ओर। शुक्ल जी हिंदी के पहले आलोचक-विद्वान हैं, जो तब तक उपलब्ध अंग्रेज़ी के सैद्धान्तिक साहित्य से लगातार परिचित होते रहे और उसका अनुवाद भी हिंदी के पाठकों को उपलब्ध कराते रहे। उदाहरण के लिए एडिसन के विख्यात निबन्ध 'एसे आन इमेजिनेशन' का अनुवाद उन्होंने 'कल्पना का आनन्द' शीर्षक से किया। वे जर्मन विद्वान मानवशास्त्री हैकल की पुस्तक 'रिडिल ऑफ दि यूनीवर्स' से बहुत प्रभावित थे, जिससे उन्होंने ज्ञान-विज्ञान की सीमारेखा पर खड़े रहकर जीवन और उसकी महिमा को व्यक्त करनेवाले साहित्य को देखने की अपनी निजी बौद्धिकदृष्टि अर्जित की। इस पुस्तक का अनुवाद भी उन्होंने हिंदी के लेखकों और पाठकों के लिए किया, जो बनारस की नागरी प्रचारिणी सभा से 'विश्वप्रपंच' नाम से छपा। इस पुस्तक का उन्होंने महज अनुवाद ही नहीं किया, बल्कि 155 पृष्ठों की विशाल भूमिका भी लिखी, जिसमें उस पुस्तक के महत्व के विश्लेषण के साथ-साथ शुक्ल जी की उस पुस्तक के प्रति सहमति और असहमतियाँ भी दर्ज़ हैं। इसे मात्र संयोग नहीं समझा जाना चाहिए कि भक्तिकालीन काव्य के समर्थक शुक्ल जी की यह प्रिय अनात्मवादी पुस्तक, उस समय के विख्यात साम्यवादी जननायक लेनिन को भी उतनी ही प्रिय थी।

रामचंद्र शुक्ल के कृतित्व की एक ख़ास बात यह भी है कि वे हिंदी साथ-साथ अंग्रेज़ी में भी लिखते रहे। उस समय के अंग्रेज़ी भारतीय पत्रों के लिए उन्होंने राजनीतिक युगबोध से सम्बन्धित लेख लिखे, जो प्रकारान्तर से उनकी आलोचकीय दृष्टि की पहचान कराते हैं। उदाहरण के लिए 'हिंदुस्तान रिव्यू' में 'व्हाट हैज़ इंडिया टु डू' और 'लीडर' में 'हिंदी एंड मुसलमान्स' शीर्षक से छपे उनके लेख। कोई भी प्रबुद्ध आलोचक जानता है कि साहित्य का स्रोत समकालीन सामाजिक-राजनीतिक जनजीवन में अवस्थित होता है, जिसे भली-भाँति जाने और उस पर अपनी राय क़ायम किए बिना साहित्य की आलोचना सम्भव नहीं। शुक्ल जी ने इस जनजीवन को जानने के जटिल किंतु सफल प्रयास किए, न सिर्फ़ समकालीन जीवन को, बल्कि पिछले हज़ार वर्ष के भारत को जानने के।

आलोचनात्मक ग्रंथ:

सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास, जायती ग्रंथावली काव्य में रहस्यवाद, काव्य में अभिव्यंजनावाद, रस-मीमांसा आदि।

निबन्धात्मक ग्रंथ:

उनके निबन्ध चिंतामणि के दो भागों में संग्रहीत हैं। उनके बाक़ी निबन्धों का संग्रह भी चिंतामणि के तीसरे भाग के रूप में शुक्ल जी की मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ, जिसका सम्पादन प्रखर मार्क्सवादी आलोचक नामवर सिंह ने किया।

हिंदी साहित्य का इतिहास।

शुक्ल जी ने कई पुस्तकों के अनुवाद किए, जिनमें शशांक और विश्वप्रपंच, बुद्ध चरित आदर्श जीवन, मेगस्थनीज़ का भारतवर्षीय वर्णन, राज्य प्रबंध शिक्षा कल्पना का आनन्द आदि प्रमुख हैं। संपादित ग्रंथों में हिंदी शब्द सागर, भ्रमरगीत सार, सूर-तुलसी-जायसी ग्रंथावलियाँ उल्लेखनीय हैं।

4.4 रामचंद्र शुक्ल की आलोचना

महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके युग की आलोचना मुख्यतः साहित्येतिहास और भाषा केंद्रित रही। उसमें अपने और बीते समय के समाज और उसके मन को समझने की कोशिश न के बराबर थी। वह साहित्य एवं भाषा के नियम और सिद्धान्तों के निर्माण को ही अपना दायित्व समझ बैठी थी। आचार्य शुक्ल ने इस धारणा को तोड़ा। यह द्विवेदी-युग पर आक्षेप नहीं है बल्कि आलोचना के महत्वपूर्ण आरम्भिक पक्ष का निरूपण भर है। रामचंद्र शुक्ल, जैसा कि पहले भी कहा गया, पूरी वैचारिक तैयारी के साथ आलोचना के क्षेत्र में आए थे। उनकी यह तैयारी ऐसी थी कि उनका लिखा हिंदी साहित्य का इतिहास भी कुछ पक्षों में किंचित विवादित होने के बावजूद आलोचना-ग्रंथ मान लिया जाता है। वे दर्शन, इतिहास, सिद्धान्त, विज्ञान, समाज और राजनीति के अपने समय के ज्ञान से पूरी तरह अवगत थे और इनमें से हर पक्ष पर अपनी निजी राय भी रखते थे, जो उनके आलोचकीय व्यक्तित्व को विराट बनाता है। उन्होंने जितने भी निबन्ध लिखे, वे आज की परिभाषा में शुद्ध आलोचना हैं। मनोविकार सम्बन्धी निबन्धों की विषयवस्तु भी दरअसल साहित्य की उलझनों को सुलझाने का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

आचार्य शुक्ल के आलोचना सिद्धान्तों को बिंदुवार दिया जाए, तो वे कुछ इस प्रकार होंगे -

1. साहित्य-रचना में लोकमंगल-तत्व का होना एक अनिवार्य शर्त है। शुक्ल जी का दिया 'लोकमंगल' का यह पद तुलसी की रामचरित मानस से प्रेरित है पर इसका दायरा आधुनिक सन्दर्भों में जनवाद तक पहचाना जा सकता है।
2. शुक्ल जी के अनुसार कविता भावयोग की साधना है। इस साधना से मनुष्य का हृदय स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मंडल से ऊपर उठकर लोक-सामान्य भावभूमि पर पहुँच जाता है। इस तरह रामचंद्र शुक्ल साहित्य को विशिष्टता के घेरे से निकालकर सामान्य जन के संसार में पहुँचा देते हैं।
3. आचार्य शुक्ल के अनुसार लोक-सामान्य भावभूमि पर पहुँचना काव्य का उद्देश्य है। अर्थात आम जनों से भरे अपने बाहर के विराट संसार और समाज को न सिर्फ़ जानना

बल्कि अपनी अभिव्यक्ति में उस तक पहुँचना कविता लक्ष्य होना चाहिए और ऐसी कविता लोकमंगलवादी होगी।

4. शुक्ल जी ने अपने आलोचना-सिद्धान्त साहित्यिक रचनाओं के आधार पर स्थापित किए हैं इसलिए उनकी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना में परस्पर संगति स्पष्ट दिखाई देती है। यह आलोचना की मूल समस्या है कि आलोचक सैद्धान्तिक रूप से कुछ और मानता और कहता है किंतु किसी कृति पर व्यावहारिक समीक्षा करते हुए अपने ही सिद्धान्तों के विरोधी पक्षों पर सहमति व्यक्त करने लगता है। शुक्ल जी की आलोचना इस समस्या से मुक्त है क्योंकि सिद्धान्तों के प्रतिपादन में वे साहित्यिक कृतियों से कई-कई उदाहरण देते चलते हैं। उनका लोकमंगल के महत्व का सिद्धान्त भी मूल रूप से भक्तिकाव्य और प्रिय कवि तुलसी की व्याख्या करने उपक्रम में ही विकसित हुआ है। अर्थात शुक्ल जी की आलोचना के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष एक-दूसरे से बँधे-जुड़े हुए हैं, जो उन्हें और भी विश्वसनीय बनाते हैं।
5. आचार्य शुक्ल ने हर उस तरह के साहित्य, जो आम जन की अभिव्यक्ति नहीं करता, को सामन्ती साहित्य माना और उसका विरोध किया। इसका प्रमाण रीतिकाव्य सम्बन्धी उनकी स्थापनाओं में स्पष्ट रूप से मिलता है। वे देशभक्ति और जनतंत्र की साहित्यिक परम्परा और विरासत को पहचानने तथा स्थापित करने में विश्वास रखते थे।
6. भक्तिकाल की कविता और उसमें भी तुलसीदास की कविता से प्रेरणा प्राप्त करने वाले शुक्ल जी के विषय में यह भ्रम आम है कि धार्मिकता के समर्थक आलोचक थे लेकिन रस-मीमांसा में उन्होंने स्पष्ट किया है कि अध्यात्म शब्द की मेरी समझ में काव्य या कला के क्षेत्र में कहीं कोई ज़रूरत नहीं है। जीवन-व्यवहार में आस्तिक और धर्मनिष्ठ शुक्ल जी के आलोचकीय सिद्धान्तों में यह सिद्धान्त सबसे क्रांतिकारी है।
7. आचार्य शुक्ल के अनुसार साहित्यकर्म, जिसमें आलोचना शामिल है, को रूढ़िवादी धार्मिकता, पारलौकिकता, रहस्यवादिता से दूर सामान्य समाज और व्यक्तिमात्र के लिए अभिव्यक्ति करनी चाहिए।
8. रूढ़िवादिता और कर्मकांड से अलग शुक्ल जी भक्ति पर बल दिया और उसमें भी सगुण भक्ति पर क्योंकि उनकी दृष्टि में सगुणमार्गी भक्त के लिए भगवान की ओर जानेवाला रास्ता इसी संसार के बीच से होकर जाता है। शुक्ल जी निर्गुण के पक्ष क्यों नहीं नहीं है, इस बात को उन्होंने सूरदास पर लिखते हुए स्पष्ट किया है - भक्त की अनुभूति वही है जिसे काव्य की लीनता या रस-प्रतीति कहते हैं। प्रक्रिया भी वही स्वाभाविक और सीधी-सादी है। कल्पना या भावना, जिससे विज्ञान का भीतरी साक्षात्कार होता है और भाव या रागात्मिका वृत्ति जिससे आनन्दानुभूति होती है, दोनों मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियाँ हैं। बस इन्हीं दो स्वाभाविक वृत्तियों के सहारे भक्ति रस की निष्पत्ति हो जाती है। इसके सीधे-

सादे विधान में न इला पिंगला नाड़ियाँ हैं, न सहस्त्रार चक्र, न ब्रह्मरंध्र, न आसन, न प्राणायाम।

9. शुक्ल जी की स्पष्ट मान्यता है कि साहित्यकार को आधुनिक वैज्ञानिक जीवनदृष्टि से सम्पन्न होना चाहिए। विज्ञान और तकनीक के अंधानुकरण का समर्थन उन्होंने नहीं किया और उसकी सीमाओं को रेखांकित करते हुए वे मानव के विकास में वैज्ञानिक विवेचन के महत्व को स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि दरअसल वैज्ञानिक जीवनदृष्टि ही साहित्यकार को उस पाखंड और रूढ़िवादिता से दूर करती है, जिसके कारण वह लोक और लोकमंगल की अभिव्यक्ति से विरत हो सामान्य भावभूमि को हेय समझने लगता है।
10. शुक्ल जी ख्याति रससिद्धान्त के उद्भावक आचार्य के रूप में भी रही है। ध्यान देने का विषय है कि आचार्य शुक्ल ने रस की व्याख्या का कार्य साधारणीकरण के माध्यम से सामाजिक सन्दर्भों में किया है और उसे आस्वाद से बढ़ाकर मूल्य से जोड़ दिया है। हिंदी-संस्कृत के दूसरे रसशास्त्री यह काम नहीं कर पाए, जिसे अत्यन्त सहजता से शुक्ल जी ने किया।
11. आचार्य शुक्ल ने सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना की एक सर्वथा नई सामाजिक-मनोवैज्ञानिक पद्धति विकसित की, जो तब तक हिंदी आलोचना में नहीं थी। बाद में मनोविज्ञान और समाज को जोड़ कर हिंदी में एक नया पद आया 'मनोसमाज', जो छायावाद से लेकर नई कविता और आज तक व्यवहार में लाया जाता है। इसका बीजरूप और मूल सिद्धान्त शुक्ल जी की आलोचना में ही है।
12. सरल शब्दों में कहें तो शुक्ल जी की आलोचना साहित्य को जीवन में और जीवन को साहित्य में प्रतिष्ठित करने वाली आलोचना है।
13. आचार्य शुक्ल ने साहित्य-रचना में भाव को बहुत महत्व दिया है और रस-मीमांसा में भाव के स्वरूप को कई स्थानों पर स्पष्ट किया है। इस क्षेत्र में उनका बीज सिद्धान्त है कि भाव की प्रतिष्ठा से प्राणियों के कर्मक्षेत्र का विस्तार बढ़ गया है। ये भाव जिस मन में उत्पन्न होते हैं वह अध्यात्म की विषयवस्तु न होकर दृश्यमान जगत का प्रतिरूप भर है। भाव की साधना को शुक्ल जी कर्म और ज्ञानयोग की साधना के समकक्ष माना है और बार-बार कहने की ज़रूरत नहीं कि यह भाव लोक-सामान्य का भाव ही है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि मुक्तहृदय मनुष्य अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है और यही मुक्तहृदय मनुष्य ही सच्चा कवि या साहित्यकार हो सकता है।
14. कविता के कलापक्ष या रूपविधान के लिए शुक्ल जी की स्पष्ट स्थापना है कि जगत ही काव्य का मूल कारण है। जगत अपार अगाध रूप समुद्र है और इसी की रूप तंरगों से मनुष्य की कल्पना का निर्माण और उसके भीतर विविध भावों या मनोविकारों का विधान हुआ है, जो कविता में दिखाई देते हैं।

15. शुक्ल जी के अनुसार रूप-विधान तीन प्रकार के होते हैं -
    1. प्रत्यक्ष रूप-विधान
    2. स्मृत रूप-विधान
    3. संभावित या कल्पित रूप-विधान

प्रत्यक्ष रूप-विधान से मन में प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं का प्रतिबिम्ब खड़ा होता है। जब अतीत में प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं के रूप-व्यापार का स्मरण करके हम रस-निमग्न हो उठते हैं, उस समय हमारे मन में स्मृत रूप-विधान होता है। लेकिन कवि एक और प्रकार का रूप-विधान करते हैं। इसमें वे देखे हुए या जाने हुए पदार्थों के आधार पर नवीन वस्तु-योजना प्रस्तुत करते हैं, इसी को संभावित या कल्पित रूप-विधान कहते हैं। रस की प्राप्ति तीनों से होती है पर कवि का विधान मुख्यतः तीसरा है। शुक्ल जी रस-मीमांसा में लिखा है - संभावित या कल्पित रूप-विधान द्वारा जागरित मार्मिक अनुभूति तो सर्वत्र काव्यानुभूति या रसानुभूति मानी जाती है। यहाँ स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि शुक्ल जी कल्पना को यथार्थजनित ही मानते हैं, पारलौकिक नहीं। कल्पना का सम्बन्ध प्रत्यक्ष वस्तुओं से होता है, शुद्ध कल्पना जैसी कोई वस्तु नहीं होती।

1. हालाँकि शुक्ल जी पाश्चात्य मान्यताओं से परिचित और प्रभावित थे लेकिन योरोप में चल रहे आंदोलनों किंवा वादों-प्रवादों से वे सहमत नहीं थे। वे वादों की इस भीड़ को त्वरित प्रतिक्रिया भर मानते थे और उनके लिए इनका कोई स्थायी मूल्य तथा महत्व नहीं था।
2. शुक्ल जी पर आलोचक के रूप में कुछ आक्षेप भी हैं। उन्होंने कबीर जैसे नितान्त सामाजिक संदर्भों वाले कवि को अनदेखा कर एक ऐतिहासिक भूल की, जिसका परिमार्जन उनके बाद की पीढ़ी में आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने 'कबीर' नामक पुस्तक लिखकर किया। वे आदिकाल के काव्य में भी बौद्ध सिद्धों, जैन श्रावकों और नाथयोगियों के काव्य के साथ न्याय नहीं कर पाए। मनोवैज्ञानिक आलोचन का प्रतिष्ठाता होने के बावजूद आधुनिककाल में छायावाद तथा उसके निराला, पंत और महादेवी जैसे कवि उनके कोपभाजन बने।

4.4 शुक्ल-युग के अन्य आलोचक

श्यामसुंदर दास

श्यामसुंदर दास यो तो शुक्ल जी से पहले हिंदी जगत में आ चुके थे और यथाशक्ति अपनी पूरी प्रतिभा के साथ उसकी सेवा कर रहे थे पर जब बात आलोचना की होती है तो उन्हें शुक्ल-युग का ही आलोचक माना जाता है। श्यामसुंदर दास का आलोचना को सबसे बड़ा योगदान 'साहित्यालोचन' नामक पुस्तक है। यह पुस्तक भारतीय काव्यशास्त्र और पश्चिमी साहित्य सिद्धान्तों को आमने-सामने रखते हुए आलोचना के विविध रूपों से परिचित कराती है। श्यामसुंदर दास की दूसरी महत्वपूर्ण पुस्तक 'काव्य का विवेचन' है, जिसमें काव्य का सर्वांग परीक्षण किया गया है। उनकी अगली पुस्तक 'गद्य

काव्य का विवेचन' है, जिसमें उन्होंने उपन्यास और नाटक के भेद-अभेद, उपन्यास के तत्व, उपन्यासों में जीवन का चित्रण, उपन्यास में सत्यता अथवा यथार्थ, उपन्यास में नीति, कहानी के रूप -रचना सिद्धान्त-उद्देश्य और निबन्धकला पर विस्तार से लिखा है। अपनी तरह की यह पहली पुस्तक है जो गद्य की आलोचना का आरम्भिक किंतु महत्वपूर्ण प्रयास करती है। इसके अलावा व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में भी उन्होंने बहुत कार्य किया। कबीर ग्रंथावली की भूमिका उनकी व्यावहारिक आलोचना अच्छा परिचय मिलता है। इसके अलावा रामचंद्र शुक्ल के हिंदी साहित्य का इतिहास के एक साल बाद प्रकाशित उनकी साहित्येतिहास की पुस्तक 'हिंदी साहित्य' में उन्होंने शुक्ल जी से असहमत होते हुए कुछ नई स्थापनाएँ दी हैं।

पदुमलाल पुन्ना लाल बख्शी

रामदरश मिश्र के शब्दों में श्यामसुंदर दास के साथ बख्शी जी का नाम इस अर्थ में लिया जा सकता है कि इन्होंने भी पाठकों के समक्ष देश और विदेश की विविध साहित्यिक सामग्री प्रस्तुत की। बख्शी जी का कार्य उतना विश्लेषणात्मक नहीं है, जितना परिचयात्मक। बख्शी जी का महत्व केवल इस बात में है कि इन्होंने बड़े उदार भाव से पूरब और पश्चिम के साहित्य का परिचय दिया और यह कार्य तब किया जब हिंदी में इसकी आवश्यकता थी। 'विश्व साहित्य' और 'हिंदी साहित्य विमर्श' बख्शी जी की दो प्रमुख पुस्तकें हैं। 'हिंदी साहित्य का विमर्श' 1922-23 में लिखी गई यानी शुक्ल जी के हिंदी साहित्य का इतिहास से पूर्व।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

आचार्य शुक्ल की आलोचना ने दो धाराएँ स्थापित कीं - पहली जो उनकी मान्यताओं को जस का तस स्वीकार करती है और उनकी व्याख्याएँ प्रस्तुत करती है। दूसरी वह जिसमें सैद्धान्तिक क्षेत्र में नई स्थानाएँ और व्याख्याएँ की गई। विश्वनाथप्रसाद मिश्र पहली परम्परा में आते हैं और उनका अपना मौलिक साहित्य सिद्धान्त देखने को नहीं मिलता। वाङमय विमर्श, बिहारी की वाग्विभूति, भूषण और घन आनन्द उनकी प्रमुख पुस्तकें हैं। पुस्तकों के नाम से ही स्पष्ट है कि रीतिकालीन कविता पर उन्होंने काम किया है।

हिंदी आलोचना में में आचार्य शुक्ल का युग हिंदी कविता में छायावाद का युग है, जिसका आचार्य शुक्ल ने विरोध किया क्योंकि वे स्वच्छंदता और रहस्यवाद को लोकमंगल में बाधक मानते थे। लेकिन छायावादी कविता और कवियों का अपना एक मनोसमाज था, जो वास्तविक मानव समाज में लगातार आवाजाही करता रहता था, उनका लोकमंगल की अवधारणा से कोई स्वभावगत विरोध नहीं था, जैसा शुक्ल जी को प्रतीत हुआ था। आचार्य शुक्ल ने इस आवाजाही और तथ्य पर ध्यान नहीं दिया और परिणामस्वरूप बीसवीं सदी के अत्यन्त महत्वपूर्ण महाकवि निराला से उनका वैचारिक संघर्ष लम्बे समय तक तत्कालीन हिंदी समाज में हलचल का सबब बना रहा। छायावाद के समर्थन में

निराला, प्रसाद, पंत और महादेवी वर्मा ने पर्याप्त आलोचनात्मक लेखन किया, जिसका ऐतिहासिक महत्व है। इसके अलावा शुक्ल-युग के प्रमुख आलोचकों में जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, गुलाब राय, लक्ष्मीनारायण सुधांशु कृष्ण शंकर शुक्ल, केसरी नारायण शुक्ल और सत्येन्द्र का नाम आता है।

1. बोध प्रश्न

क . निम्न प्रश्नों के सही विकल्प चुनिए

1. निम्न में कौन शुक्ल-युग का आलोचक नहीं है -

(अ) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

(ब) बालकृष्ण भट्ट

(स) जयशंकर प्रसाद

(द) सत्येन्द्र

2. रामचंद्र शुक्ल का जन्म कब हुआ -

(अ) 1882

(ब) 1892

(स) 1884

(द) 1886

3. निम्न में कौन-सी आचार्य शुक्ल की पुस्तक नहीं है-

(अ) रस-मीमांसा

(ब) साहित्यालोचन

(स) गोस्वामी तुलसीदास

(द) महाकवि सूरदास

4. निम्न से किस पश्चिमी विचारक का प्रभाव आचार्य शुक्ल पर पड़ा-

(अ) नीत्शे

(ब) सात्र

(स) हैकल

(द) मार्क्स

बोध प्रश्न 2 . सत्य/असत्य चुनिए

1. आचार्य शुक्ल के निबन्धों में उनकी आलोचना के सूत्र मिलते हैं -

(अ) सत्य

(ब) असत्य

2. आचार्य शुक्ल काव्य में लोकमंगल की साधना को आवश्यक मानते हैं -

(अ) सत्य

(ब) असत्य

3. आचार्य शुक्ल ने आलोचना में मनोविश्लेषण का सूत्रपात किया-
(अ) सत्य
(ब) असत्य
4. आचार्य शुक्ल ने रससूत्र की व्याख्या की-
(अ) सत्य
(ब) असत्य

4.6 हिंदी आलोचना में शुक्ल-युग का योगदान

रामचंद्र शुक्ल और उनका युग हिंदी आलोचना के विकासक्रम में एक महत्वपूर्ण पड़ाव की तरह है, जहाँ हिंदी साहित्य के इतिहास की सैद्धान्तिक पड़ताल, समीक्षा और आलोचना में नए मूल्यों का आग्रह, वैज्ञानिक जीवनदृष्टि, साहित्य की सामाजिकता, पश्चिमी साहित्यशास्त्र से साक्षात्कार आदि कई पक्ष सामने आते हैं। हिंदी आलोचना का आधुनिक स्परूप और दिशा यहाँ से निर्धारित होते हैं। इस पूरे युग पर आचार्य शुक्ल के विराट व्यक्तित्व की मौलिक छाप है। उनके साहित्य सिद्धान्तों में से कुछ अपवादों को छोड़कर, अधिकांश आज भी प्रभावी हैं और साहित्य विमर्श का हिस्सा बनते हैं। इन सभी पर पहले ही लिखा जा चुका है इसलिए यहाँ फिर से उल्लेख आवश्यक नहीं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि द्विवेदी-युग में प्रकट हुई आधुनिक हिंदी आलोचना ने अपना निजी और अलग रूप शुक्ल जी की आलोचना में पाया जो सामान्य जन-जीवन, वास्तविक मानव समाज और व्यक्ति के भावों का उत्सव मनाती है। जहाँ कल्पना भी यथार्थ से जुड़ जाती है, जहाँ एक आम आदमी को कविता का आस्वाद पाने का अधिकार है, जहाँ विशिष्टता और सामन्ती जीवनमूल्यों का नकार और मनुष्य के पक्ष में आधुनिक वैज्ञानिक भावबोध का गहरा स्वीकार है। आचार्य शुक्ल की आलोचना प्राचीन साहित्य की युगानुकूल व्याख्या करती है, उसमें अपने युग की दृष्टि के अनुरूप सौन्दर्य का संधान करती हुई उसे फिर से अर्थ और सन्दर्भवान बना देती है। इस प्रकार उनकी आलोचना में हमारा महान साहित्य जातीय चिन्तन और भावना अंग बना रहता है। शुक्ल जी कविता के रूप-विधान पर लिखते हुए सम्भावित या कल्पित रूप-विधान के निकट अवश्य बताया है किंतु कल्पना का वास्तविक अर्थ भी स्पष्ट किया है। कल्पित रूप-विधान यथार्थ से कटी हुई नहीं, बल्कि यथार्थ से जुड़ी हुई और उसके मानसिक विस्तार से जुड़ी वस्तु है। यह कल्पना प्रत्यक्ष जगत के दृश्यमान प्रतिबिम्बन से उत्पन्न कल्पना है, कवि के मन जन्मी कोरी और कृत्रिम कल्पना नहीं। कल्पना के नाम पर अतिरेकपूर्ण कलाबाज़ियों का शुक्ल जी विरोध किया है और रीतिकालीन कवियों- केशव, बिहारी, छायावादी कवियों और पश्चिम के कमिंग्ज़ आदि कवियों की आलोचना वे इसी दृष्टि के साथ करते हैं।

3 बोध प्रश्न

ग . निम्न विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का व्यक्तित्व।

(2) लोकमंगल की अवधारणा।
(3) हिंदी आलोचना में रामचंद्र शुक्ल का स्थान।
(4) आचार्य रामचंद्र शुक्ल के प्रमुख आलोचना सिद्धान्त।
(2) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कृतित्व ।

4.7 सारांश

यह इकाई रामचंद्र शुक्ल की आलोचना के स्वरूप को स्पष्ट करती है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालती है। उनकी आलोचना के सिद्धान्तों से परिचय और उनकी पड़ताल करती है। हिंदी आलोचना में शुक्ल जी के महत्व को विद्यार्थी के सामने रखती है, जिससे उसे शुक्ल जी से पहले और उनके बाद की आलोचना का स्परूप पहचानने में भी सहायता मिलती है। इस इकाई में आचार्य शुक्ल के आलोचना सिद्धान्तों को विस्तार से बिंदुवार प्रस्तुत किया गया है, जो सरलता से विद्यार्थी में विषय के प्रति रुचि और समझ विकसित करता है। प्रयास किया गया है कि जटिल और बौद्धिक विमर्श होने के बावजूद शुक्ल जी की आलोचना को सरलतम रूप में विद्यार्थी के लिए ग्राह्य बनाया जा सके। शुक्ल जी के युग में और उसके बाद भी उनके समर्थन और असहमति की दो विरोधी धाराएँ हिंदी आलोचना में विद्यमान थीं, इस इकाई में उन दोनों का ही संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया गया है ताकि विद्यार्थी उस सैद्धान्तिक द्वन्द्व को पहचान सके जिससे किसी भी देश की भाषा और साहित्य में आलोचना के मूल स्वरूप का निर्माण होता है। इस इकाई में शुक्ल जी की सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक आलोचना के अन्तर्सम्बन्धों पर भी स्पष्ट टिप्पणी है, जिससे आलोचना की विश्वसनीयता को परखने के सूत्र भी विद्यार्थी प्राप्त कर सकता है। पूर्ववर्ती युग से तुलना करते हुए शुक्ल-युग के महत्व को इस इकाई में सैद्धान्तिक आधार पर रेखांकित किया गया है, ताकि विद्यार्थी के आगे यह जटिल विमर्श सरल शब्दों में खुल सके। संक्षेप में यह इकाई आचार्य शुक्ल की आलोचना सभी महत्वपूर्ण पक्षों, उनके युग और अतीत-वर्तमान के समीकरणों को हल करने का उपक्रम करते हुए विद्यार्थी को साहित्य के पाठ से सम्बन्धित बौद्धिक विमर्श के लिए तैयार करती है।

4.8 शब्दावली

श्वास	-	साँस
सैद्धान्तिक	-	सिद्धान्त संबंधी
शोषक	-	शोषण करने वाला, अत्याचारी
प्रतीति	-	विश्वास
मींमासा	-	समीक्षा,परीक्षा
कृत्रिम	-	बनावटी

उपक्रम - प्रयास

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

हिंदी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल
गोस्वामी तुलसीदास - रामचंद्र शुक्ल
महाकवि सूरदास - रामचंद्र शुक्ल
जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल
चिंतामणिःतीनों भाग- रामचंद्र शुक्ल
रस-मीमांसा- रामचंद्र शुक्ल
हिंदी आलोचना- विश्वनाथ त्रिपाठी
हिंदी साहित्य कोश-भाग दो
रामचंद्र शुक्ल के श्रेष्ठ निबंध - डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र/विनोद तिवारी
हिंदी आलोचना के बीजशब्द - बच्चन सिंह
आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचना का अर्थ: अर्थ की आलोचना- रामस्वरूप चतुर्वेदी
आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास की रचना-प्रक्रिया- समीक्षा ठाकुर
इतिहास और आलोचना- नामवर सिंह
आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना- रामविलास शर्मा
हिंदी आलोचना का विकास- नंदकिशोर नवल
आचार्य रामचंद्र शुक्ल: आलोचना के नए मानदंड- भवदेव पांडेय

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व का परिचय दीजिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'साहित्य में जीवन और जीवन में साहित्य की स्थापना के आलोचक है' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
(2) हिंदी आलोचना के विकासक्रम पर प्रकाश डालते हुए रामचंद्र शुक्ल और उनके युग का महत्व स्पष्ट कीजिए।

इकाई 5 शुक्लोत्तर युग एवं हिन्दी आलोचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 पूर्वपीठिका: छायावादी कवियों /आलोचकों की आलोचना-दृष्टि
5.4 हिंदी आलोचना और शुक्लोत्तर युग
5.4.1 पं. नंददुलारे वाजपेयी
5.4.2 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
5.4.3 डॉ. नगेन्द्र
5.4.4 डॉ. देवराज
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री
5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने हिन्दी आलोचना के सर्वाधिक महव्पूर्ण हस्ताक्षर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व के साथ-साथ उनकी महत्वपूर्ण आलोचना दृष्टि का परिचय प्राप्त किया। प्रस्तुत इकाई में आप जान सकेंगे की शुक्लोत्तर आलोचना शुक्ल जी की समानुवर्ती और विरोधी धाराओं में विकसित हुई है। सैद्धान्तिक समीक्षा में यह विकास साफ़ दिखाई पड़ता है। शुक्ल जी के तुरत बाद हिंदी में प्रगतिशील धारा का भी विकास हुआ, जिस पर तीसरी इकाई के अन्तर्गत विस्तार से विचार किया जाएगा। व्यावहारिक आलोचना के पीछे निश्चित रूप से सिद्धान्त ही प्रभावी होते हैं, जैसा कि शुक्ल जी की आलोचना के बारे में विचार करते हुए हमने जाना। शुक्लोत्तर युग में चार आलोचक विशेषतया सक्रिय रहे हैं - पं. नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र और डॉ. देवराज। इनके अतिरिक्त भी कुछ नाम हैं, चार प्रमुख आलोचकों समेत जिन पर इस इकाई में प्रकाश डाला जाएगा।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई शुक्ल जी के देहावसान के बाद हिंदी आलोचना में महत्व प्राप्त करने आलोचकों और उनकी आलोचना-दृष्टि पर केंद्रित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- शुक्ल जी के युग में ही उनसे असहमति रखने वाले छायावादी रचनाकारों / आलोचकों की आलोचना दृष्टि से परिचित प्राप्त कर सकेंगे।
- शुक्लोत्तर युग की आलोचना के सैद्धांतिक रूप का परिचय पा सकेंगे ।
- शुक्लोत्तर युग के आलोचक पं. नंददुलारे वाजपेयी की आलोचना दृष्टि से अवगत होंगे।
- शुक्लोत्तर युग के आलोचक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की आलोचना दृष्टि से परिचय प्राप्त करेंगे।
- शुक्लोत्तर युग के अन्य आलोचकों से परिचित होंगे।

5.3 पूर्वपीठिका: छायावादी कवियों/आलोचकों की आलोचना

आचार्य शुक्ल के समकालीन कवियों में प्रसाद, पंत और निराला छायावाद की वृहत्त्रयी के रूप में प्रसिद्ध थे और चौथा नाम महादेवी वर्मा का लिया जाता था। ये कवि शुक्ल जी की छायावादसम्बन्धी स्थापनाओं से सहमत नहीं थे, जिनके अनुसार छायावाद का वैचारिक स्रोत पश्चिमी था और ईसाई संतों का रहस्य अथवा छायाभास बंगाल से होता हुआ हिंदी में पहँुचा था। आचार्य शुक्ल तो छायावाद को वैचारिक आंदोलन न मानकर महज शैली मानते थे। यहाँ इन्हीं तथ्यों के प्रकाश में छायावादयुगीन कवियों/आलोचकों की मान्यताओं पर प्रकाश डाला जाएगा।

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में कई स्थलों पर शुक्ल जी की धारणाओं खंडन किया है -विज्ञ समालोचक भी हिंदी की आलोचना करते-करते छायावाद, रहस्यवाद आदि वादों की कल्पना करके उन्हें विजातीय, विदेशी तो प्रमाणित करते ही हैं, यहाँ तक कहते हुए लोग सुने जाते हैं कि वर्तमान हिंदी कविता में अचेतनों में, जड़ों में चेतनता का आरोप करना हिंदीवालों ने अंग्रेज़ी से सीखा....कहीं अंग्रेज़ी में उन्होंने देखा कि 'गाड दज़ लव' फिर क्या, कहीं भी हिंदी में ईश्वर के प्रेम रूप का वर्णन देखकर उन्हें अंग्रेज़ी के अनुवाद या अनुकरण की घोषणा करनी पड़ी। स्पष्ट है कि प्रसाद जी का यह कथन स्वयं उनकी कविता और उस पर आचार्य शुक्ल के आक्षेप की प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न हुआ।

प्रसाद जी के अनुसार 'काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति' है। वे लिखते हैं - आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पात्मक अनुभूति कही जा सकती है। आचार्य शुक्ल द्वारा प्रस्तुत रहस्यवाद के विरोध के विषय में प्रसाद जी अपने 'रहस्यवाद' नामक निबन्ध में कहते हैं - भारतीय विचारधारा में रहस्यवाद को स्थान न देने का एक मुख्य कारण है। ऐसे आलोचकों के मन में एक तरह की झल्लाहट

है। रहस्यवाद के आनन्द-पथ को उनके कल्पित भारतीयोचित विवके में सम्मिलित कर लेने से आदर्शवाद का ढाँचा ढीला पड़ जाता है....आनन्द-भावना, प्रिय कल्पना और प्रमोद हमारी व्यवहार्य वस्तु थी। आज की जातिगत निर्वीयता के कारण उसे ग्रहण न कर सकने पर यह सेमेटिक है, कहकर संतोष कर लिया जाता है....वर्तमान हिंदी में अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है...वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सम्पत्ति है, इसमें संदेह नहीं।

प्रसाद जी ने 'यथार्थवाद और छायावाद' नामक एक महत्वपूर्ण निबन्ध लिखा, जिसमें स्पष्ट किया गया कि कल्पना और रहस्य के बावजूद छायावाद यथार्थ से कटा हुआ नहीं है। साथ ही प्रसाद जी ने यथार्थ के आधार पर गद्य साहित्य का आकलन करते हुए उसे ही यथार्थ का मुख्य वाहक माना, जो उनके समकालीन कथाकार प्रेमचंद के सन्दर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है।

सुमित्रानन्दन पंत

सुमित्रानन्दन पंत ने प्रसाद और निराला की तरह प्रचुर मात्रा में गद्य लेखन नहीं किया किंतु अपने कविता संग्रहों की भूमिका वे लिखा करते थे, जिनमें अपने समय की आलोचकीय स्थापनाओं और दृष्टि के प्रति उनका विचार-विमर्श जानने को मिलता है। पंत जी ने अपनी इन भूमिकाओं में खड़ी बोली के काव्य का औचित्य सिद्ध किया और मुक्तछंद के समर्थन में अपनी राय भी व्यक्त की। वे कविता में चित्रभाषा के समर्थक थे। उन्होंने अपनी कविता 'परिवर्तन' और निराला की कुछ पंक्तियों का विश्लेषण किया, जिसे प्रसिद्ध आधुनिक आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी व्यावहारिक आलोचना मानते हैं।

निराला

निराला ने अपने समानधर्मा छायावादियों के भावोच्छवासीय गद्य से अलग बुद्धिप्रवण और तर्कपूर्ण गद्य लिखा, जिसमें साहित्य की सैद्धान्तिक समस्याओं का विश्लेषण करने का सामर्थ्य था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल की ही भाँति वे भी संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेज़ी आदि का अच्छा ज्ञान रखते थे और इन सभी भाषाओं के साहित्य को उन्होंने ने मूल में पढ़ा हुआ था। उन्होंने 'रवीन्द्र कविता कानन' नाम से एक पृथक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी और उनके कई निबन्धों में सैद्धान्तिक आलोचना का एक स्पष्ट आकार उभरता है। उनके साहित्यिक निबन्ध सैद्धान्तिक आलोचना का एक प्रखर उदाहरण पाठकों के सामने रखते हैं। उनके वाक्य भी आचार्य शुक्ल की तरह सूक्तिबद्ध होते थे और इस कारण बड़ी सरलता से याद भी रह जाते हैं। उदाहरण के लिए -

गद्य जीवन-संग्राम की भाषा है।

कविता परिवेश की पुकार है।

ये दोनों ही वाक्य सूक्तिमात्र नहीं हैं, बल्कि दो अलग विधाओं पर सैद्धान्तिक विमर्श की शुरूआत भी हैं। इसे संयोगभर न माना जाए कि छायावाद की कसौटी पर दो विपरीत ध्रुवों पर खड़े आचार्य शुक्ल और महाकवि निराला के भक्तिकालीन प्रिय कवि तुलसी ही हैं। तुलसी पर निराला एक लम्बी कविता

भी लिखी। आचार्य शुक्ल के साथ हुए विवाद के अतिरिक्त निराला की आलोचना का प्रखरतम रूप उनके आलेख 'पंत और पल्लव' में प्रकट हुआ है। अपने ही समानधर्मा कवि की कविता पर ऐसी पैनी आलोचना सम्भवतः आज तक किसी कवि ने नहीं की होगी। निराला की जीवन और साहित्यदृष्टि आधुनिक और नवीन थी। अपने पारम्परिक परिवेश और संस्कारों के बावजूद उनमें पुरातन अथवा सनातन के लिए कोई हठधर्मिता नहीं थी। उनके भाषाई संस्कारों के लिए भी यही बात कही जा सकती है और ये दोनों उनके इस कथन से सिद्ध हो जायेंगी - आज आब और हवा हर वक़्त नए हैं, यहाँ तक कि कूपमंडूक को भी कँुए के अतल सोते से नया ही नया जल मिलता है। हम नवीनता को ही यहाँ सनातन कहेंगे। नवीनता के प्रति ऐसा आग्रह निराला के समय में ख़ुद एक नई और विरल वस्तु है। निराला की आलोचना-दृष्टि के बारे में विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं -छायावादी कवियों के पास ही नहीं उनके अधिकांश समकालीन साहित्यकारों के पास उनकी जैसी मर्मभेदिनी काव्यदृष्टि नहीं थी। उनका गद्य यथार्थवादी था। उन्होंने भाषा, छंद स्थानीयता, सार्वदेशिकता, समसामयिकता आदि के जो प्रश्न उठाए हैं, वे आज भी महत्वपूर्ण हैं। समालोचना के नाम पर उन्होंने काव्य-सिद्धान्तों का प्रतिपादन न करके कविता की व्यावहारिक समीक्षा की है। कविता और कविता की आलोचना, दोनों दृष्टियों से निराला आज छायावादी कवियों में सबसे अधिक सन्दर्भवान है।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का आलोचनात्मक लेखन 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' नामक पुस्तक में संकलित है। इस पुस्तक के निबन्धों के विषय काव्यकला, छायावाद, रहस्यवाद, गीतिकाव्य, यथार्थ और आदर्श, सामयिक समस्या आदि हैं। आलोचना की दृष्टि से देखें तो महादेवी जी काव्य का साध्य सत्य को मानती हैं। काव्यसाधना सत्य की साधना है और सौन्दर्य उसका साधन। आचार्य शुक्ल की तरह महादेवी भी साधारण की अभिव्यक्ति को महत्व देती हैं। उनका योगदान साहित्य में स्त्रीविमर्श का आरम्भ करने में भी है। उनकी छायावादी अभिव्यक्ति कहीं न कहीं स्त्रीमन की मुक्ति से जुड़ी हुई वस्तु है।

शान्तिप्रिय द्विवेदी

शान्तिप्रिय द्विवेदी शुक्ल जी के समय में छायावाद के प्रमुख प्रवक्ता बनकर उभरे और उसमें विशेष रूप से पंत जी के काव्य के। प्रभाववादी आलोचना से शुरू होकर व्याख्यात्मक आलोचना तक पहुँचने वाले शान्तिप्रिय द्विवेदी जी का आलोचना के क्षेत्र में उतना भी महत्व नहीं है, जितना ख़ुद छायावादी कवियों का। प्रभाववादी आलोचना को आलोचना कहा जाए कि नहीं - यह आज भी विवाद का विषय है। आचार्य शुक्ल भी हिंदी साहित्य का इतिहास में आधुनिक गद्य पर लिखते हुए इस तरह की आलोचना को ख़ारिज करते हैं - प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा कोई ठीक-ठिकाने की वस्तु ही नहीं। न ज्ञान के क्षेत्र में उसका कोई मूल्य है न भाव के क्षेत्र में। उसे समीक्षा या आलोचना कहना ही व्यर्थ है। स्वयं शान्तिप्रिय द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल पर वस्तुनिष्ठ होने का आरोप लगाते हुए कहा था कि वे वस्तु में निहित भाव तक नहीं पहुँच पाते। आचार्य शुक्ल की आलोचना दृष्टि से परिचित

जन जानते हैं कि भावजगत का आचार्य शुक्ल के आलोचनाकर्म में कितना महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसा कहना शायद ग़लत नहीं होगा कि सैद्धान्तिक आलोचना में गति न रखनेवाले शांतिप्रिय द्विवेदी जैसे आलोचक में वह सामर्थ्य हो ही नही सकता कि वह आचार्य शुक्ल पर आक्षेप कर उसे प्रमाणित भी कर सके। सैद्धान्तिक भूमि पर विमर्श कर सकने वाली ऐसी बौद्धिक प्रतिभा छायावाद में सिर्फ़ प्रसाद और निराला के पास थी।

5.4 हिंदी आलोचना और शुक्लोत्तर युग

जैसा कि हम देख आए हैं शुक्ल जी के समय की आलोचना में उनका वर्चस्व रहा और उनके समय की हिंदी आलोचना अधिकांशतः उनके समर्थन या विरोध की भावना से ही संचालित रही। शुक्ल जी के समय में सैद्धान्तिक आलोचना करते हुए किसी को भी शुक्ल जी के सिद्धान्तों से रू-ब-रू होना ज़रूरी हो गया था। शुक्ल जी के बाद भी यह क्रम जारी रहा और शुक्लोत्तर युग के आलोचकों ने कई विषयों पर विचार करते हुए शुक्ल जी धारणाओं पर गम्भीर और तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की तो कहीं उनसे सहमति भी। अर्थात शुक्लोत्तर आलोचना में भी शुक्ल जी की उपस्थिति प्रकारांतर से बनी ही रही। दरअसल सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना की जो पद्धति रामचंद्र शुक्ल ने स्थापित की, उनके विरोधी और समर्थक, दोनों ही उस पर चले। प्रभाववादी आलोचना का विरोध शुक्ल जी ने किया था, जो उनके बाद भी बना रहा। वास्तव में किसी रचनाकार या रचना के तात्कालिक प्रभाव में सिद्धान्तहीन समीक्षा साहित्य में कोई स्थायी योगदान नहीं कर सकती। शुक्ल जी के बाद के सभी प्रमुख आलोचक इस बात पर सहमत रहे। कुछ जो कला या रूपवादी हुए उन्हें यह प्रभाववादी आलोचना रास आयी और उन्होंने इसके लिए पश्चिमी पद्धति का सहारा यह कहते हुए लिया कि जब हम दूसरी विचार सरणियाँ पश्चिम से ले सकते हैं तो यह क्यों नहीं, किन्तु ऐसे आलोचकों का कोई ख़ास महत्व हिंदी आलोचना में न था और न है।

शुक्लोत्तर युग के प्रमुख आलोचकों और उनकी आलोचना दृष्टि पर निम्नवत विचार किया जा सकता है –

5.4.1 नन्ददुलारे वाजपेयी

नन्ददुलारे वाजपेयी का जन्म 1906 में हुआ। इनका जन्मस्थान उन्नाव का मगरैल गाँव है। वाजपेयी जी के जन्म का समय हिंदी में शुक्ल जी के उदय का समय भी है। वाजपेयी जी के पिता अपने समय के साहित्य से प्रभावित थे और उनसे ये संस्कार वाजपेयी जी में आया। 1929 में उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से एम.ए. हिंदी की परीक्षा सर्वोत्तम अंकों से उत्तीर्ण की। वे अपने समय में हिंदी चंद उच्च शिक्षित विद्धानों में एक और बाबू श्यामसुन्दर दास के प्रिय शिष्य थे। उन्हीं के प्रोत्साहन से उन्होंने हिंदी में अनुसंधान का मार्ग अपनाया। 1932 में वे हिंदी के तत्कालीन प्रसिद्ध पत्र भारत में सम्पादक हो गए और आधुनिक लेखकों पर विचारशील समीक्षात्मक निबन्ध लिखना आरम्भ किया, जिनका संकलन बाद में जयशंकर प्रसाद और हिंदी साहित्यःबीसवीं सदी नामक प्रसिद्ध पुस्तकों के रूप में

हुआ। इस पत्र को छोड़ जल्द ही वे पुनः बनारस आ गए जो तब तक हिंदी साहित्य और उसमें भी आचार्य शुक्ल के कारण हिंदी आलोचना के केन्द्र के रूप में पहचान बना चुका था। वहाँ उन्हें नागरी प्रचारिणी सभा में सूरसागर के सम्पादन का कार्य मिला, जिसे कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने के बाद वे रामचरितमानस के सम्पादन के आमंत्रण पर गीता प्रेस गोरखपुर गए पर गीताप्रस के संचालकों से नीतिगत मतभेदों के कारण प्रयाग आ गए और स्वतंत्र लेखन करने लगे। 1941 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में उनकी नियुक्ति हो गई। यहाँ से आलोचना में उनकी ख्याति और मौलिक कार्य के आधार पर उन्हें सागर विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। कई वर्ष वहाँ कार्य करने के बाद विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में कुलपति बने और महाकाल की उसी नगरी में 1967 में वाजपेयी का देहान्त हो गया।

जैसा कि पूर्व में एकाधिक बार कहा जा चुका है, शुक्लोत्तरयुगीन आलोचना पर शुक्ल जी की आलोचना के सन्दर्भों और प्रसंगों के साथ ही विचार किया जा सकता है। शुक्ल जी के तुरत बाद के महत्वपूर्ण आलोचकों में नन्ददुलारे वाजपेयी का नाम सर्वोपरि है और उनकी विख्यात आलोचना पुस्तक 'हिंदी साहित्यःबीसवीं सदी' में रामचंद्र शुक्ल पर तीन लेख मौजूद हैं। इनमें से दो लेखों में शुक्ल जी की समीक्षा की सीमाओं पर चर्चा है किंतु तीसरे में, जो कि उनकी मृत्यु के बाद लिखा गया, उनके महत्व और आलोचना में योगदान का गम्भीर एवं कृतज्ञतापूर्ण स्मरण है। वस्तुतः यही शुक्ल जी का आलोचक व्यक्तित्व है, जिससे असहमत होना अलग बात है पर उसके प्रति आभार का भाव अनिवार्य रूप से साथ ही बना रहता है। वाजपेयी जी हिंदी आलोचना में छायावादी काव्य के समीक्षक के रूप में आए। सैद्धान्तिक आलोचना के क्षेत्र में वे पहले आलोचक हैं जिन्होंने छायावादी काव्य का स्थूल विरोध करने के स्थान पर युगीन स्थितियों में उसके स्थापना के बीजसूत्र खोजे और उनका गहन तथा सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया। ध्यान देने की बात है कि आचार्य शुक्ल ने छायावादी काव्य का विरोध जिन लेखों में किया वे कालक्रम की दृष्टि से वाजपेयी जी के बाद लिखे गए।

नन्ददुलारे वाजपेयी के आलोचना सिद्धान्तों और महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदुओं को निम्नवत प्रस्तुत किया जा सकता है -

1. वाजपेयी जी पहले आलोचक हैं जिन्होंने सैद्धान्तिक आलोचना के क्षेत्र में छायावादी काव्य की नई भावधारा, नए जीवनदर्शन, नई कल्पना दृष्टि, बिम्ब तथा प्रतीकयोजना और नितान्त नए भाषा रूपों को युगीन परिस्थितियों के धरातल पर समझा और समझाया।
2. शुक्ल जी हालाँकि रहस्यवाद का विरोध किया था पर यह विरोध भावलोक के रहस्य से नहीं था। वाजपेयी जी ने इसी को अपना प्रस्थानबिंदु बनाया और छायावादी रहस्यभावना का समर्थन किया।
3. वाजपेयी जी काव्य के अन्तःसौन्दर्य को उद्घाटित करने वाले आलोचक हैं। आधुनिक हिंदी कविता का सौन्दर्यशास्त्र अब तक या तो रससिद्धान्त के बोझ तले दबा हुआ था या फिर

कोरे अलंकरण के विमर्श की विषयवस्तु समझा जाने के कारण उपेक्षित ही रहा था। वाजपेयी जी ने छायावादी कवियों में इस सौन्दर्य के गहन, एकान्तिक किंतु प्रभावशाली आयाम देखे और शुक्ल जी की स्थापनाओं के विरुद्ध उसके युगीन महत्व को रेखांकित किया - इस कार्य में उन्होंने शुक्ल जी के ही सिद्धान्त 'कल्पना यथार्थजनित या दृश्यमान जगत का प्रतिरूप होती है' की सहायता ली और छायावादी कविता के पक्ष में उसे विकसित किया।

4. वाजपेयी जी ने कविता में अध्यात्म का पक्ष लिया और छायावाद की सौन्दर्यचेतना के महत्व को स्वीकारते हुए उसमें अध्यात्म की भूमिका को रेखांकित किया। उनके अनुसार सौन्दर्य की स्थूलता या सूक्ष्मता समझ में आनी मुश्किल है, इसके अलावा आध्यात्मिक छाया भी व्याख्या-सापेक्ष होती है।
5. वाजपेयी जी ने अपनी पहली पुस्तक हिंदी साहित्यःबीसवीं शताब्दी में सैद्धान्तिक समीक्षा अथवा आलोचना के सात बीजसूत्रों का उल्लेख वरीयता क्रम में किया है -
    1. रचना में कवि की अन्तर्वृत्तियों का अध्ययन।
    2. रचना कवि की मौलिकता, शक्तिमत्ता और सृजन की लघुता-विशालता(कलात्मक सौष्ठव) का अध्ययन।
    3. रीतियों, शैलियों और रचना के बाह्यांगों का अध्ययन।
    4. रचना में सामाजिक स्थितियों का चित्रण।
    5. रचना के प्रेरणा की खोज और विश्लेषण।
    6. कवि की व्यक्तिगत परिस्थितियाँ, प्रभाव और विचार।
    7. रचना में अवस्थित कवि का सम्पूर्ण जीवनदर्शन।

इस तरह वाजपेयी जी ने कविता को समझने के लिए एक विस्तृत फलक तैयार किया जिसके महत्वपूर्ण बिंदुओं की वरीयता आलोचक की अपनी धारणाओं के अनुसार हो सकती है किंतु बिंदु प्रायः वही रहेंगे।

6. वाजपेयी जी की 32-33 तक की यानी आरम्भिक आलोचना कविता तक ही सीमित थी लेकिन उसके बाद वे कथा और नाटक साहित्य के सम्पर्क में आए और अभिव्यक्ति में उनके महत्व को समझा। उन्होंने प्रसाद जी के उपन्यास कंकाल के यथार्थवाद को समझा और अपनी तर्कपूर्ण सहमति व्यक्त की। यह उनके आलोचनाकर्म का महत्वपूर्ण प्रस्थानबिंदु है। इसी क्रम में उनकी पुस्तक प्रेमचंद का भी नाम लिया जाएगा।
7. कंकाल के सन्दर्भ में ही वाजपेयी जी की रोचक धारणा सामने आयी जिसमें उन्होंने स्वीकार किया कि कंकाल में प्रोपेगेंडा है। अंग्रेज़ी आलोचना का यह पद उन्होंने इस्तेमाल किया और इसका समर्थन भी किया। वाजपेयी जी के लिए प्रोपेगेंडा

दरअसल साहित्य में विचार और समकालीन जीवनदृष्टि का प्रचार है। उन्होंने प्रसाद जी के उपन्यास पर लिखते हुए कहा भी कि इस शब्द(प्रोपेगेंडा) से हिंदी के साहित्यिक डरते-से हैं, क्योंकि इसने प्रेमचंद जी को भी बदनाम किया है। पर वास्तव में यह डर मिथ्या है। स्वयं प्रेमचंद ने वाजपेयी जी को एक पत्र में लिखा था कि अगर प्रोपेगेंडा न हो, तो संसार में साहित्य की ज़रूरत न रहे। जो प्रोपेगेंडा नहीं कर सकता, वह विचारशून्य है और उसे कलम हाथ में लेने का अधिकार नहीं है। मैं उस प्रोपेगेंडा को गर्व से स्वीकार करता हूँ।

8. प्रगतिवाद की आलोचना करते हुए वाजपेयी का एक और सिद्धान्त सामने आया। वे साहित्य को द्वन्द्वात्मक मानने के पक्षधर नहीं थे जैसा कि सैद्धान्तिक रूप से प्रगतिवाद में था। वाजपेयी जी साहित्य की उत्तरजीविता और धारावाहिकता में विश्वास रखते थे। जीवन के प्रति किसी भी प्रकार की निषेधात्मक दृष्टि उन्हें स्वीकार नहीं थी। शुक्ल जी की ही भाँति वे भी साहित्य को वाद विशेष की परिधि से बाहर मानने के पक्षधर थे। छायावादी कवियों का समर्थन करते हुए भी उनकी धारणा थी कि वाद में फँसकर लेखक अपनी नैसर्गिक रचनात्मक प्रतिभा को कुंठित कर सकता है। प्रगतिशीलता पर अपना मत करते हुए आधुनिक साहित्य में उन्होंने लिखा - साहित्य के सभी नए आंदोलन एक अर्थ में प्रगतिशील कहे जा सकते हैं क्योंकि वे किसी न किसी नई सामाजिक या साँस्कृतिक प्रगति से उत्पन्न होते किसी न किसी नवीन विचारधारा के सहचर हुआ करते हैं।
9. वादविरोधी होते हुए भी वाजपेयी जी की मान्यता थी कि युगीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितयों का चित्रण किए बिना कोई लेखक नहीं हो सकता। उनके अनुसार साहित्य का मानक वस्तुतः समकालीन जीवन चेतना में ही निहित है।
10. वाजपेयी जी के अनुसार साहित्य में आस्था और नैतिक चेतना, दो अनिवार्य तत्व हैं। नैतिक चेतना उनके अनुसार वह है जो मनुष्य के सम्बन्धों की सम्पन्नता को व्यक्त करे। यह वाजपेयी जी की सैद्धान्तिक आलोचना का एक स्पष्ट सामाजिक पक्ष है।
11. आलोचना के सामाजिक पक्ष के विषय में वाजपेयी जी का मत है कि हिंदी में समय के प्रवाह के अनुसार अब साहित्य के द्वारा सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा भी की जाने लगी है। साथ ही साहित्य की अभिव्यंजना शैलियों का इस रूप में विकास भी हो रहा है कि उन्हें समझने के लिए बुद्धि का अधिकाधिक आभास आवश्यक है। उन सबसे परिचित हुए बिना आलोचक बनने की लालसा रखने पर बँधी हुई प्रतिष्ठा के खो जाने का ख़तरा भी है। कामायनी के सन्दर्भ में वाजपेयी जी ने स्पष्ट किया है कि कामायनी बुद्धि के विरोध नहीं बल्कि बुद्धिवाद की अति के विरोध का काव्य है। शुक्ल जी इसी अतिबुद्धिवाद को 'दुर्बुद्धि' कहते हैं।

5.4.2 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

रामचंद्र शुक्ल के बाद हजारीप्रसाद द्विवेदी को आचार्य सम्बोधन मिला जो उच्चशिक्षा में प्राध्यापन करने भर का नहीं बल्कि विद्वता और समूचे व्यक्तित्व का द्योतक है। हजारी प्रसाद जी का जन्म 1907 में बलिया ज़िले के 'आरत दुबेका छपरा' नामक बहुत छोटे-से गाँव में हुआ। 1930 में उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से ज्योतिषाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की और उसी वर्ष अध्यापन के लिए शान्तिनिकेतन चले गए। शांतिनिकेतन में टैगोर, क्षितिमोन सेन, विधुशेखर भट्टाचार्य आदि के सानिध्य से उनकी साहित्यिक सक्रियता बढ़ी। 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय ने उनकी साहित्यसेवा पर उन्हें डी.लिट. की उपाधि प्रदान की। 1950 में उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति के अनुरोध पर प्रोफेसर और हिंदी विभाग का अध्यक्ष पद स्वीकार किया। 1955 में वे पहले आफ़िशियल लैंग्वेज़ कमीशन के सदस्य चुने गए। 1957 में भारत सरकार ने उन्हें नागरिक सम्मान 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया। 1958 में उन्हें नेशनल बुक ट्रस्ट का सदस्य बनाया गया। इसके अतिरिक्त कई वर्षों तक वे नागरी प्रचारिणी सभा के उपसभापति, खोज विभाग के निदेशक और नागरी प्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक भी रहे। 1960 में पंजाब विश्वविद्यालय के कुलपति के निमंत्रण पर उन्होंने वहाँ के हिंदी विभाग के अध्यक्ष का पद स्वीकारा और चंडीगढ़ चले गए। 1968 में आचार्य द्विवेदी पुनः काशी हिंदू विश्वविद्यालय आ गए और रेक्टर पद पर नियुक्त हुए और फिर वहीं हिंदी के ऐतिहासिक व्याकरण विभाग के निदेशक का पदभार भी सँभाला। उत्तर प्रदेश की हिंदी ग्रंथ अकादमी के अध्यक्ष का दायित्व भी मिला। 1978 में द्विवेदी जी का देहावसान हो गया। 1973 में कुमाऊँ विश्वविद्यालय के प्रथम दीक्षान्त समारोह में दिया गया आचार्य द्विवेदी का बीजव्याख्यान उत्तराखंड के शिक्षाजगत में एक उपलबधि की तरह है और आज भी याद किया जाता है।

मौलिकता और विभिन्न विषयों की विद्धता के धरातल पर आचार्य शुक्ल के बाद आचार्य द्विवेदी का ही नाम लिया जाता है। एक अर्थ में दोनों एक ही परम्परा के आचार्य और आलोचक हैं। ऐतिहासिक और सैद्धान्तिक आलोचना के क्षेत्र में आचार्य द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल की सीमाओं के पार उनके छूटे हुए काम को आगे बढ़ाया। हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी का आदिकाल और कबीर - इन तीन पुस्तकों में आचार्य शुक्ल की स्थापनाओं अथवा सीमाओं से विरोध स्पष्ट दिखाई देता है। आचार्य द्विवेदी की सैद्धान्तिक आलोचना को क्रमवार निम्नवत देखा जा सकता है -

1. आचार्य शुक्ल के समय में हिंदी के आरम्भिक युग और भक्तिकाल से सम्बन्धित मूल ग्रंथों की खोज सीमित क्षेत्र में हो पायी थी। आचार्य द्विवेदी तक इस शोध का दायरा कहीं व्यापक हो गया और आचार्य शुक्ल के हिंदी साहित्य का इतिहास की कई सीमाएँ सामने आने लगीं और कुछ स्थापनाएँ भी विवादित हो गईं।
2. आचार्य शुक्ल ने नाथ, बौद्ध एवं जैन साहित्य को शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं माना था और अपने लिखे हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रथम काल का नामकरण

बाक़ी बचे रासो अथवा वीरकाव्य के नाम पर 'वीरगाथाकाल' रखना उचित समझा था। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस अव्याप्ति से हिंदी को उबारा और नाथयोगियों, बौद्धसिद्धों तथा जैन श्रावकों के काव्य को उसके पूरे ऐतिहासिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिप्रेक्ष में परखते और मान्यता देते हुए इस काल का नाम 'आदिकाल' रखा जो आज सर्वमान्य है। उनकी 'हिंदी का आदिकाल' नामक पुस्तक इस विषय पर सबसे प्रामाणिक आलोचना पुस्तक मानी जाती है। इससे यह भी पता चलता है कि आचार्य द्विवेदी अपनी आलोचना दृष्टि में कितने उदार थे। यह तथ्यपरक उदारता सैद्धान्तिक आलोचना में एक सिद्धान्त की तरह देखी जा सकती है।

3. हिंदी में भक्तिकाल के आरम्भ और उसमें निहित भक्तिआंदोलन के प्रारम्भिक सूत्रों पर शुक्ल जी की स्थापना किंचित साम्प्रदायिक हैं या कहें कि साम्प्रदायिक शक्तियां आसानी से उसका लाभ उठा सकती हैं। इस विषय को कुछ विस्तार से देखने की आवश्यकता है। खेद का विषय है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वीरगाथा काल के चारण साहित्य को तो वीरता का गान कहा लेकिन भक्तिकाल का आरम्भिक परिचय ही कुछ इस भंगिमा में दिया - 'देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देवमंदिर गिराए जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे।..... अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की भक्ति की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था'

आचार्य शुक्ल का इतिहास हिन्दी साहित्य के सबसे लोकप्रिय इतिहासों में एक है और आपने देखा होगा कि पाठ्यपुस्तकों में दिया गया इतिहास भी अधिकांशतः इसी पर आधारित होता है। ऊपर दिए उद्धरण से कुछ प्रश्न पैदा होते हैं -

1. क्या हिन्दी साहित्य सिर्फ हिन्दू जाति की सम्पत्ति है? और वह भी एक हतदर्प-पराजित हिन्दू जाति की!
2. क्या इस्लाम ने भारत आकर सचमुच किसी बड़ी मानव सभ्यता का नाश कर दिया?
3. उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन क्या सिर्फ इसलिए अस्तित्व में आया क्योंकि हिन्दू इस्लाम से डरे और हारे हुए थे?

सूफियों के सम्बन्ध में भी आचार्य शुक्ल का मंतव्य ध्यान देने योग्य है - इतिहास और जनश्रुति में इस बात का पता लगता है कि सूफी फकीरों और पीरों के द्वारा इस्लाम को जनप्रिय बनाने का उद्योग भारत में बहुत दिनों तक चलता रहा।'

यहाँ फिर कुछ सवाल उठते हैं -

1. क्या सूफियों को भारत में इस्लाम की स्थापना के षड़यंत्र के लिए राजनीतिक रूप से भेजा गया था?
2. उद्योग शब्द का क्या तात्पर्य है? क्या उन प्रेम दीवानों का इस तरह के उद्योग में विश्वास था?
3. और फिर ख़ुद इन सूफियों की इस्लाम में क्या स्थिति थी और इस्लाम के पैरोकार इन्हें किस नज़र से देखते थे?

हजारी प्रसाद जी की किताबों में सबसे पहली बात यह दर्ज़ है कि वे साफ़ तौर पर हिन्दी साहित्य को जनभाषाओं का साहित्य मानते हैं और यह भी कहना नहीं भूलते की इसी साहित्य ने इन जनभाषाओं को राजकीय सम्मान भी दिलाया। हजारीप्रसाद जी के इस जन का विस्तार हमारे समय की जनवादी अवधारणा तक दिखाई पड़ता है। दूसरी ख़ास बात को उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' के पहले ही पृष्ठ पर लिखा है - दुर्भाग्यवश, हिन्दी साहित्य के अध्ययन और लोक-चक्षु-गोचर करने का भार जिन विद्वानों ने अपने ऊपर लिया है , वे भी हिन्दी साहित्य का सम्बन्ध हिन्दू जाति के साथ ही अधिक बतलाते हैं और इस प्रकार अनजान आदमी को दो ढंग से सोचने का मौका देते हैं - एक यह कि हिन्दी साहित्य एक हतदर्प-पराजित जाति की सम्पत्ति है और इसलिए उसका महत्व उस जाति के राजनीतिक उत्थान-पतन के साथ सम्बद्ध है और दूसरा यह कि ऐसा न भी हो तो भी वह एक निरन्तर पतनशील जाति की चिन्ताओं का मूर्त प्रतीक है। 7 इसी क्रम में हजारीप्रसाद जी ने आगे लिखा कि मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है। सूफियों पर उनका यह वक्तव्य ध्यान देने योग्य है - निर्गुण भाव के शास्त्र-निरपेक्ष साधकों की भाँति इन कवियों में अधिकतर शास्त्र-ज्ञान-विरहित थे, पर निस्संदेह पहुँचे हुए प्रेमी थे। इन्होंने प्रेम के जिस एकांतिक रूप का चित्रण किया है, वह भारतीय साहित्य में नई चीज़ है। प्रेम की इस पीर के आगे ये लोकाचार की कुछ परवाह नहीं करते थे। भारतीय काव्य-साधना में प्रेम की ऐसी उत्कट तन्मयता दुर्लभ थी।

गौरतलब है हजारीप्रसाद जी प्रेम की एकांतिक साधना का ज़िक्र कर रहे हैं जो आचार्य शुक्ल के इस्लाम को फैलाने के उद्योग से बिल्कुल अलग ज़मीन पर कही गई बात है। वास्तविकता यही है कि सूफियों ने भारतीय संस्कृति में एक नया अध्याय जोड़ा, जिसका विस्तार साहित्य से लेकर अध्यात्म और संगीत के क्षेत्र तक मिलता है। हिन्दी साहित्य की भूमिका में हजारीप्रसाद जी ने दो-टूक शब्दों में लिखा कि यह कहना तो और भी उपाहास्पद है कि जब मुसलमान हिन्दू मंदिरों को नष्ट करने लगे तो हताश होकर हिन्दू लोग भजन-भाव में जुट गए। उन्होंने उत्तर में भक्ति आन्दोलन के उद्भव को दक्षिण के आलवार भक्तों से जोड़ा, जिनमें कई अछूत जातियों के भक्त थे और इस बारे में यह कहा कि आलवारों का भक्तिमतवाद भी जनसाधारण की चीज़ था। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है, जिसे हजारीप्रसाद जी ने महत्व दिया। उनके लिए जनसाधारण का भी असाधारण महत्व था। मेरा आग्रह है कि आचार्य शुक्ल के 'लोक' के बरअक्स हजारीप्रसाद जी के 'जन' को रखकर अवश्य देखा जाए। यह एक नई साहित्यालोचना और इतिहास दृष्टि है। इसमें विशुद्ध ऐतिहासिक तर्क भी हैं और अपने

समकाल और भविष्य को भाँपने की अद्भुत योग्यता भी। हजारीप्रसाद जी ने भारत में इस्लाम के आगमन को सात्मीकरण से जोड़कर देखा। मुसलमान इस धरती पर आए पहले आक्रमणकारी नहीं थे। उनसे पहले आर्य, यवन, हूण और शक यहाँ आ चुके थे। भारत के अन्दर भी जैन और बौद्ध जैसे धर्मों का बोलबाला था। दक्षिण, उत्तर और सुदूर उत्तरपूर्व की संस्कृतियों और जीवन शैली में भिन्नता थी। इस्लाम के आगमन ने इसमें एक नया पन्ना जोड़ा। टकराव होना ही था और हुआ भी लेकिन बाद में यह टकराव सात्मीकरण में बदलता गया। दो संस्कृतियों के मिलन का यह सबसे अच्छा और तर्कसंगत सिद्धान्त है। हमें जानना होगा कि कबीर से पहले भी बारहवीं शताब्दी में अब्दुर्रहमान नाम का जुलाहा कवि हुआ है, उसके रचनाओं का संकलन और संपादन 'संदेश-रासक' के रूप में हजारीप्रसाद जी ने अपने शिष्य विश्वनाथ त्रिपाठी के साथ मिलकर किया है। हजारीप्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य के ऊपर से हिन्दू का बिल्ला उतार उसके स्त्रोतों को सैद्धान्तिक रूप से बौद्ध सिद्धों और जैन मुनियों की वाणी में खोजा। इस तरह वे राजाओं की गाथाओं में न जाकर जनमानस का हृदय टटोल रहे थे। हिंदी आलोचना के विकासक्रम यह एक क्रांति है, जिसमें आचार्य द्विवेदी के बुनियादी आलोचना सिद्धान्त भी स्पष्ट दिखाई देते हैं।

1. आचार्य द्विवेदी पहले आलोचक हैं जिन्होंने भक्ति आंदोलन की तुलना हिन्दी के समकालीन प्रगति आन्दोलन से की। आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष में यह एक बड़ा क़दम था। वे लिखते है - प्रगतिशील आंदोलन महान उद्देश्य से चालित है। इसमें साम्प्रदायिक भाव का प्रवेश नहीं हुआ तो इसकी सम्भावनाएं अत्यधिक हैं। आचार्य के इस कथन से सहज ही पता लगता है कि चाहे भक्ति आंदोलन चाहे प्रगतिवाद, दोनों में उन्हें डर साम्प्रयिकता के प्रवेश का था। अपनी सैद्धान्तिक भूमि पर साम्प्रदायिकता के संकट का अनुभव करने वाले भी वे पहले आचोचक हैं।
2. तुलसीदास के सन्दर्भ समन्वयवाद पद हिंदी आलोचना में बहुत चल पड़ा था। आचार्य द्विवेदी ने पहली बार इसकी सीमाओं को जाना। उन्होंने खुद को अनेकान्तवादी घोषित करते हुए लिखा - कई अतिवादताओं बचकर कोई मध्यममार्ग निकालने को सन्तुलित दृष्टिकोण नहीं कहते।
3. आचार्य द्विवेदी ने कथालोचना भी की और प्रेमचन्द उनकी मानवतावादी और प्रगतिशील दृष्टि के कारण महान कथाकार के रूप में चिन्हित किया।

5.4.3 डॉ नगेन्द्र

डॉ. नगेन्द्र आधुनिक युग के वे आलोचक हैं, जिन्होंने भारतीय परम्परा से रससिद्धान्त की नई व्याख्या करने का प्रयास किया साथ पाश्चात्य काव्यशास्त्र का एक समूचा साहित्य हिंदी में उपलब्ध कराया। डॉ. नगेन्द्र आलोचना के पहले सफल और महत्वपूर्ण प्रयास छायावादी कवियों पर लिखते हुए किए। उनकी पुस्तक सुमित्रानन्दन पंत आचार्य शुक्ल के जीवनकाल में आ गई थी। आचार्य शुक्ल स्वयं इस

पुस्तक की प्रशंसा करते हुए इसे छायावाद पर पहली ठीक-ठिकाने की पुस्तक बताया था। डॉ. नगेन्द्र द्वारा छायावाद की सूक्तिपरक परिभाषा आज भी विद्यार्थियों को अपने ओर खींचती है - छायावाद 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है'। डॉ नगेन्द्र ने जिस प्रकार पंत जी की आलोचना की, उसे प्रभाववादी कहकर खारिज नहीं किया जा सकता था। उनके प्रमुख सिद्धान्तों को निम्नवत देखा जा सकता है -

1. डॉ. नगेन्द्र छायावादी काव्य के सैद्धान्तिक आलोचक के रूप में स्थापित हुए पर उनका अधिकांश कार्य सुमित्रानंदन पंत पर केन्द्रित रहा। उन्होंने छायावाद में सौन्दर्यनिरूपण और रहस्यभावना की तथ्यपरक समीक्षा की। छायावाद की उपरोक्त सूक्तिपरक व्याख्या भी दी।
2. डॉ. नगेन्द्र अपने समय में चल रहे प्रगतिवादी आन्दोलन से सैद्धान्तिक तारतम्य नहीं बिठा पाए। अपने समय के प्रगतिवादी कवियों पर विचार करते हुए लिखा कि एक और आक्षेप जो प्रगतिवाद के मूल सिद्धान्तों पर किया जा सकता है यह है कि इसका दृष्टिकोण मूलतः वैज्ञानिक होने के कारण बौद्धिक एवं आलोचनात्क है। अतएव स्वभाव से ही उनमें वह तन्मयता या आत्मविसर्जन नहीं है जो काव्य के लिए अनिवार्य है। नगेन्द्र के इस आक्षेप की खुद भी अपनी कई सीमाएं हैं जिन पर अगली इकाई में लिखा जाएगा।
3. डॉ. नगेन्द्र की समूची साहित्य साधना प्रतिफल आचार्य विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार उनका ग्रंथ **रस सिद्धान्त** है। स्वयं नगेन्द्र इसे अपनी साहित्य-साधना का उत्तमांश माना है। अब तक आचार्य शुक्ल की रस मीमांसा ही प्रचलन में थी और कविता के बदलते शिल्प में इसकी अधिक आवश्यकता भी नहीं जान पड़ती थी। नगेन्द्र ने शुक्ल जी की मीमांसा में कुछ नया और स्वतंत्र जोड़ने की अपेक्षा की होगी, तभी यह ग्रंथ प्रकाश में आया।
4. रससिद्धान्त के सन्दर्भ में बड़े प्रयोगवादी कवि अज्ञेय का मत था कि रस जिस व्यवस्था पर आधारित है वह आस्तिकता है। आज के जीवन में वह आस्तिकता नहीं है इसलिए आज के काव्य को रस नाम देना उचित नहीं है। वह अनुभूति मात्र है। लेकिन डॉ. नगेन्द्र ने अज्ञेय का प्रतिवाद करते हुए रस को आस्तिकता पर आधारित न मानकर मानवसंवेदना पर आधारित माना और इस तरह नए युग की कविता में उसे फिर प्रासंगिक बना दिया।
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र में डॉ. नगेन्द्र ने प्लेटो, अरस्तू और लांजाइनस का वृहद विवेचन हिंदी में सम्भव किया और कराया भी। हिंदी की ऐतिहासिक आलोचना अब पश्चिमी मान्यताओं के बरअक्स देखी और पढ़ी जा सकती थी।

5.4.4 डॉ. देवराज

शुक्लोत्तर काल में कुछ ऐसे आलोचक हुए जिन्होंने पर्याप्त व्यवहासिक समीक्षा लिखी किंतु सैद्धान्तिक रूप वे किसी वाद अथवा आंदोलन से नहीं बंधे। डॉ. देवराज उनमें प्रमुख है। अपने लेखक आरम्भिक काल में ही उन्होंने **छायावाद का पतन** जैसी किताब लिखी वस्तुतः देवराज दर्शन के गम्भीर विद्यार्थी रहे इसलिए उनकी काव्यालोचना दृष्टि काफी निमर्म और एकांगी रही। इस पुस्तक ने अपनी ओर ध्यान

तो खींचा लंकिन छायावाद को या उसके प्रतिवाद को समझा पाने यह अपनी भूमिका नहीं बना पायी। डॉ. देवराज के अनुसार छायावाद के पतन कारण ठीक वही थे जो उसके उत्थान के।

छायावाद के बाद प्रगतिवाद भी डॉ. देवराज के प्रतिरोध की सीमा में आया। प्रगतिवाद की समीक्षा करते वे बार-बार समाज और व्यक्ति की गुत्थियों में उलझते रहे और कोई नई दृष्टि प्रगतिवादी आलोचना को नहीं दे पाए किन्तु शुक्लोत्तर समीक्षा में वे एक महत्वपूर्ण नाम हैं।

बोध प्रश्न -

1. निम्न में कौन शुक्लोत्तर-युग का आलोचक है -

(अ) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

(ब) बालकृष्ण भट्ट

(स) जयशंकर प्रसाद

(द) देवराज

2. पं. नंद दुलारे वाजपेयी का जन्म का जन्म कब हुआ -

(अ) 1960

(ब) 1906

(स) 1884

(द) 1886

3. डॉ. नगेन्द्र ने रससूत्र की व्याख्या की-

(अ) सत्य

(ब) असत्य

4. हिंदी का आदिकाल किसकी पुस्तक है -

(अ) रामचंद्र शुक्ल

(ब) शांतिप्रिय द्विवेदी

(स) हजारी प्रसाद द्विवेदी

(द) डॉ. नगेन्द्र

5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानवतावादी दृष्टिकोण के लेखक थे -

(अ) सत्य

(ब) असत्य

6. 'छायावाद का पतन' नामक पुस्तक डॉ. नगेन्द्र ने लिखी -

(अ) हाँ

(ब) नहीं

7. सुमित्रानन्दन पंत पर डॉ. नगेन्द्र ने किताब लिखी -

(अ) हाँ

(ब) नहीं

8. निम्न से किस पश्चिमी विचारक का प्रभाव आचार्य शुक्ल पर पड़ा-

(अ) नीत्शे

(ब) सात्र

(स) हैकल

(द) मार्क्स

9. रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी में रहस्यवादी काव्य का आलोचकीय समर्थन किया-

(अ) सत्य

(ब) असत्य

निम्न विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का व्यक्तित्व।

(2) लोकमंगल की अवधारणा।

(3) डॉ0 नगेन्द्र के साहित्यिक व्यक्तित्व पर टिप्पणी लिखीए।

(4) डॉ0 नंददुलारे वाजपेयी के कृतित्व पर एक टिप्पणी लिखिए।

(5) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के आलोचना सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

5.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं की हिन्दी आलोचना कभी आचार्य शुक्ल से संवाद तो कभी प्रतिवाद करते हुए आगे बढ़ी। पं. नंददुलारे वाजपेयी ने शुक्लजी से सीखा भी और कुछ जगहों पर उनका खंडन भी किया। इसी प्रकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी द्वारा किए साहित्येतिहास में कई ख़ामियों को सामने लाते हुए उन पर विस्तार से कार्य किया। उन्होंने इस क्रम में तीन महत्वपूर्ण किताबें भी लिखीं - हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी का आदिकाल और कबीर। आचार्य शुक्ल के पश्चात हजारीप्रसाद जी ही हुए जिन्हें आचार्य की पदवी से याद किया जाता है। डॉ. नगेन्द्र हिंदी के नए अकादमिक जगत के प्रवक्ता थे। उस जगत के जो विभिन्न विश्वविद्यालयों में फल-फूल रहा था और उनके आचार्य गण नगेन्द्र की तर्ज़ पर ख़ुद को आलोचक कहाने लगे थे, जबकि सच यह था कि इस अकादमिक मरुथल में आलोचक सिर्फ़ नगेन्द्र ही थे और रहे। नगेन्द्र की तरह डॉ. देवराज भी आलोचना के क्षेत्र में आए। उन्होंने कुछ सैद्धान्तिक कार्य करने का प्रयास भी किया किन्तु अधिकाशँत: वे दर्शन के क्षेत्र में ही कार्य करते रहे।

5.6 शब्दावली

शुक्लोत्तर - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद

देहावसान	-	मृत्यु
विज्ञ	-	जानकार, विद्वान
सैद्धान्तिक	-	सिद्धान्त संबंधी
कथालोचना	-	कहानी, उपन्यास आदि की समालोचना

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 . देवराज
2. 1906
3. सत्य
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. सत्य
6. नहीं
7. हाँ
8. हैकल
9. असत्य

5.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

हिंदी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल

हिंदी आलोचना- विश्वनाथ त्रिपाठी

हिंदी समीक्षा स्वरूप और संदर्भ

हिंदी साहित्य कोश-भाग दो

रामचंद्र शुक्ल के श्रेष्ठ निबंध - डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र/विनोद तिवारी

हिंदी आलोचना के बीजशब्द - बच्चन सिंह

आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचना का अर्थ: अर्थ की आलोचना- रामस्वरूप चतुर्वेदी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास की रचना-प्रक्रिया- समीक्षा ठाकुर

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का गद्य साहित्य- अशोक सिंह

इतिहास और आलोचना- नामवर सिंह

हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली - डॉ. अमरनाथ

आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना- रामविलास शर्मा

हिंदी आलोचना का विकास- नंदकिशोर नवल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल: आलोचना के नए मानदंड- भवदेव पांडेय

हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी- निर्मला जैन

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

(1) शुक्लोत्तर आलोचना परिदृश्य पर एक विस्तृत निबंध लिखिए।

(2) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी आलोचनात्मक साहित्य पर उनके महत्व पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

इकाई 6 : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और हिंदी आलोचना

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
6.3.1 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व
6.3.2 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : कृतित्व
6.4 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और हिंदी आलोचना
6.5 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का महत्व
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 सहायक ग्रन्थ
6.10 संदर्भ ग्रंथ
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के आलोचना कर्म को समझ सकेंगे साथ ही उनकी आलोचना की विशिष्टताओं को उनकी कृतियों के माध्यम से समझ सकेंगे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का आलोचना कर्म आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास की मान्यताओं में छूट गए अथवा मूल्यांकन में किन्हीं वजहों से उपेक्षित रह गई स्थापनाओं को स्थापित करने के लिए याद किया जाता है। इस अध्याय को पढ़ कर आप आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की उन स्थापनाओं और मान्यताओं को समझ सकेंगे।

6.2 प्रस्तावना

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मनुष्यता को साहित्य और रस का पर्याय माना है। उनके आलोचना का जिसमें समीक्षा सिद्धांत और साहित्यिक आलोचना शामिल है उनका केंद्रीय मानदंड मानवतावाद है। दरअसल हजारी प्रसाद द्विवेदी विचारों के समीक्षक हैं। उनका महत्व साहित्य के नित नवीन होते मूल्यों के पहचानने और उन्हें मानवतावादी मान्यताओं के साथ एकीकरण करने में है। हिंदी साहित्य के आदिकाल का पुनर्मूल्यांकन हो या कबीर अथवा सूरदास का विवेचन, भक्तिकाल के नैरंतर्य का विश्लेषण हो अथवा बिहारी का मूल्यांकन उनके आलोचना-दृष्टि का विकास इस एक मानवतावादी

तत्व पर घटित होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "जो साहित्य हमारी वैयक्तिक क्षुद्र संकीर्णताओं से ऊपर उठा ले जाए और सामान्य मनुष्यता के साथ एक करा के अनुभव करावे, वही उपादेय है। उसके भाव पक्ष के लिए किसी देश-विशेष की नैतिक आचार-परम्परा का मुँह जोहना आवश्यक नहीं है। हमें दृढ़ता से केवल एक बात पर अटल रहना चाहिए। और वह यह कि जिसे काव्य, नाटक या उपन्यास-साहित्य कहकर हमें दिया जा रहा है वह हमें पशुसामान्य मनोवृत्तियों से ऊपर उठाकर समस्त जगत् के सुख-दुख को समझने की सहानुभूतिमय दृष्टि देता है या नहीं। हमें उस एक की अनुभूति में सहायता पहुँचा रहा है या नहीं, जिसे व्यक्ति ने अपने अनेक स्वार्थों के बलिदान के बाद उपलब्धि योग्य बनाया है। जो भी साहित्य इसके बाहर पड़े- अर्थात् हमारी पशु-सामान्य वृत्तियों को बड़ी करके दिखावे- हमें स्वार्थी और खंड-विच्छिन्न बनावे, हम साहित्य नहीं कह सकते- चाहे जितने बड़े साहित्यिक दल या सम्प्रदाय का समर्थन उसे प्राप्त हो।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद हिंदी आलोचना के उन शीर्ष आलोचकों में शामिल हैं जिनके बिना हिंदी आलोचना पर बातचीत संभव नहीं हो। उन्होंने 1940 के पहले ही लिखना आरम्भ कर दिया था। सूरदास पर उनका विवेचन 1940 से पहले प्रकाशित हुआ था किंतु आलोचक के तौर पर हिंदी साहित्य की भूमिका 1940 में प्रकाशित हुई। यह उनके सैद्धांतिक आलोचना की किताब है जिसमें आलोचना की ऐतिहासिक पद्धति और मानवतावाद की प्रतिष्ठा हुई। वे एक ओर परंपरावादी तो दूसरे ओर आधुनिक हैं। यूँ तो हज़ारी प्रसाद द्विवेदी आचार्य रामचंद्र शुक्ल स्कूल(मत) के ही आलोचक हैं फिर भी उन्होंने आचार्य शुक्ल की समीक्षा दृष्टि से ओझल रह गए विषयों की व्याख्या की।

सूर साहित्य के मूल्यांकन में जहाँ एक ओर छायावादी भावुकता की प्रधानता और विचार पक्ष की न्यूनता देखने को मिलती है वहीं कबीर के मूल्यांकन में उनके दृष्टिकोण का परिपक्व और प्रायोगिक रूप निखर कर आता है। उन्होंने कबीर को सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक और सामाजिक नैरंतर्य में देखा है। इस दृष्टिकोण में उनका आधुनिकतावादी दृष्टि भी शामिल हुई है। द्विवेदी जी के मानवतावाद पर रावीन्द्रिक मानवतावाद का प्रभाव बहुत है पर वह रवीन्द्र के मानवतावाद की प्रतिकृति या प्रतिलिपि नहीं है और ना ही उसका हिंदी संस्करण। वे उससे जुड़े हुए होकर भी उससे सर्वथा भिन्न हैं। आचार्य हजारी प्रसाद की दृष्टि यथार्थवादी है। यही कारण है कि प्रेमचंद के मूल्यांकन में भी एक आदर्शवादी यथार्थवाद का तत्व हमें देखने को मिलता है। दरअसल आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना का मेरुदंड उनका मानवतावाद है।

6.3 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

6.3.1 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: व्यक्तित्व

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की ख्याति एक आलोचक, उपन्यासकार, कवि, नाटककार, निबंधकार और अध्यापक के रूप में है बल्कि वे एक सांस्कृतिक पुरुष की तरह हिंदी के आकाश में आच्छादित हैं। उनका जन्म 19 अगस्त 1907 में उत्तरप्रदेश के बलिया जिले के आरत दुबे का छपरा गांव में हुआ। इनके परिवार का मुख्य कर्म ज्योतिष और पंडिताई का था। जिसका असर हजारी प्रसाद द्विवेदी पर भी थे। वे ख़ुद एक अच्छे ज्योतिष थे। उनके पिता का नाम पंडित अनमोल द्विवेदी एवं माता का नाम ज्योतिष्मती देवी था। हजारी प्रसाद द्विवेदी की आरंभिक शिक्षा गांव के विद्यालय में ही हुई और यहीं से उन्होंने मिडिल की परीक्षा पास की। उन्होंने आगे की पढ़ाई भी ज्योतिष से की और शिक्षा प्राप्ति के बाद वे शांतिनिकेतन चले गए। सन् 1950 तक शांति निकेतन के हिंदी-भवन में कार्य करते रहे। शांति-निकेतन में ही वे गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर तथा आचार्य क्षिति मोहन सेन से मिले और उनके प्रभाव से साहित्य का गहन अध्ययन और रचना प्रारंभ की। कबीर के चिंतन के विकास में गुरुदेव और आचार्य क्षितिमोहन सेन का गहरा असर उन पर था। हिन्दी साहित्य को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्यालोचना, समीक्षा, साहित्येतिहास, निबन्ध, उपन्यास, सौन्दर्यशास्त्रीय-विवेचन एवं कविता के द्वारा उन्होंने समृद्ध किया। 1930 में वे हिन्दी शिक्षक के रूप में शान्ति निकेतन में अध्यापन शुरू किया और वहाँ 1950 तक रहे। सन 1941से 1947 तक उन्होंने विश्वभारती विश्वविद्यालय की शोध पत्रिका विश्व भारती का संपादक किया। 1950 में वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर और अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति पायी। बाद में विश्वविद्यालय की राजनीति के कारण उन्हें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय छोड़ना पड़ा। 1960-67 तक वे पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में अध्यक्ष पद पर कार्य किया और यहीं उन्होंने कुटज नामक प्रसिद्ध निबंध लिखा। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से निकाले जाने का उन्हें गहरा क्षोभ भी था। जिसकी झलक उनके निबंध कुटज में भी दिखता है। 1968 में उनकी नियुक्ति फिर से काशी विश्वविद्यालय में हुई। 1968-70 तक वे काशी हिंदू विश्वविद्यालय के रेक्टर पद पर कार्यरत रहे। इन्हीं दिनों वे छात्रों में अत्यधिक लोकप्रिय हुए और छात्र आंदोलनों के इस दौर में मात्र इनके संबोधन से छात्रों ने आंदोलन तक वापस ले लिए। 1957 में राष्ट्रपति द्वारा भारत का दूसरा सर्वोच्च सम्मान पद्मभूषण से सम्मानित हुए। आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी अनेक संस्थानों से सम्बद्ध रहे और अन्तिम दिनों में वे उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष रहे। 19 मई 1979 को दिल्ली में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का निधन हुआ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व प्रभावशाली और उनका स्वभाव सरल और उदार था। नामवर सिंह ने उन्हें आकाश धर्मा गुरु कहा और अपनी किताब दूसरी परम्परा की खोज में उन्हें आचार्य रामचंद्र शुक्ल के समक्ष खड़ा किया वही विश्वनाथ त्रिपाठी ने उन्हें व्योमकेश दरवेश कहा तो अन्य

आलोचकों ने उन्हें जागतिक आचार्य कहा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी, अंग्रेज़ी, संस्कृत और बंगला भाषाओं के साथ-साथ मध्यकालीन भारतीय भाषाओं के भी निष्णात विद्वान थे। उन्हें संस्कृत, अपभंश एवं भक्तिकालीन साहित्य में भी महारत हासिल थी। लखनऊ विश्वविद्यालय ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की विद्वत्ता का सम्मान करते हुए उन्हें डी.लिट. की उपाधि दी। द्विवेदी जी के रचनाकर्म में भारतीय संस्कृति, इतिहास, ज्योतिष, साहित्य, विविध धर्मों और संप्रदायों का विवेचन सहज ही मिलता है।

द्विवेदी जी की मौलिक और अनूदित दो तरह की रचनाएँ मिलती हैं। उनकी मौलिक रचनाओं में सूर साहित्य, हिंदी साहित्य की भूमिका, कबीर, विचार और वितर्क, अशोक के फूल, बाणभट्ट की आत्म-कथा, पुनर्नवा, अनामदास का पोथा इत्यादि है तो प्रबंध चिंतामणि, पुरातन प्रबंध-संग्रह, विश्व परिचय, लाल कनेर इत्यादि उनकी अनूदित रचनाएं हैं।

6.3.2 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: कृतित्व

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचनाएँ विपुल और बहुविषयी हैं। उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं—

उपन्यास

बाणभट्ट की आत्मकथा; चारू चंद्रलेख; पुनर्नवा और अनामदास का पोथा

आलोचना

सूर साहित्य; कबीर; कालिदास की लालित्य योजना; मृत्युंजय रवीन्द्र; नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपक; मेघदूत :एक पुरानी कहानी; संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो; लालित्य तत्व और साहित्य का साथी

इतिहास ग्रन्थ

हिंदी साहित्य की भूमिका; हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास और हिंदी साहित्य का आदिकाल

सांस्कृतिक चिंतन

मध्यकालीन बोध का स्वरूप; सहज-साधना; मध्यकालीन धर्म-साधना; नाथ संप्रदाय ; सिक्ख गुरूओं का पुण्य-स्मरण; रामानंद की हिन्दी रचनाएँ ; नाथ सिद्धों की बानियाँ और प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद

निबंध

अशोक के फूल; कल्पलता; कुटज; विचार और वितर्क; विचार प्रवाह और आलोक पर्व

कविता

रजनी नित्य दिन चला ही किया कविताएं; संस्कृत, ब्रजभाषा और अनूदित कविताएँ; वैयक्तिक संस्मरण; कहानियाँ और फलित ज्योतिष

विशेष

• हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद द्वारा 'कबीर' पुस्तक पर मंगलाप्रसाद पारितोषक 1947 ई.
• लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ ने डॉक्टर ऑफ लिटरेचर उपाधि प्रदान की 1947 ई.
• ऑफिशियल लैंग्वेज कमीशन (प्रथम) के सदस्य 1955 ई.
• पद्म भूषण, 1957 ई.
• संयोजक, हिन्दी परामर्श समिति, साहित्य अकादमी, 1954 ई.-1964 ई. तक
• नेशनल बुक ट्रस्ट के ट्रस्टी, 1958 ई.
• चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट के ट्रस्टी, 1958 ई.
• 'सूर साहित्य' पुस्तक पर सरजूप्रसाद स्वर्णपदक, मध्यभारत हिन्दी समिति, इन्दौर
• 'विश्वभारती' विश्वविद्यालय की एक्जीक्यूटिव कांउसिल के सदस्य 1950-1953
• काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष 1952-1953 ई.
• काशी नागरी प्रचारिणी सभा के हस्तलेखों की खोज के संचालक, 1952 ई.
• 'नाथ सम्प्रदाय' पुस्तक (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)
• 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के व्याख्यान)
• 'सहज साधना' (मध्य प्रदेश सरकार द्वारा आयोजित व्याख्यानमाला)
• 'साहित्य का मर्म' (लखनऊ वि.वि. द्वारा आयोजित व्याख्यान माला)
• 'बाणभट्ट की आत्मकथा' - नागरी प्रचारिणी सभा का सर्वोत्तम पदक/म0प्र0 द्विवेदी स्वर्ण पदक,कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद साहित्य अकादमी की ओर से
• 'हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास' (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा, उत्तम पाठ्य पुस्तक पुरस्कार)
• हिन्दी विश्व कोष में सम्पादक समिति के सदस्य तथा एडवाइजरी बोर्ड के सदस्य।
• केन्द्रीय हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कार 1973 ई.
• शोध पत्रिकाओं का संपादन: विश्वभारती पत्रिका, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हिन्दी अनुशीलन , हिन्दुस्तानी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी जर्नल
• रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनेक ग्रंथों के अनुवाद

6.4 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और हिंदी आलोचना

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी मूलतः साहित्य के इतिहासकार और अनुसंधानकर्ता हैं किंतु उनकी आलोचना भी अनिवार्य महत्व की है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यावहारिक और सैद्धांतिक दोनों तरह ही आलोचना की है। उनके अनुसंधानपरक लेखन और इतिहास लेखन में भी आलोचना अनिवार्यतः शामिल है। उनका लेखन न केवल एक सांस्कृतिक समीक्षा है बल्कि उनके लेखन का बहुत हिस्सा सांस्कृतिक पुनराविष्कार भी है। वे समीक्षा में पुरातनपंथी नहीं हैं और ना ही आधुनिकता के आग्रह में परम्परा का नकार है बल्कि उनकी आधुनिकता-बोध में एक समन्वयवादी दृष्टि और स्वीकार्य का तत्व अधिक है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी आलोचना के नक्षत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद दूसरे समसे चमकीले तारे हैं। उन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल की मान्यताओं को खारिज नहीं किया बल्कि उनकी दृष्टि से ओझल रह गई चीज़ों को पुनर्स्थापित किया। यूँ तो वे आचार्य रामचंद्र शुक्ल के ही मत संप्रदाय के आलोचक हैं। उनकी प्रगतिशील दृष्टि और मनुष्यता के पक्षपाती होने की दृष्टि उन्हें विशिष्ट बनाती है। वे मानवतावाद के संदर्भ में लिखते हैं, "आज नाना स्वरों में वैचित्र्य-संवलित आकार धारण करके एक ही उत्तर मानव-चित्त की गंभीरतम भूमिका से निकल रहा है : मानवतावाद ठीक है। पर मुक्ति किसकी? क्या व्यक्ति मानव की? नहीं। सामाजिक मानवतावाद ही उत्तम साधन है। मनुष्य को, व्यक्ति मनुष्य को नहीं, बल्कि सामाजिक मनुष्य को, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शोषण से मुक्त करना होगा। ...अगली मानवीय संस्कृति मनुष्य की समता और सामूहिक मुक्ति की भूमिका पर खड़ी होगी। ...हमारी चित्तगत उन्मुक्तता पर एक नया अंकुश और बैठ रहा है— व्यक्ति मानव के स्थान पर समष्टि मानव का प्राधान्य।" आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि मुख्यतया समन्वय प्रधान है। वे अपने आलोचना कर्म में समाजवादी अर्थव्यवस्था और मध्यवर्गीय नैतिकता का समन्वय करते दिखते हैं। साहित्य के मामले में भी उनकी समन्वयवादी और मानवतावादी दृष्टि ही उनके आलोचना के निकषों का प्रकटीकरण है।

सूर साहित्य आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की आरंभिक पुस्तक है। इस पुस्तक में वे सूरदास जी को 'भारतीय साहित्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण रत्न' मानते हैं। वे इस पुस्तक में सूरदास के महत्व और उनकी असाधारणता का उल्लेख करते हुए सूरदास को विषय के प्रति तन्मय कवि के रूप में चिह्नित करते हैं, "भक्तों के साहित्य में जो अपूर्व तन्मयता दिखायी देती है वह किसी महान अज्ञात के चरणों में अहैतुक आत्मसमर्पण के उल्लास से, अनुप्रमाणित है। जब तक आत्मदान का अद्भुत उल्लास जीवन में नहीं आता, कोई बड़ा साहित्य नहीं लिखा जा सकता। सूरदास, कबीरदास और तुलसीदास जैसे भक्त कवियों के साहित्य में जिस प्रकार के माधुर्य, तेजस्विता और मंगल का साक्षात्कार होता है वे उसी महिमामयी दातृत्व-शक्ति की उपज हैं।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की गोरखनाथ और कबीर के मूल्यांकन में जो दृष्टि पल्लवित हुई वह आत्मदान की वही प्रवृत्ति है जिसका संकेत वे सूर साहित्य में सूरदास के मूल्यांकन में कर रहे हैं। इस किताब का महत्वपूर्ण अध्याय 'उस युग की साधना और तत्कालीन समाज' है। इसमें आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उत्तर कालीन वैष्णव धर्म पर महायान बौद्धधर्म के प्रभाव की चर्चा; राधा-कृष्ण के विकास

में जयदेव, विज्ञप्ति और चंडीदास की राधा की तुलना और इनका वैशिष्ट्य उद्घाटित करते हैं। वे रेखांकित करते हैं कि जयदेव की राधा प्रगल्भा है और प्रथम समागम में उनमें नवोढ़ा सी लज्जा नहीं है तो वहीं विद्यापति की राधा किशोरी और विलासी व कलामयी है जबकि चंडीदास की राधा का प्रेम अनुपम और स्वर्णिम है। वे लिखते हैं, "इस राधा में (यानी चंडीदास की राधा में) जयदेव की प्रगल्भा विलासवती राधा की छाया भी नहीं है, विज्ञप्ति की रूप-मधुरा किशोरी का निशान भी नहीं है; यह विशुद्ध प्रेम की मूर्ति है।" इसके बाद वे सूरदास की राधा का चित्रण करते हैं, "सूरदास की राधा केवल विलासिनी नहीं हैं। श्रीकृष्ण के साथ उनका केवल युवा काल का संबंध नहीं है, वे परकीया नायिका भी नहीं हैं। वह स्वर्गीय प्रेम है, वासना से रहित निर्मल, विशुद्ध..."

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सुर साहित्य के मूल्यांकन में जिस तन्मयता का जिक्र किया है वही संत काव्य के उनके मूल्यांकन का आधार बनता है। वे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कई स्थापनाओं से अपनी असहमति व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्तिकाल के उदय के संदर्भ में इस्लाम के आगमन का जो हवाला दिया है वे उसका प्रत्याख्यान करते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति काव्य को इस्लाम के आक्रमण से पराजित एक हतदर्प राष्ट्र की प्रतिकिया का फल मानते हैं। जबकि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति काल के इस उदय को भारतीय जनता की ऐतिहासिक और स्वाभाविक प्रक्रिया का विकास मानते हैं। वे लिखते हैं, "दुर्भाग्यवश, हिंदी साहित्य के अध्ययन और लोक-चक्षु-गोचर करने का भार जिन विद्वानों ने अपने ऊपर लिया है, वे भी हिंदी-साहित्य का संबंध हिंदू जाति के साथ ही अधिक बतलाते हैं और इस प्रकार अनजान आदमी को दो ढंग से सोचने का मौक़ा देते हैं— एक यह कि हिंदी साहित्य एक हतदर्प पराजित जाति की संपति है, इसलिए उसका महत्व उस जाति के राजनीतिक उत्थान-पतन के साथ अंगागि-भाव से संबद्ध है, और दूसरा यह कि ऐसा न भी हो तो तो भी वह एक निरंतर पतनशील जाति की चिंताओं का मूर्त प्रतीक है, जो अपने आप में कोई विशेष महत्व नहीं रखता। मैं इन दोनों बातों का प्रतिवाद करता हूँ और अगर ये बातें मान भी ले जाएँ तो भी यह कहने का साहस करता हूँ और फिर इस साहित्य का अध्ययन करना नितांत आवश्यक है, क्योंकि दस सौ वर्षों तक दस करोड़ कुचले हुए मनुष्यों की बात मानवता की प्रगति के अनुसंधान के लाय केवल उपेक्षणीय ही नहीं बल्कि अवश्य ज्ञातव्य वस्तु है। ऐसा करके मैं इस्लाम के महत्व को भूल नहीं रहा हूँ लेकिन ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा हो होता जैसा आज है।"

हिंदी साहित्य के शुरुआती समय को डिंगल कवियों की वीर गाथा, सूफी साधना से पुष्ट मुसलमान कवि, ऐतिहासक हिंदू कवियों के रोमांस और रीतिकाव्य को अपभ्रंश कविता का स्वाभाविक विकास के रूप देखते हुए भी वे भक्तिकाल के मुसलमानी प्रभाव को भ्रामक बताने की कोशिश करते हैं। उनके हिसाब से निर्गुणिया संत की जाति विरोध, क्रांतिकारी विचार प्रतिक्रिया नहीं विचारों का सहज सातत्य और प्रवाह है। इस्लाम के प्रभाव को महज़ प्रभाव के रूप में देखने के हिमायती आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस्लाम की प्रतिक्रिया के रूप में भक्तिकाल को नहीं देखते। वे लिखते हैं, "एक जीवित जाति

के स्पर्श में आने पर दूसरी पर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। भारतीय साहित्य में सुवर्ण-काल में भी इस प्रकार विदेशी प्रभाव लक्ष्य किया जा सकता है। परंतु जिस प्रकार कालिदास की कविताओं में यवनी या ग्रीक प्रभाव देखकर यह नहीं कहा जाता कि वह दुर्बल जाति की प्रतिक्रियात्मक मनोवृत्ति का निदर्शक है, उसी प्रकार साहित्य में भी यह प्रभाव प्रभाव के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए, प्रतिक्रिया के रूप में नहीं।" एक और उदाहरण से समझते हैं, "यह ध्यान देने की बात है कि दक्षिण से जो भक्ति की धारा उत्तर भारत में आई थी, वह सर्वत्र एक ही समान नहीं बनी रही। बंगाल में उसने एक रूप धारण किया, गुजरात में दूसरा और संयुक्तप्रांत में तीसरा। इसका कारण यह है कि मूल धारा जिस प्रदेश में पहुंची वाहन की सामाजिक परिस्थिति के अनुसार विशेष रूप में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार सूरदास में वह धारा एक रूप में दृष्ट हुई, तुकाराम में दूसरे में। इस समय पश्चिम के सूफ़ी मत की एक एक साधना पद्धति भी इसी देश में आई थी और वह इस देश के कबीर आदि ए एक स्वतंत्र रूप धारण कर गई।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत, बौद्ध और जैन साहित्य का भी गहराई से अध्ययन किया था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने वीर गाथाकाल में अपभ्रंश के जिन सामग्री के हवाले उसे वीर गाथा काल कहा और बौद्ध और जैन साहित्य को धार्मिक कह कर छोड़ दिया आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने आदिकाल में उसका मूल्यांकन कर उसके साहित्यिक महत्व की प्रतिष्ठा की। हिंदी साहित्य की भूमिका और हिंदी साहित्य के आदिकाल में उन्होंने अपभ्रंश साहित्य की प्रतिष्ठा की और हिन्दी के आरंभिक काल को आदिकाल के नाम से अभिहित किया।

भक्तिकाल की तरह रीतिकाल के मूल्यांकन में वे रीतिकाल को भी तत्कालीन परिस्थितियों से सातत्य को मानते हैं। मुगलकाल में सामंती व्यवस्था टूटने लगी थी और सामंती और कृषक वर्ग में अंतर्विरोध भी रीतिकाल में मौजूद था। इस अंतर्विरोध को वे व्यवधान कहते हैं, वे लिखते हैं, "मुग़लक़म में यह व्यवधान अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। और उसके अंतिम दिनों में जब वह व्यवस्था निष्प्राण हो गई तो उस व्यवधान को जिला रखने के लिए एक बड़ा ढांचा ही खड़ा रह गया। रीतिकाल इसी ढाँचे का प्रकाश है। इसका पोषण सामंती व्यवस्था से हो रहा था। परंतु इस व्यवस्था की रीढ़ मकड़ चुकी थी और उससे जीवन का रस बहुत थोड़ा खिर पाता था।"

आधुनिक काल के मूल में भी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रीतिकाल से धारा प्रवाही विकास के सातत्य को ही देखा। उन्होंने छायावाद को भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की अभिव्यक्ति बताया। उन्होंने लिखा, "इस महान आंदोलन ने भारतीय जानता के चित्त को बन्धनमुक्त किया। यही बंधनमुक्त चित्त काव्यों, नाटकों और उपन्यासों में नाना भाव से प्रकट हुआ। परंतु काव्य में वह जिस रूप में व्यक्त हुआ वह कुछ काल तक अपरिचित जैसा लगा।"

यही कारण है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इतिहास लेखन को कुछ आलोचकों ने परंपरावादी और धाराप्रवाही इतिहासकार के रूप में देखा है। अर्थात् आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य को परम्परा का विकास मात्र मानते हैं और देश-काल-परिस्थिति को अथवा परिवेश जो कि सामाजिक,

राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक स्थिति है से निरपेक्ष मानते हैं। जबकि साहित्य को वे परंपरा और परिवेश दोनों के संपृक्त भाव को मानते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी में दो कवियों पर स्वतंत्र रूप से लिखा। एक सूरदास और दूसरे कबीर। हिंदी साहित्य में कबीर के मूल्यांकन और स्थापना का श्रेय आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को जाता है। कबीर के संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि, "इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर ने ठीक मौक़े पर जनता के उस बड़े भाग को सम्भाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्ति रस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था। उनके द्वारा यह बहुत ही आवश्यक कार्य हुआ। इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्म गौरव का भाव जगाया और उसे भक्ति के ऊँचे से ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया।" अर्थात् आचार्य शुक्ल ने यहाँ कबीर को भक्त की तरह नहीं योगियों की तरह देखा है किंचित अधिक जनग्राही रूप में। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर में इस मत का प्रत्याख्यान करते हुए लिखते हैं, "कबीरदास योगियों के द्वा प्रभावित तो बहुत थे पर स्वयं वही नहीं हैं जो योगी हैं। हम यहाँ फिर एक बार कहते हैं कि कबीरदास योगिक क्रियाओं को भी बाह्य आचार ही मानते थे।" इस बात को आगे बढ़ाते हुए फिर वे रेखांकित करते हैं कि "उनका (कबीर का) केंद्रीय विचार भक्ति था। वे भक्ति को प्रधान मानते थे। उसके रहने पर बाह्याचार का होना न होना गौण बात है।" वही आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी कबीर की प्रसंशा में लिखते हैं, "यद्यपि वे पढ़े लिखे न थे पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी। जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्यचमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं।" वहीं द्विवेदी जी की टिप्पणी है, "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है— बन गया है तो सीधे सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है।" कुल मिलाकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के मामले में आचार्य शुक्ल की उपेक्षा से कबीर को मुक्ति दिलाई और हिंदी में उन्हें प्रतिष्ठित किया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रामाणिक और व्यवस्थित रूप से नाथ और सिद्ध साहित्य का विवेचन किया। वे नाथ संप्रदाय का विस्तार से उसकी ऐतिहासिकता को स्थापित करते हैं। नाथों के निर्माण में बौद्धों, कपालिकों, शाक्तादियों की साधना पद्धति का विश्लेषण करते हैं। हिंदी साहित्य के आदिकाल का विश्लेषण करते हुए अपभ्रंश के काव्य रूपों से लेकर जैन साहित्य के चरित काव्य का विश्लेषण करते हैं। मध्यकालीन बोध का स्वरूप और सहज साधना जैसी आलोचना की निर्मिति भी इन्ही अध्ययन के सातत्य में विकसित हुई है जबकि सभ्यता समीक्षा और संस्कृति समीक्षा के रूप में प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद और कालिदास की लालित्य योजना जैसी पुस्तकें लिखी गई। सिक्क गुरुओं का पुण्य स्मरण जैसी किताब भी एक तरह से उऋण होने का उनका उपक्रम है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मूलतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्कूल(परंपरा) के आलोचक होने के बाद भी आचार्य शुक्ल की आलोचनात्मक निर्मितियों को चुनौती देते हैं। उन्हें बदल देते हैं। और अन्ततः आलोचना को भी मनुष्यता की ओर से देखते हैं।

अभ्यास प्रश्न :

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. कबीर वाणी के डिक्टेटर थे। यह कथन किस आलोचक है है?
   क. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
   ख. पुरुषोत्तम अग्रवाल
   ग. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
   घ. नामवर सिंह
2. हिंदी साहित्य का आदिकाल पुस्तक के लेखक हैं हैं?
   क. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
   ख. पुरुषोत्तम अग्रवाल
   ग. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
   घ. नामवर सिंह
3. सहज साधना और नाथ संप्रदाय पुस्तक के लेखक हैं?
   क. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
   ख. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
   ग. राहुल सांकृत्यायन
   घ. पिशेल
4. सूर साहित्य के लेखक हैं?
   क. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
   ख. आचार्य रामचंद्र शुक्ल'
   ग. नंददुलारे वाजपेयी
   घ. नंदकिशोर नवल
5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म कहाँ हुआ था?
   क. बलिया
   ख. वाराणसी
   ग. बोलपुर
   घ. चंडीगढ़

सही या ग़लत

1. हिंदी साहित्य का आदिकाल बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् में दिया गया व्याख्यान है।

2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को पद्म श्री सम्मान से सम्मानित किया गया है।
3. नामवर सिंह की पुस्तक दूसरी परम्परा की खोज आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पर लिखा गया है
4. पुनर्नवा, अनामदास का पोथा, बाणभट्ट की आत्मकथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना की कृतियाँ हैं।
5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कहने से हिंदू विश्वविद्यालय में आंदोलन करने वाले विद्यार्थियों ने अपना आंदोलन वापस ले लिया था।

रिक्त स्थानों की पूर्ति

1. कबीर भाषा के.....थे।
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की हिंदी साहित्य की भूमिका की विधा ..... है।
3. नाथ संप्रदाय की विधा.....है।
4. पुनर्नवा की विधा.....है।
5. विश्वनाथ त्रिपाठी की किताब व्योमकेश दरवेश की विधा..... है।

6.5 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का महत्व

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का महत्व अगर रेखांकित करना हो तो सीधे तौर पर आदि काल का नामकरण, कबीर की स्थापना, नाथ-सिद्धों का मूल्यांकन, भक्ति काल के उदय के तर्कों के आधार पर किया जा सकता है। यह महत्व सार्वदिक प्रस्थान है और आसानी से लक्ष्य हो जाने वाला है किंतु उनके बहु विषयी होने के बाद भी हिन्दी की मूल स्थापनाओं से संवाद और समन्वयवाद की व्यावहारिकता है जी कि मानवतावाद के मूल्यों से संरक्षित हुआ है। इनके महत्व को रेखांकित करते हुए मैनेजर पांडे ने लिखा है कि "किसी समाज या जाति की चिंताधारा की समग्रता और जीवंतता का बोध केवल शिष्ट साहित्य के इतिहास से ही नहीं हो सकता क्योंकि समाज या जाति की चिंताधारा की समग्रता विभिन्न सांस्कृतिक रूपों में होती है। इसीलिए चिंताधारा की समग्रता के बोध के लिए साहित्य के इतिहास को संस्कृति के इतिहास के अंग के रूप में विकसित करना जरूरी है। इसके साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि किसी समाज या जाति की चिंताधारा की समग्रता और जीवंतता अभिजात संस्कृति और अभिजात साहित्य में ही प्रकट नहीं होती, उसकी सच्ची अभिव्यक्ति जन संस्कृति और जन साहित्य में होती है। इसलिए साहित्य के इतिहास को सांस्कृतिक इतिहास के अंग के रूप में विकसित करने के लिए उसमें जन संस्कृति और जन साहित्य का समावेश करना भी जरूरी है। द्विवेदी जी बार-बार हिंदी साहित्य को लोकभाषा में हिंदी भाषी जनता की चिंताधारा, अनुभूति और संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति कहते हैं और हिंन्दी साहित्य के इतिहास को अधिकाधिक पूर्ण बनाने के लिए लोक गीतों, लोक कथाओं और लोक प्रचलित काव्यरूपों के अध्ययन पर जोर देते हैं"

6.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो चुके हैं और आप आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के आलोचना शैली की सामान्य समझ से भी परिचित हो गए हैं। आप आलोचना के क्षेत्र में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के महत्व को अब रेखांकित कर सकते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी एक आलोचक के साथ साथ उपन्यासकार, निबंधकार, अनुसंधानकर्ता और इतिहास लेखक थे। उन्होंने हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी साहित्य का इतिहास ग्रंथ लिखा तो सूर साहित्य और कबीर में व्यावहारिक और सैद्धांतिक आलोचना भी लिखा। नाथ सिद्धों की बनिया, नाथ संप्रदाय, सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण, संदेश रासक उनके अनुसंधापरक लेखन का नमूना है। संस्कृत साहित्य के दशरूपक और नाट्यशास्त्र पर उन्होंने अपनी कलम चलाई तो प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद और कालिदास की लालित्य योजना जैसी पुस्तक भी उनके आलोचना के हिस्से आई।

वे एक तरफ़ व्यवहारिक और सैद्धांतिक आलोचना में लगे रहे तो दूसरी तरह सभ्यता समीक्षा भी उनके आलोचना का एक रंग बना। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के आलोचना मानों में कबीर की पुनर्मूल्यांकन, आदिकाल का नामकरण, भक्ति के उदय के पीछे का तर्क, सूरदास की प्रतिष्ठा और नाथ-सिद्धों की रचनाओं का रेखांकन भी उन्हें महत्वपूर्ण बनाता है। उनका आलोचनात्मक मान समन्वयवादी और मनुष्यता के पक्षधर के रूप में निर्मित हुआ है। एक और कविगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर से प्रभावित और दूसरी ओर उनकी मानवतावाद से थोड़े भिन्न होते हुए वे परम्परा से लेकर आधुनिकतावादी मूल्यों की ओर भी प्रगतिशील निगाह से देखते रहे। आचार्य शुक्ल न पूरे परंपरावादी हैं और ना ही आधुनिकता के मूल्यों को नकारने वाले जड़ आलोचक। उनकी आलोचना की यह समन्वयवादी शैली उन्हें दूसरी परम्परा का आलोचक बनाता है। जाहिर है पहली परंपरा आचार्य रामचंद्र शुक्ल की है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने मूल्यांकन में जहाँ कहीं भी चुके हैं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सीधे सीधे तो कहीं दरेरा देकर अपनी आलोचनात्मक स्थिति से उस अवकाश को पूरा किया है। रीतिकालीन मूल्यांकन हो या आधुनिककालीन उनकी आलोचना दृष्टि में एक विकासमान सातत्य सर्वथा सहज रूप में अभिव्यक्ति पाया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने अन्य रचना रणसर की भाँति आलोचना में भी विलक्षण उपस्थिति हैं। आप हजारी प्रसाद द्विवेदी से सहमत हो सकते हैं; असहमत हो सकते हैं पर समूचे हिंदी आलोचना परिदृश्य में उन्हें नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते। हिंदी आलोचना के आकाश में उनकी उपस्थिति अनिवार्यतः मौजूद है।

6.7 शब्दावली

सातत्य : एक क्रम में

उपेक्षित : जिसकी उपेक्षा किया गया हो
संकीर्ण : छोटा
क्षोभ : दुःख
समन्वय : मिला कर
इतिहास-दृष्टि : इतिहास को देखने की दृष्टि
आलोचना-दृष्टि : आलोचना को देखने की दृष्टि; आलोचना का प्रतिमान

6.8अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. बलिया

सही/ ग़लत

1. सही
2. ग़लत
3. सही
4. ग़लत
5. सही

रिक्त स्थान की पूर्ति

1. डिक्टेटर
2. इतिहास ग्रंथ
3. आलोचना
4. उपन्यास
5. संस्मरण

6.9 सहायक ग्रन्थ

1. हिंदी आलोचना का विकास, नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. हिंदी आलोचना का विकास, मधुरेश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. हिंदी आलोचना का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

4. हिंदी के जागतिक आचार्य : हजारी प्रसाद द्विवेदी, सं. श्रीप्रकाश शुक्ल, सेतु प्रकाशन, नोएडा
5. दूसरी परम्परा की खोज, डॉ. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

6.10 संदर्भ ग्रंथ

1. हिंदी आलोचना का विकास, नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. हिंदी आलोचना का विकास, मधुरेश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. हिंदी आलोचना का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. हिंदी के जागतिक आचार्य : हजारी प्रसाद द्विवेदी, सं. श्रीप्रकाश शुक्ल, सेतु प्रकाशन, नोएडा
5. दूसरी परम्परा की खोज, डॉ. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
6. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
7. हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
8. हिंदी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
9. हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
10. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यानकन करते हुए उनके आलोचनात्मक प्रतिमानों की चर्चा कीजिए।
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचनात्मक मानदंडों की विस्तृत समीक्षा कीजिए।

इकाई 7 : डॉ नगेंद्र और हिंदी आलोचना

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 डॉ नगेंद्र का आलोचक रूप
7.4 डॉ नगेंद्र की आलोचना दृष्टि
7.5 डॉ नगेंद्र का आलोचनात्मक अवदान
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.11 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

डॉ नगेंद्र हिंदी आलोचना की महत्वपूर्ण कड़ी हैं| रामचंद्र शुक्ल, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, नन्द दुलारे बाजपेई की परम्परा में ही नगेंद्र भी आते हैं| स्वतंत्रता पूर्व की हिंदी आलोचना के आप महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं| साथ ही स्वतंत्रता पश्चात की आलोचना को भी नगेंद्र ने कम प्रभावित नहीं किया| छायावाद से प्रारंभ हुई आपकी आलोचना रस व काव्याशास्त्र तक जाती है| पाश्चात्य काव्यशास्त्र को अनुवाद व समीक्षा द्वारा हिंदी के विद्यार्थियों से परिचित कराने वाले आप हिंदी के प्रारंभिक समीक्षक हैं| छायावाद पर स्वतंत्र पुस्तक लिखने वाले भी आप प्रारंभिक बड़े आलोचक हैं| रीति कविता को सहानुभूति पूर्वक विचार कर आप आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना के पूरक रूप में हमारे सामने आते हैं| भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति पर आपने सबसे पहले कार्य किया| व्यावहारिक आलोचना से सैद्धांतिक आलोचना तक आपका कार्य स्थायी महत्त्व का है| इस इकाई के अध्ययन से हम डॉ नगेंद्र की आलोचना दृष्टि को समझने का प्रयास करेंगे|

7.2 उद्देश्य

हिंदी आलोचना सम्बन्धित यह छठवीं इकाई है| इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

* डॉ नगेंद्र की प्रमुख कृतियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे|
* डॉ नगेंद्र की आलोचना दृष्टि को समझ सकेंगे|
* डॉ नगेंद्र की आलोचना के महत्व व अवदान को समझ सकेंगे

* डॉ नगेंद्र के बहाने हिंदी आलोचना के विकास क्रम को समझ सकेंगे|

7.3 डॉ नगेंद्र का आलोचक रूप

डॉ नगेंद्र हिंदी आलोचना को आगे ले जाने वाले आधार आलोचकों में से एक हैं | छायावाद, रीतिकाव्य और काव्यशास्त्र पर आपकी पुस्तकें स्थायी महत्व की हैं | संक्षेप में आपकी प्रमुख पुस्तकें निम्नवत हैं -

सुमित्रानंदन पंत
साकेत :एक अध्ययन
कामायनी के अध्ययन की समस्याएं
रीतिकाव्य की भूमिका
देव और उनकी कविता
सियाराम शरण गुप्त
आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां
हिंदी साहित्य का इतिहास (सम्पादित)
रस सिद्धांत
आस्था के चरण
विचार और विश्लेषण
नयी समीक्षा : नये सन्दर्भ

इसके अतिरिक्त पाश्चात्य काव्यशास्त्र की कई पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद कर आपने महत्वपूर्ण कार्य किया है |

7.4 डॉ नगेन्द्र की आलोचना दृष्टि

डॉ नगेन्द्र ने व्यवहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों प्रकार की आलोचनाएँ लिखी हैं | व्यावहारिक आलोचना से प्रारंभ हुई आपकी आलोचना सैद्धांतिक होती चली गयी | डॉ नगेंद्र की पहली आलोचनात्मक पुस्तक सुमित्रानंदन पंत पर थी | इस पुस्तक की प्रशंसा आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी लिखी थी |"छायावादी आंदोलन प्रारंभ हुए कई वर्ष हो गए, किंतु कोई पुस्तक नहीं आई | नगेन्द्र की सुमित्रा नंदन पंत पुस्तक ही ठिकाने की मिली "| यह पुस्तक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण रही | छायावाद की व्याख्या "स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ' की दृष्टि से इसे भले सरलीकरण कह दिया गया, किंतु छायावाद और पंत को समझने में यह पुस्तक आधारभूत कार्य करती है | डॉ नगेंद्र ने छायावाद और गांधी के अंतरसम्बन्ध को को भी पहली बार रेखांकित करते हैं | आपने लिखा है -" "द्विवेदीयुग के काव्य में वर्त-मान भारतीय जीवन की जिस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति - राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का

आविर्भाव हुआ था उसके विकास और परिष्कार का श्रेय इसी युग के कवियों को है।" ('नयी समीक्षा नये सन्दर्भ, पृ० 90-91)। छायावाद और गांधी के संबंध पर डॉ नगेन्द्र ने लिखा है- "राजनीति में जिन प्रवृत्तियों ने गाँधीवाद को जन्म दिया, करीब-करीब वैसी ही प्रवृत्तियों द्वारा साहित्य में छायावाद का प्रादुर्भाव हुथा।" ('सुमित्रानन्दन पंत', पृ० 132)।नगेन्द्र ने आगे लिखा है "दोनों की मूलवतिनी भावना एक है स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म की प्रतिक्रिया अर्थात् स्थूल से हटकर सूक्ष्म की ओर बढ़ने और उसको प्राप्त करने का प्रयत्न। गाँधीजी के साथ आत्मा की वस्तु बनकर यह प्रवृत्ति आध्यात्मिक बन गयी, उधर रवीन्द्र के साथ हृदय में रंगकर उसने छायावाद का रूप धारण किया।" (उपर्युक्त)। छायावाद की नगेन्द्र की तीसरी व्याख्या फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित है: "छायावाद की कविता प्रधानतः श्रृंगारिक है, क्योंकि उसका जन्म हुआ है व्यक्तिगत कुण्ठाशओं से, और व्यक्तिगत कुण्ठाएँ प्रायः काम के चारों ओर केन्द्रित रहती हैं। जिस समय छायावाद का जन्म हुआ उस समय स्वच्छन्द विचारों के आदान से स्व-तन्त्र प्रेम के प्रति समाज में आकर्षण बढ़ रहा था। परन्तु सुधार-युग की कठोर नैतिकता से सहमकर वह अपने में ही कुण्ठित रह जाता था। समाज के चेतन मन पर नैतिक आतंक अभी इतना अधिक था कि इस प्रकार की स्वच्छन्द भावधारायें अभिव्यक्ति नहीं पा सकती थीं |"

डॉ नगेन्द्र की आलोचना दृष्टि स्पष्ट है | आपके अनुसार 'छायावाद का रहस्यवाद एक अंग तो है, पर्याय नहीं ' | जाहिर है यह दृष्टि सही है | सुमित्रानंदन पंत पर भी डॉ नगेंद्र ने अपनी निर्भीक आलोचना दृष्टि का परिचय दिया है | आपने लिखा है - "पंतजी आवेशप्रधान कवि नहीं हैं" (पृ० 31), " आवेश निर्धनता को पंतजी कल्पना के द्वारा पूरी करते हैं।" (उपर्युक्त, पृ० 28) 1 कल्पनाशीलता के चलते पंतजी की कविता चित्रात्मक है "पंतजी की कल्पना का सबसे बड़ा गुण उसकी मूर्ति-विधायिनी शक्ति है। यह शक्ति इतनी विकसित है कि कवि के सम्मुख छोटी-से-छोटी वस्तु भी मूर्त रूप में थाती है।" (उपर्युक्त) । लेकिन नगेन्द्र के अनुसार पंतजी में विराट् चित्रों की योजना कम देखने में आती है और "ऐसा भी कभी-कभी हो जाता है कि पंतजी की कल्पना उन्हें बहका ले जाती है।" (उपर्युक्त)। प्रनुभूति की कमी और कल्पना की प्रधानता होने से पंतजी अपनी कविताओं में प्रायः दर्शक के रूप में दिखलायी पड़ते हैं, भोक्ता के रूप में नहीं। ऐसी शिकायत नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक में बार बार की है। पंतजी के सम्बन्ध में उनकी यह दृढ़ मान्यता है कि "उन्होंने जीवन-नाटक कोदर्शक की भाँति ही अधिक देखा है।" (उपर्युक्त, पृ० 141)। जाहिर है कि 1937 तक सुमित्रानंदन पंत की कविताओं पर इतनी स्पष्टता के साथ सर्वप्रथम डॉ नगेंद्र ने ही विचार किया था | डॉ नगेंद्र की आलोचना दृष्टि उनकी प्रथम पुस्तक में ही स्पष्ट हो गयी थी | किसी कवि के मूल्यांकन करने के लिए आलोचक को निर्भीक होना आवश्यक होता है | पंत का मूल्यांकन करते हुए डॉ नगेन्द्र ने लिखा है -" पंत जी प्रधान रूप से कलाकार ही हैं | उनके काव्य में सबसे प्रथम कला का, उसके उपरांत विचारों का और अंत में भावों का स्थान रहता है "| यह स्पष्टता आलोचक के लिए अनिवार्य है |

डॉ नगेंद्र ने कामयानी नामक महाकाव्य पर कामायनी के अध्ययन की समस्याएं नामक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी | डॉ नगेन्द्र के अनुसार 'कामायनी' में "कार्य-व्यापार का धभाव" है, "जिसके

परिणामस्वरूप कथा में वांछित भौतिक विस्तार नहीं था सका।" ('कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ, १० 23)। आगे उन्होंने लिखा है-"वह मानव-चेतना के विकास की कथा है।" (उपर्युक्त)। 'मानव-चेतना के विकास की कया' होने के कारण ही उसमें भाव बौर विचार बस्तु और घटनाओं से अधिक-से-अधिक निरपेक्ष रूप में अंकित किये गये हैं। इस तर्क के पीछे नगेन्द्र की यह भाववादी मान्यता कार्य करती है कि "अवचेतन मनोजगत् के उद्घाटन और तत्संबंधी अनुसन्धानों से यह स्पष्ट हो गया है कि भौतिक जगत् का विराट् घटना चक्र मानव चेतना के अतल गह्वरों में होने-बाले घटनाचक्र की छाया-मात्र है।" (उपर्युक्त, पृ० 17)। डॉ नगेन्द्र के अनुसार 'कामायनी' का अन्त भी त्रुटिपूर्ण है "कामना और कामायनी दोनों का अन्त स्वभावसिद्ध-कम-से-कम क्रमिक नहीं है- श्राग्रह से ग्रहण किया हुआ है, और आग्रह में विश्वास इतना नहीं होता जितना कि विश्वास का प्रयत्न ।" ('आधुनिक हिन्दी नाटक', पृ० 56-57)। श्रद्धा और इड़ा 'कामायनी' के मुख्य चरित्र है। 'कामायनी' में उनका चित्रण किस रूप में हुआ है, इस पर नगेन्द्र की टिप्पणी है: "स्वभावतः उनकी प्रतीकता के कारण चारित्रिक रूपरेखा में वैसी दृढ़ता और मूर्त सघनता नहीं आ सकी, जैसी कि पाश्चात्य महाकाव्यों के चरित्रों में मिलती है।" ('कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ', पृ. 21)। इसका मतलब यह है कि प्रतीकात्मकता श्रद्धा और इड़ा के चरित्रों से विकसित नहीं होती बल्कि उन पर आरोपित है। जहाँ तक 'कामायनी' की दार्शनिकता का प्रश्न है, वह भी आरोपित ही है जिससे उसके काव्यत्व को काफी क्षति पहुँची है। एक दार्शनिक प्रसंग के वर्णन के सम्बन्ध में नगेन्द्र ने लिखा भी है: "जितना हुआ है वह भी कवित्व का मूल्य देकर ही हुआ है।" (उपर्युक्त, पृ० 64) ।

डॉ नगेंद्र ने साकेत महाकाव्य पर भी सर्वप्रथम गंभीर दृष्टि से विचार किया है | उर्मिला के संघर्ष को तत्कालीन जीवन से जोड़कर आपने अपनी आलोचना दृष्टि का यथेष्ट परिचय दिया है |

डॉ नगेंद्र का बड़ा कार्य रीतिकालीन साहित्य का यथेष्ट मूल्यांकन करना है | डॉ नगेन्द्र से पहले देव और बिहारी का विवाद हो चुका था | रामचंद्र शुक्ल जैसे समर्थ आलोचक रीतिकालीन साहित्य को सहानुभूति न दे सके थे | यह कार्य हिंदी में नगेन्द्र ने किया | बड़े आलोचकों में डॉ नगेन्द्र और विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने सर्वप्रथम रीतिकालीन साहित्य पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया | आज रीतिकालीन साहित्य के नये मूल्यांकन का कार्य हो रहा है | यह कार्य डॉ नगेन्द्र ने सबसे पूर्व प्रारंभ किया था | रीति कविता की अपनी बनावट भक्ति कविता से भिन्न है | अक्सर होता रहा कि रीति कविता को भक्ति कविता से तुलना करके देखा जाता रहा डॉ नगेंद्र ने रीति कविता की विशेषताओं पर सहृदयता पूर्वक विचार किया |

रस सिद्धांत नामक कृति डॉ नगेंद्र की आलोचना दृष्टि का निचोड़ कहा जा सकता है | रस सिद्धांत पर एकांतिक आग्रह रखते नयी स्थापना देने वाले आप विशिष्ट आलोचक हैं | डॉ नगेन्द्र से पहले आचार्य रामचंद्र शुक्ल की रस मीमांसा नामक कृति लिखी जा चुकी थी | किंतु शुक्ल जी ने साधरणीकारण के प्रश्न पर संतुलित विचार नहीं किया था | यह कमी डॉ नगेन्द्र द्वारा पूरी हुई | रस सिद्धांत की शक्ति और सीमाओं पर डॉ नगेन्द्र ने विस्तार पूर्वक विचार किया | रस की स्थिति सहृदय में है या आलाम्बन में?

इस प्रश्न का उत्तर तलाशते हुए डॉ नगेन्द्र ने उसे कवि में स्थित माना | स्वाभाविक है कि रस सबसे पहले कवि /सर्जक में उपस्थित होता है, फिर उसे सहृदय ग्रहण करता है | डॉ नगेन्द्र की यह स्थापना भारतीय काव्यशास्त्र में नया प्रस्थान रचती है |

साहित्य और कला पर भी डॉ नगेंद्र ने स्वतंत्रतापूर्वक विचार किया है |

(अभ्यास प्रश्न)

सत्य /असत्य का चुनाव कीजिए |

1- सुमित्रानंदन पंत छायावाद पर लिखी गयी प्रथम आलोचना है |

2- रस सिद्धांत पुस्तक के लेखक डॉ नगेन्द्र हैं |

3- डॉ नगेंद्र ने हिंदी साहित्य का इतिहास पुस्तक सम्पादित की है |

4- आस्था के चरण की रचना विधा निबंध है |

5- कवि की अनुभूति का साधरणीकारण होता है, यह डॉ नगेन्द्र का मत है |

7.5 डॉ नगेंद्र का आलोचनात्मक अवदान

डॉ नगेन्द्र हिंदी आलोचना को समृद्ध करने वाले महत्वपूर्ण आलोचक हैं | सुमित्रानंदन पंत पर आलोचना लिखकर डॉ नगेंद्र ने छायावादी आलोचना को समृद्ध किया | साकेत के अध्ययन के बहाने डॉ नगेंद्र ने नवजागरण की चेतना को नए सिरे से व्याख्यायित किया | रीतिकाव्य की भूमिका के बहाने डॉ नगेन्द्र ने रीतिकाव्य की परिस्थितियों को हिंदी आलोचना में पहली बार इतने विस्तार से लिखा | देव और उनकी कविता और रीरिकाव्य की भूमिका डॉ नगेन्द्र की विशिष्ट कृतियाँ हैं | रीतिकाव्य पर तार्किक ढंग से विभाजन करने की दृष्टि से भी डॉ नगेन्द्र का महत्व असाधारण है |

काव्यशास्त्र और सैद्धांतिक आलोचना की दृष्टि से भी डॉ नगेन्द्र का योगदान किसी भी दूसरे हिंदी आलोचक से कम नहीं है| पाश्चात्य काव्यशास्त्र को हिंदी में इतने व्यापक रूप से प्रचारित करने का श्रेय भी डॉ नगेन्द्र को है|

रस निष्पत्ति की दृष्टि से डॉ नगेन्द्र ने कवि अनुभूति का साधरणीकारण कहकर अपनी मौलिक दृष्टि का परिचय दिया है| रस सिद्धांत नामक कृति तो डॉ नगेन्द्र की आलोचना का शीर्ष रूप ही है|

अभ्यास प्रश्न) २

टिपण्णी कीजिये

सुमित्रानंदन पन्त पुस्तक

.....

.....

.....

रस सिद्धांत

.....

.....

.....

रीतिकाव्य और डॉ नगेन्द्र

.....

.....

.....

छायावाद और डॉ नगेन्द्र

.....

.....

.....

7.6 सारांश

हिंदी आलोचना शीर्षक पुस्तक की यह छठवीं इकाई है | इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि

* डॉ नगेन्द्र हिंदी आलोचना को समृद्ध करने वाले महत्वपूर्ण आलोचक हैं | सुमित्रानंदन पंत पर आलोचना लिखकर डॉ नगेंद्र ने छायावादी आलोचना को समृद्ध किया |

* साकेत के अध्ययन के बहाने डॉ नगेंद्र ने नवजागरण की चेतना को नए सिरे से व्याख्यायित किया | रीतिकाव्य की भूमिका के बहाने डॉ नगेन्द्र ने रीतिकाव्य की परिस्थितियों को हिंदी आलोचना में पहली बार इतने विस्तार से लिखा |

*देव और उनकी कविता और रीरिकाव्य की भूमिका डॉ नगेन्द्र की विशिष्ट कृतियाँ हैं | रीतिकाव्य पर तार्किक ढंग से विभाजन करने की दृष्टि से भी डॉ नगेन्द्र का महत्व असाधारण है |

* काव्यशास्त्र और सैद्धांतिक आलोचना की दृष्टि से भी डॉ नगेन्द्र का योगदान किसी भी दूसरे हिंदी आलोचक से कम नहीं है | पाश्चात्य काव्यशास्त्र को हिंदी में इतने व्यापक रूप से प्रचारित करने का श्रेय भी डॉ नगेन्द्र को है |

* रस निष्पत्ति की दृष्टि से डॉ नगेन्द्र ने कवि अनुभूति का साधरणीकारण कहकर अपनी मौलिक दृष्टि का परिचय दिया है | रस सिद्धांत नामक कृति तो डॉ नगेन्द्र की आलोचना का शीर्ष रूप ही है |

7.7 शब्दावली

व्यावहारिक आलोचना - किसी कृति या रचना को केंद्र में रखकर लिखी गयी आलोचना

सैद्धांतिक आलोचना - किसी मत और विचार को आधार बनाकर लिखी गयी आलोचना

स्थूल - भारी

मूर्तिविधायिनी शक्ति - चित्र अंकित करने वाली रचना shaili
स्वच्छन्द भावधारा - भाव प्रधान शैली, जो रूढ़ियों को तोड़ने का कार्य करती है |

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१- सत्य
२- सत्य
३- सत्य
४- सत्य
५- सत्य

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१- सुमित्रानंद पन्त – डॉ नगेन्द्र
२- साकेत एक अध्ययन – डॉ नगेन्द्र
३- रीतिकाव्य की भूमिका – डॉ नगेन्द्र
४- रस सिद्धांत- डॉ नगेन्द्र

7.9 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

हिंदी साहित्य का इतिहास – रामचंद्र शुक्ल
हिंदी साहित्य का इतिहास -सम्पादित डॉ नगेन्द्र

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

१- डॉ नगेन्द्र की आलोचना दृष्टि पर विचार करें।

इकाई 8 : नंददुलारे बाजपेई और हिंदी आलोचना

इकाई की रुपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 नंददुलारे बाजपेयी का रचना संसार
8.4 नंददुलारे बाजपेई की आलोचना दृष्टि
8.5 नंददुलारे बाजपेयी का आलोचनात्मक अवदान
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.11निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

आचार्य नंददुलारे बाजपेयी हिंदी के शीर्षस्थ आलोचक हैं| आचार्य रामचंद्र शुक्ल की परम्परा को जिन तीन आलोचकों ने तात्कालिक रूप से आगे बढ़ाया, उनमें हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे बाजपेयी और डॉ नगेंद्र प्रमुख हैं| ये तीनों आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल से प्रभावित भी थे और कई बिंदुओं पर उनसे असहमत भी थे| साहित्य में असहमति परम्परा के विकास के लिए आवश्यक होती है| आचार्य रामचंद्र की ऐतिहासिक दृष्टि व कबीर सम्बन्धी मतों को लेकर हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रश्न खड़ा किया| रामचंद्र शुक्ल के छायावाद सम्बन्धी मतों पर नंददुलारे बाजपेयी असहमत थे, वहीं काव्यशास्त्र व रीति साहित्य पर डॉ नगेंद्र असहमत थे| इस प्रकार आचार्य शुक्ल से ठीक पूर्व ये तीन आलोचक अपनी ऐतिहासिक भूमिका के साथ हमारे सामने आते हैं|

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद को रहस्यवाद के पर्याय रूप में प्रयोग किया था| आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने छायावाद को बीसवी शताब्दी के ऐतिहासिक विकास क्रम से जोड़ा| छायावाद को एक ओर जहाँ वे मानव व प्रकृति से जोड़ते हैं, वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक छाया का भान कहकर अमूर्त रूप भी प्रदान कर देते हैं| जयशंकर प्रसाद, निराला आदि छायावादी कवियों को विश्व के श्रेष्ठ कवियों में स्थान देकर बाजपेयी जी ने अपनी स्वच्चान्दतावादी आलोचना दृष्टि का विकास किया| नंददुलारे बाजपेयी की आलोचना दृष्टि को स्वच्छन्दता वादी कहा ही गया|

8.2 उद्देश्य

हिंदी आलोचना शीर्षक यह सातवीं इकाई है| इस इकाई के अध्ययन से आप-
* हिंदी आलोचना के विकास क्रम को समझ सकेंगे|
* हिंदी आलोचना में नंददुलारे बाजपेयी की भूमिका को रेखांकित कर सकेंगे|
* नंददुलारे बाजपेयी की प्रमुख आलोचनात्मक कृतियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे|
* नंददुलारे बाजपेयी की आलोचना दृष्टि को समझ सकेंगे|
* नंददुलारे बाजपेयी के आलोचनात्मक योगदान से परिचित हो सकेंगे|
* हिंदी आलोचना को तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में समझ सकेंगे|

8.3 नंददुलारे बाजपेयी का रचना संसार

जयशंकर प्रसाद - १९३९
हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी - १९४२
आधुनिक साहित्य - १९५०
महाकवि सूरदास - १९५३
प्रेमचंद : साहित्यिक विवेचन - १९५४
नया साहित्य : नये प्रश्न - १९५५
राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएँ - १९६१
कवि निराला - १९६५
राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध- १९६५
प्रकीर्णिका - १९६५
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
आधुनिक काव्य : रचना और विचार
नई कविता - १९७६
कवि सुमित्रानन्दन पंत - १९७६
रस सिद्धांत : नये संदर्भ - १९७७
आधुनिक साहित्य : सृजन और समीक्षा - १९७८
हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग - १९७९
रीति और शैली - १९७९

8.4 नंददुलारे बाजपेयी की आलोचना दृष्टि

आचार्य नंददुलारे बाजपेयी की आलोचना दृष्टि को कहीं स्वच्छन्दतावादी कहा गया है तो कहीं सौंदर्यवादी | छायावादी आलोचक के रूप में तो आप प्रतिष्ठित हैं ही | डॉ नन्द किशोर नवल जी ने तो

बाजपेयी जी को समन्वयवादी कहा है | अपनी आलोचना दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए आपने नया साहित्य : नये प्रश्न की भूमिका में लिखा है कि -" व्यक्ति के असीम आध्यात्मिक मूल्य को स्वीकार करते हुए भी हम व्यक्तिवादी नहीं हैं | सामाजिक अर्थनीति के क्षेत्र में समाजवादी व्यवस्था को स्वीकार करते हुए भी हम वैज्ञानिक या अवैज्ञानिक किसी प्रकार के भूतवादी नहीं हैं "| वस्तुतः नंददुलारे बाजपेयी छायावादी आलोचक के रूप में ही ख्यात हैं | छायावादी कविता आंदोलन को किसी एक आलोचक को प्रतिष्ठित करने का श्रेय दिया जा सकता है तो वह नंददुलारे बाजपेयी को ही | हम जानते हैं कि बाजपेयी जी से पूर्व आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावादी कविता का उचित मूल्यांकन नहीं किया था | यह पूर्ति नंददुलारे बाजपेयी जी द्वारा हुई |

छायावाद को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रहस्यवाद और शैली अर्थ मात्र माना था, किंतु नंददुलारे बाजपेयी ने छायावाद को प्रतिष्ठित किया | नंददुलारे बाजपेयी ने लिखा है -" कल्पना की भूमि में रमने वाले स्वतंत्र कवियों और साहित्यिकों को वर्गवाद की खूंटी में बाधने का प्रयत्न करना बुद्धिमानी की बात नहीं "| स्पष्ट है कि बाजपेयी जी विचारधारा के आधार पर साहित्य को बाँधने वाली मनोवृत्ति का विरोध करते हैं | स्वयं बाजपेयी जी का विचार समन्वयवादी कहा गया है | लेकिन बाजपेयी जी को छायावादी आलोचक कहना ही ज्यादा उचित प्रतीत होता है |

सौंदर्य और नैतिकता के प्रश्न पर अन्यत्र भी लिखा गया है | इस बिंदु पर बाजपेयी जी ने भी विचार किया है | उन्होंने लिखा है -" यदि काव्य में नैतिक आदर्शो का निरुपण किया जाए, तो उसमें सौंदर्य आ सकता है, किंतु तब वह सौंदर्य नैतिकता का होगा, काव्य का नहीं "|(नया साहित्य :नए प्रश्न) | बाजपेयी जी प्रबंध और मुक्तक में मुक्तक को प्राथमिकता देते हैं | उन्होंने लिखा है -" प्रगीत काव्य में कवि की भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है... प्रगीतों में ही कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह से प्रतिबिम्बित होता है |... प्रबंध -काव्य में दृश्य चित्रण और वस्तु चित्रण के साथ बहुत सा इतिवृत्त भी लगा रहता है ; परन्तु प्रगीत -रचना में कविता इन समस्त उपचारों से विरत होकर केवल कविता का भाव -प्रतिमा बनकर आती है |(आधुनिक साहित्य)| आचार्य नंददुलारे बाजपेयी की दृष्टि शुद्ध कविता की दृष्टि है | आचार्य नंददुलारे बाजपेयी कविता और अनुभूति को सबसे महत्वपूर्ण मानते हैं | उन्होंने हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी की भूमिका में लिखा है -" आलोचना में वे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण 'रचना में कवि की अन्तर्व त्तियों (मान-सिक उत्कर्ष-अपकर्ष) के अध्ययन' को और सबसे कम महत्त्वपूर्ण 'काव्य के जीवन-सम्बन्धी सामंजस्य और सन्देश के अध्ययन' को मानते हैं। 'कवि के दार्श-निक, सामाजिक और राजनीतिक विचारों आदि के अध्ययन' को उन्होंने जीवन-सम्बन्धी सामंजस्य और सन्देश के अध्ययन से थोड़ा ही अधिक महत्त्व दिया है। इससे यह स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में अनुभूति ही कविता का सर्वप्रथम तत्त्व है।

आचार्य नंददुलारे बाजपेयी को सौंदर्यवादी आलोचक कहा गया है | एक जगह उन्होंने लिखा है -"कि हम किसी पूर्वनिश्चित दार्शनिक अथवा साहित्यिक सिद्धान्त को लेकर उसके आधार पर कला की परख नहीं कर सकते। सभी सिद्धान्त सीमित हैं, किन्तु कला के लिए कोई भी सीमा नहीं है, कोई बन्धन

नहीं है, जिसके अन्तर्गत आप उसे बाँधने की चेष्टा करें। (सिर्फ सौन्दर्य ही उसकी सीमा या बन्धन है, किन्तु उस सौन्दर्य की परख किंन्हीं सुनिश्चित सीमाओं में नहीं की जा सकती।)" (हिंदी साहित्य :बीस वीं शताब्दी पृ० 118) । यह सौन्दर्य वाजपेयीजी के लिए एक निरपेक्ष वस्तु है, क्योंकि "किसी भी सिद्धान्त के सम्बन्ध में कभी मतैक्य नहीं हो सकता, किन्तु (कलाकृति के) सौन्दर्य के सम्बन्ध में कभी दो राय नहीं हो सकतीं।" (उपर्युक्त, पृ० 119)। इस कारण उन्होंने आलोचना में पूरी तरह से सिद्धान्तहीनता का पक्ष लिया है और आलोचक के बारे में कहा है: "उसका पहला और प्रमुख कार्य है कला का अध्ययन और सौन्दर्यानुसन्धान। इस कार्य में उसका व्यापक अध्ययन, उसकी सूक्ष्म सौन्दर्य-दृष्टि और उसकी सिद्धान्त-निरपेक्षता ही उसका साथ दे सकती है।" (उपर्युक्त, पृ० 118)। आलोचक जब किसी सिद्धान्त के साथ कविता की आलोचना करता है तब उसे अपने सिद्धान्त के प्रकाश में ही देखता है। इस तरह उस कविता की अपनी विशेषताएँ प्रकट नहीं हो पातीं: "हमारा काम यह नहीं है कि अपनी अलग रुचि और अलग मत बनाकर काव्य-समीक्षा में प्रवृत्त हों, क्योंकि तब तो हम उसका सौन्दर्य न देखकर अपने मन की छाया उसमें देखने लगेंगे।" (हिंदी साहित्य: बीसवीं शताब्दी, पृ० 118-19)। इसका मतलब यह है कि वाजपेयीजी आलोचना को कृति-विशेष की व्याख्या मानते हैं, मूल्यांकन नहीं, क्योंकि उनके अनुसार मूल्यांकन करना आत्मनिष्ठ होगा | यहाँ स्पष्ट तौर पर नंददुलारे बाजपेयी जी आलोचना को वस्तुनिष्ठ नहीं मानते| जाहिर है यह दृष्टि उचित नहीं है| आलोचना अपने युग की बौद्धिक-वस्तुनिष्ठ दृष्टि या अनुशासन है| फिर आलोचना को आत्मनिष्ठ कैसे कहा जा सकता है?

नया साहित्य: नए प्रश्न में नंददुलारे बाजपेयी ने आलोचना के ऊपर मत व्यक्त करते हुए लिखा है-" आलोचना रचना की अनुगामी-मात्र नहीं होती और वह स्वस्थ विचारधारा से रचना का नियन्त्रण भी करती है: "समीक्षा की सार्थकता बदलते हुए साहित्यिक प्रयोगों और प्रणालियों के पीछे-पीछे चलने में ही नहीं है। हमें साहित्य का नेतृत्व और नियन्त्रण भी करना होगा। स्वस्थ विचार-पद्धति, स्वस्थ मनोविज्ञान, स्वस्थ सामाजिकता तथा सुव्यवस्थित कला-त्मक अभिरुचि ही हमारी साहित्य-समीक्षा के आवश्यक गुण हो सकते हैं।" (पृ० 331) ।अन्ततः वे किसी भी आलोचना-शैली को पूर्ण न पाकर सभी आलोचना-शैलियों- 'विशुद्ध साहित्यिक,' मार्क्सवादी, मनोवैज्ञानिक और प्रभावाभिव्यंजक में समन्वय स्थापित करना चाहते हैं, किन्तु उनमें संघर्ष की बढ़ती हुई स्थिति देखकर खेदपूर्वक कहते हैं: "वर्त्तमान समय में इनके बीच विरोधी प्रवृत्तियों का प्राबल्य हो रहा है। मिलन की सम्भावना दूर दिखायी देती है।" ('नया साहित्य: नये प्रश्न,' 38)।

आचार्य नंददुलारे बाजपेयी मूलत: छायावादी आलोचक हैं| किंतु उन्होंने नए साहित्य और साहित्यकारों पर भी विचार किया है| प्रेमचंद साहित्य पर आपने गहराई पूर्वक विचार किया है| गोदान के कथ्य को विश्व साहित्य के समकक्ष रखकर आपने अपना विश्लेषण किया है| जैनेन्द्र और अज्ञेय के साहित्य पर भी बाजपेयी जी ने तार्किक ढंग से विचार किया है| किंतु छायावाद के सन्दर्भ में जो आरोप

शुक्ल जी पर लगा कि वे उसे सहानुभूति न दे सके, वही आरोप नंददुलारे बाजपेयी के ऊपर भी लगाया जा सकता है कि वे छायावाद के बाद के साहित्य को सहानुभूति न दे सके|

अभ्यास प्रश्न) 1

सत्य /असत्य का चुनाव कीजिए |

1- नंददुलारे बाजपेयी को छायावादी आंदोलन को स्थापित करने का श्रेय दिया जाता है |

2. हिंदी साहित्य: बीसवीं शताब्दी पुस्तक के लेखक नंददुलारे बाजपेयी हैं |

3. नंददुलारे बाजपेयी को स्वच्छन्दतावादी आलोचक कहा गया है |

4. रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद को अपने समय की प्रतिनिधि कविता कहा है|

5- नंददुलारे बाजपेयी छायावादोत्तर कविता को सहानुभूति न दे सके|

7.5 डॉ नंददुलारे बाजपेयी का आलोचनात्मक अवदान

आचार्य नंददुलारे बाजपेयी को छायावादी कविता आंदोलन को प्रतिष्ठित करने का श्रेय दिया जाता है| हम जानते हैं कि हिंदी आलोचना में आचार्य शुक्ल का व्यापक प्रभाव रहा है| शुक्ल जी ने छायावादी आंदोलन को सहानुभूति नहीं दी थी| इसके कतिपय कारण थे| एक, शुक्ल जी का कविता में रहस्यवाद को स्वीकार न कर पाने का भाव| दूसरे, छायावादी कविता की प्रगतिशील भूमिका को शुक्ल जी न समझ सके थे| तीसरे, छायावादी कविता में गीत-प्रगीत की अधिकता| और सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि छायावाद रोमेंटिक कविता आंदोलन था| शुक्ल जी की दृष्टि क्लासिक दृष्टि थी| क्लासिक दृष्टि मुख्यतः समाज, प्रबंध और नैतिकता को महत्त्व देती है| इसलिए आचार्य शुक्ल छायावाद को सहानुभूति न दे सके| ऐतिहासिक दाय की पूर्ति करते हुए हिंदी आलोचना में आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने छायावादी कविता आंदोलन नए युग की वैज्ञानिक चेतना के रूप में देखा|

8.6 सारांश

प्रिय शिक्षार्थियों! आपने हिंदी आलोचना नामक पुस्तक की 7 वीं इकाई का अध्ययन किया| इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि-

* छायावादी कविता आंदोलन अपने ढंग का विशिष्ट कविता आंदोलन था|
* छायावादी कविता आंदोलन को प्रतिष्ठित करने का श्रेय नंददुलारे बाजपेयी को ही है|
* नंददुलारे बाजपेयी को सौंदर्यवादी और स्वच्छन्दतावादी आलोचक कहा गया है|
* नंददुलारे बाजपेयी की आलोचना में शुद्ध कविता, अनुभूति के प्रति आग्रह स्पष्ट है|

अभ्यास प्रश्न)२

टिप्पणी कीजिए

छायावाद

.....

.....

.....

रहस्यवाद

.....

.....

.....

छायावाद और नवजागरण

.....

.....

.....

नंददुलारे बाजपेयी और छायावाद

.....

.....

.....

8.7 शब्दावली

स्वच्छन्दतावादी - सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का भाव रखने की भावना
रहस्यवाद - अज्ञात के प्रति जिज्ञासा का भाव
निरपेक्ष - समाज की गति से अछूता
प्रभावाभिव्यंजक - किसी के ऊपर किसी विचार, वस्तु का प्रभाव ग्रहण करने की दृष्टि

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- सत्य

2-सत्य
3-सत्य
4- असत्य
5-सत्य

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पल्लव की भूमिका- सुमित्रा नंदन पंत

2. हिंदी साहित्य: बीसवीं शताब्दी- नंददुलारे बाजपेयी

8.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिंदी आलोचना का विकास- नन्द किशोर नवल
2. हिंदी आलोचना की बीस वीं शताब्दी- निर्मला जैन

8.11निबंधात्मक प्रश्न

नंददुलारे बाजपेयी की आलोचना दृष्टि पर विचार करें |

इकाई 9 रामविलास शर्मा और हिंदी आलोचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 प्रगति का अर्थ और मार्क्सवाद
9.4 हिंदी में प्रगतिशील आंदोलन का उदय एवं विकास
9.5 डॉ. रामविलास शर्मा का व्यक्तित्व
9.6 डॉ. रामविलास शर्मा के आलोचना सिद्धान्त
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 सहायक पाठ्य सामग्री
9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप प्रगतिशील आंदोलन, प्रगतिवादी चेतना और प्रगतिशील हिन्दी आलोचना के संदर्भ में डॉ0 रामविलास शर्मा की आलोचना दृष्टि का अध्ययन करेगें। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रगतिशील हिन्दी आलोचना एवं डॉ0 रामविलास शर्मा के आलोचकीय महत्व को जान सकेगे।

9.2 उद्देश्य

प्रगतिशील आलोचना एवं डॉ. रामविलास शर्मा शीर्षक इस इकाई के सम्यक अध्ययन के उपरान्त आप बता सकेंगे कि

साहित्यिक आंदोलन के रूप में प्रगति का क्या अर्थ है।
प्रगतिशील आलोचना क्या है।
प्रगतिशील आंदोलन की पृष्ठभूमि में स्थित मार्क्सवादी सिद्धान्त क्या है।
हिंदी साहित्य में मार्क्सवादी साहित्य सिद्धान्तों की भूमिका और मान्यता है।
डॉ. रामविलास शर्मा का आलोचना साहित्य में क्या व्यक्तित्व है।
डॉ. रामविलास शर्मा के आलोचना सिद्धान्त क्या हैं।
डॉ. रामविलास शर्मा ने अपने समय के साहित्य पर क्या प्रभाव छोड़े।

9.3 प्रगति का अर्थ और मार्क्सवाद

प्रगति शब्द का प्रयोग आगे बढ़ने के रूप में आम है और यही शायद इसका सबसे सही अर्थ भी है। आगे बढ़ना ! पुराने मनुष्यविरोधी रीति-रिवाज़ों को तज कर आगे बढ़ना। शोषण की व्यवस्थाओं को तोड़ कर आगे बढ़ना। अकेले मनुष्य के लिए नहीं, समूची मानवता के लिए आगे बढ़ना। यह एक सामान्य सिद्धान्त है कि मनुष्य ने अपनी अब तक की विकासयात्रा विराट सामूहिक प्रयत्नों द्वारा अर्जित की है। चलना और चलते रहना - यह प्रगति का एक सामान्य अर्थ हुआ। अब प्रश्न यह उठता है कि किस ओर चलना। हम अंधेरे नहीं चल सकते, हमें प्रकाश की आवश्यकता होती है। हम बिना दिशा के नहीं चल सकते, हमें एक दिशा की आवश्यकता होती है। यह प्रकाश और दिशा हमें कुछ मानवीय सिद्धान्तों से मिलते हैं। प्रगतिवादियों को यह मार्क्सवाद से मिला, जिसे उन्होंने साहित्य की और साहित्यालोचन की दिशा के रूप में स्वीकार किया। हिंदी लगभग पूरा प्रगतिशील आंदोलन मार्क्सवाद से संचालित रहा है और बीज भगतसिंह की शहादत के समय ही पड़ गए थे, जो एक निश्चित वैचारिक सरोकर के लिए फांसी चढ़े। प्रगतिवादी मानते रहे कि भारतीय समाज की मुक्ति मार्क्सवाद की राह पर ही है। इनमें राहुल सांकृत्यायन जैसे व्यक्ति भी शामिल थे जो स्वामी सहजानन्द के साथ किसान आंदोलन से जुड़े रहे साथ नागार्जुन जैसे जनकवि भी। कई-कई प्रगतिबोध वाले लेखकों, पत्रकारों, रंगकर्मियों, राजनीतिकर्मियों ने मिलकर हिंदी में प्रगति का एक नया अध्याय जोड़ा जो आज सबसे अधिक प्रभावशाली है। विचारधारा के अनुसार प्रगतिशील लेखक-कवि-आलोचक अधिकांशतः मार्क्सवादी हैं।

अब प्रश्न उठता है कि साहित्य में मार्क्सवाद या मार्क्सवादी आलोचना क्या है। इसके कुछ सिद्धान्त या विचारबिंदु है, जिन्हें इस प्रकार क्रम दिया जा सकता है

1. मार्क्सवाद ने बार पहली समाज को किसी आंतरिक अवयव संरचना के रूप में प्रस्तुत किया। इसमें उत्पादन-शक्ति, उत्पादन के सम्बन्ध से लेकर राज्य, राजनीति, विधि, नश्वरता, दर्शन,, विज्ञान, कला, सभी सम्मिलित थे।
2. मार्क्सवादी आलोचना की पहली अवधारणा यह है कि एक कवि के चित्त और वस्तुओं के प्रति उसकी वास्तविक दृष्टि के बीच द्वंद्वात्मक संघर्ष मौजूद रहता है।
3. सोवियत रूस में क्रांति के बाद मार्क्सवादी अवधारणाओं का अतिरेक साहित्य पर देखा गया जब लेनिन ने घोषणा की कि साहित्य को हर स्थिति में पार्टी का साहित्य हो। उधर मार्क्स के संगी एंगेल्स लेनिन से काफी पहले 1885 में ही स्पष्ट कर कए थे कि लेखक के लिए ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है और शायद यही कारण था कि वे शेक्सपीयर को शीलर से और बालजाक को जोला बड़ा कलाकार मानते थे।
4. मार्क्सवादी आलोचना का व्यवस्थित सिद्धान्त पहली बार 1932 में प्रस्तुत हुआ जिसे 'समाजवादी वास्तववाद' की संज्ञा प्रदान की जाती है। लेखक का काम इस सिद्धान्त के अनुसार यथार्थ का पुनरुत्पादन करना है।

5. मार्क्सवादी अथवा प्रगतिशील आलोचना 'वस्तु आधारित' आलोचना है। यह वस्तु और रूप को अलग अलग तत्व मानती है तथा वस्तु को मूल सामाजिक तत्व मानती है, जिसका निरूपण लेखक करता है।
6. मार्क्सवादी आलोचना विचारधारा को महत्व देती है, कह सकते है कि ये एक कट्टर सैद्धान्तिक आलोचना है। मार्क्सवादी आलोचना के अनुसार विचार धारा के निम्न 6 प्रमुख बिन्दु हैं -
    - विचारधारा का पदार्थपरक अस्तित्व होता है। एंगेल्स ने आडियलोजी को यथार्थपरक समाजिक नातेदारी के विचार में होने वाले प्रतिबिम्बन को साहित्य माना।
    - यह प्रतिबिम्बन दरअसल पुनरुत्पादन है जो लेखक करता है और सामाजिक प्रकार्यों में अपनी भागीदारी देता है।
    - मार्क्सवादी आलोचना सामाजिक यथार्थ पर दृष्टि रखती है। वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक घटनाओं को समकाल में घटित होते देखती और साहित्य में उसके सूत्र खोजती है।
    - विचारधारा हमेशा जनता केन्द्रित होती है। आम जनता के दुखदर्द और वंचनाएं विचार धारा के केन्द्र में होते हैं।
    - विचारधारा शोषणमुक्त समाज का स्वप्न देखती है। इस दिशा में वह समाज को बदलने वाली रचनात्मकता को प्रोत्साहित करती है।
    - पूंजीवाद और साम्राज्यवाद को मार्क्सवादी आलोचना में आम जन का सबसे बड़ा शत्रु माना जाता है।

9.4 हिंदी में प्रगतिशील आंदोलन का उदय एवं विकास

हिंदी में प्रगतिशील आंदोलन से पूर्व जानना होगा कि पश्चिम में यह कब और किस रूप में आया क्योंकि पश्चिमी प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन की शाखा के रूप में ही हिंन्दुस्तान में भी प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। 1935 में ई.एम. फास्टर की अध्यक्षता में पेरिस में प्रोग्रसिव राइटर्स एसोसिएशन नामक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ। 1936 में सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनन्द के संयुक्त प्रयासों से लखनउ में प्रगतिशील लेखक संघ का पहला सम्मेलन हुआ। इसलिए हिंदी में प्रगतिशीलता का उद्भव इसी वर्ष से मान लिया गया है। हालांकि 1930 के आसपास तक हिंदी यह आन्दोलन लेखकों को प्रेरित कर रहा था। प्रेमचन्द स्वयं इस विचारधारा बहुत प्रेरित रहे। प्रथम अधिवेशन के सभापति के रूप दिए गए वक्तव्य में उन्होंने कहा कि भी कि प्रगतिशील नाम ग़लत

हैं, क्योंकि कलाकार या लेखत स्वभाव से ही प्रगतिशील होता है। नाम को लेकर प्रेमचन्द ने जो कहा हो पर उसके पीछे समूची विचार परम्परा से वे अन्त तक आड़ोलित थे और रहे।

प्रगतिशीलता के इस विचार को आलोचना में प्रविष्ट होना था। आचार्य शुक्ल और उनके बाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी वैचारिक रूप से पूर्णतः परिपक्व थे और अपने दृष्टिकोण में काफी साफ भी। भारतीय परम्पराओं के साथ-साथ पाश्चात्य दर्शन को भी निकट से देख रहे थे। उनके समय में आलोचना में सिद्धान्त खोजने-रचने की विषयवस्तु होते थे, किन्तु प्रगति के युग में पहले ही कुछ बने बनाए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक ढांचे थे। आलोचना के लिए यह एक उलझन भरा समय रहा होगा जब उसे अपनी निकट परम्परा भी देखनी होती होगी और नए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को भी सिद्ध करना होगा। प्रगतिवाद की विचारधारा पूरी तरह मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित है। वह आधुनिक विचारधारा है किंतु ऐतिहासिक विश्लेषण में अतीत के साहित्य का भी तथ्यपूर्ण अध्ययन करती है। मार्क्सवादी विचारक-आलोचक शिवदान सिंह चौहान का कथन है कि जहां यह सत्य है कि बाह्य परिस्थितियों से साहित्य अनेक स्वस्थ और अस्वस्थ प्रभाव ग्रहण करता है वहां यह भी उतना ही सत्य है कि ये प्रभाव साहित्य की ऐतिहासिक परम्पराओं के माध्यम से जीवन के अगणित सम्बन्धों को ग्रहण करके ही व्यक्त होते हैं इस प्रकार एक ओर वे साहित्य की परम्परा बदलते हैं तो दूसरी ओर साहित्य के इतिहास की तारतम्यता और सम्बद्धता को पुष्ट करते हैं।

प्रगतिशील आलोचना ने अतीत के साहित्य को कितनी अर्थवत्ता के साथ ग्रहण किया है इसके अनेक उदाहरण हैं। प्रगतिशीलों से भक्त कवियों, संतवाणियों आदि को ख़ासा महत्व दिया है। वे कबीर, जायसी, तुलसी को परम्परा का ज़रूरी कवि मानते हैं।

9.5 डॉ. रामविलास शर्मा का व्यक्तित्व

इसी उलझे हुए समय में डॉ. रामविलास शर्मा आलोचना के क्षितिज पर आए। इनका जन्म 1912 ई में हुआ। अंग्रेजी के विद्यार्थी रहे। लम्बे समय तक निराला का साथ मिला। कन्हैयालाल मुंशी विद्यापीठ में अंग्रेजी के ही अध्यापक हुए। कुछ समय आगरा के ही बलवंत राजपूत कालेज में अंग्रेजी पढ़ाई। रामविलास जी के पूर्व हमारे दोनों बड़े आचार्य आलोचक संस्कृत की परम्परा से आए थे, किन्तु रामविलास जी अंग्रेजी से। वे अंग्रेजी पढ़े और अंग्रेजी पढ़ानेवाले आलोचक थे। पश्चिमी विचारकों और विचार सरणियों के बारे में उनकी जानकारी अधिक निकट की थी। लखनऊ में रहते हुए उन्हें निराला का साथ मिला जो बाद में और गहरा होता गया। निराला के साथ उनकी आदरपूर्ण मैत्री ने रामविलास के व्यक्तित्व में कई आयाम जोड़े। छायावाद के बारे उनकी समझ इसी साथ से साफ़ हुई। साथ यह भी कहना होगा कि निराला की समझ पर भी मार्क्सवादी रामविलास शर्मा का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा और छायावाद की सीमाओं के पार उन्होंने भारतीय जनता की वंचनाओं और पीड़ाओं के जो मार्मिक चित्र खींचे वैसा कोई अन्य छायावादी नहीं कर पाया। डॉ. रामविलास शर्मा

हिंदी के प्रखरतम आलोचकों में हैं, जिन्होंने न सिर्फ़ प्रगतिशील आलोचना बल्कि भाषा और समाज के क्षेत्र में उल्लेखनीय काम किया है।

तीन भागों में निराला की साहित्य साधना, प्रेमचन्द और उनका युग, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, प्रगति और परम्परा, भाषा, साहित्य और संस्कृति, भाषा और समाज आदि डॉ. शर्मा की प्रमुख कृतियां हैं। मृत्यु से पूर्व वे भारत की आर्य संस्कृति पर कुछ कार्य कर रहे थे जो कुछ टुकड़ों में प्रकाशित हुआ है। कुछ मार्क्सवादी आलोचकों ने इसी कार्य के कारण डॉ. शर्मा पर विचारधारा से विचलन का आक्षेप लगाया।

9.6 डॉ रामविलास शर्मा के आलोचना सिद्धान्त

डॉ. रामविलास शर्मा के आलोचना सम्बन्धी सिद्धान्तों अथवा बिन्दुओं को निम्नवत सूचीबद्ध किया जा सकता है -

1. डॉ. रामविलास शर्मा घोषित मार्क्सवादी हैं, अतः उनकी आलोचना पर मार्क्सवादी विचारधारा प्रभाव होना स्वाभाविक है।
2. मार्क्सवादी होने के बावजूद डॉ. शर्मा ने रससिद्धान्त पर अपनी मान्यता स्पष्ट की है। उन्होंने रस की अलौकिकता में काव्य को उलझाकर उसके सामाजिक कर्तव्य की ओर से आंखें फेरने वाली मनोवृत्ति को अनावृत किया है। साथ ही रस विवेचन में सब कुछ आचार्यों के ही हवाले कर देने की परम्परा से हटकर पाठकों को अपनी तरह से रसास्वाद लेने का अधिकार दिया है।
3. डॉ. रामविलास शर्मा ने साहित्य सामाजिक यथार्थ के चित्रण को सर्वोपरि माना है। इसी कारण उनका झुकाव कविता निराला और बाद में केदारनाथ अग्रवाल तथा कथासाहित्य में प्रेमचंद की ओर रहा।
4. डॉ. शर्मा के लिए साहित्य में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद एक कसौटी है। उनके अनुसार पुरानी जर्जर अमानवीय स्थितियों और सत्ता केन्द्रों से संघर्ष करते हुए शोषित तबके का उदय होता है, जिसे साहित्य में चित्रित किया जाना चाहिए।
5. डॉ. शर्मा उच्च आध्यात्मिक और सांस्कृतिक अर्थों का आभास देने वाली किंतु समाज में अमानवीय स्थितियों को बनाए रखने वाली छद्म शक्तियों की पहचान अपनी सैद्धान्तिक आलोचना में बड़ी गहराई से करते हैं।
6. डॉ. शर्मा परम्पराओं में सभी कुछ का परित्याग कर देने के पक्षधर नहीं हैं। उन्होंने **साहित्यःस्थायी मूल्य और मूल्यांकन** में लिखा है कि यह आवश्यक नहीं कि शोषक वर्ग ने जिन नैतिक अथवा कलात्मक मूल्यों को निर्माण किया है वे सभी शोषण मुक्त वर्ग के लिए अनुपयोगी हों.....प्राचीन साहित्य के मूल्यांकन में हमें मार्क्सवाद से यह

सहायता मिलती है कि हम उसकी विषयवस्तु और कलात्मक सौन्दर्य को ऐतिहासिक दृष्टि से देखकर उनका उचित मूल्यांकन कर सकते हैं।

7. डॉ. शर्मा की आलोचना की विशेषता है कि जहां एक ओर वे आधुनिक समाज के निमार्ण के स्वप्न को और उसकी जनपक्षधरता को स्पष्ट करते वहीं इस स्वप्न को हिंदी की जातीय परम्परा से जोड़ते भी हैं।
8. डॉ. शर्मा शायद पहले आलोचक हैं जिन्होंने अंग्रेजों द्वारा काउ बेल्ट कही जाने हिंदी पट्टी के लेखकों का गरिमा और गौरवपूर्ण संधान किया फिर चाहे वे प्रेमचन्द हों या निराला।
9. डॉ. शर्मा के हिंदी आलोचना में आगमन तक हिंदी साहित्य के आदि और मध्यकाल की गुत्थियां सुलझा लीं गई थी इसलिए उन्होंने अपने लेखन की शुरूआत में इन पर कुछ नहीं लिखा। वे आधुनिक युग की शिनाख़्त के आलोचक बने। बाद में वृद्धावस्था में उन्होंने कुछ ऐतिहासिक लेखन करने की कोशिश की जो विवादित रहा।
10. अब तक हमने आचार्य शुक्ल, आचार्य द्विवेदी, पं. नंददुलारे वाजपेयी ,डॉ. नगेन्द्र, डॉ. देवराज आदि की आलोचना से परिचय प्राप्त किया है और हम देख सकते हैं हिंदी में गद्य आलोचना कथालोचना एक तरह से उपेक्षित रही थी, वो भी तब जबकि प्रेमचन्द जैसा महान कथाकार परिदृश्य पर मौजूद था। डॉ. शर्मा ने यह काम बखूबी किया। प्रेमचन्द पर उनकी पुस्तक **'प्रेमचंद और उनका युग'** आज भी एक दस्तावेज़ है। गोदान को जब आलोचक कृषक जीवन के महाकाव्य में भटका रहे थे तब डॉ. शर्मा के मार्क्सवादी मन इस तथ्य को जाना कि गोदान भारत में शोषण के औज़ारों के बदलने की कथा है, भारत में पूंजीवाद के आगमन की कथा है। डॉ. शर्मा ने ही पहली बार हिंदी संसार को बताया कि प्रेमचन्द के पात्रों में हिंदू-मुस्लिम पात्रों की सामान्य आवाजाही है, जैसी कि वास्तविक समाज में। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी उल्लेख करते हैं कि प्रेमचन्द को डॉ. रामविलास शर्मा ने कबीर, तुलसी और भारतेन्दु की परम्परा से जोड़ा है। किसी आलोचक लिए यह एक बड़ा सैद्धान्तिक आयाम है।
11. कविता के क्षेत्र में डॉ. रामविलास शर्मा ने बहुत कार्य किया है। 1948 में उनकी पुस्तक 'निराला' प्रकाशित हुई थी। डॉ. शर्मा निराला के बहुत बड़े प्रशंसक थे। उन्होंने लिखा भी है कि अपने इस प्रिय कवि पर चारों ओर से घृणित आक्रमण न होते तो वे शायद हिंदी आलोचना के क्षेत्र में न उतरते। निराला छायावादी थे, डॉ. शर्मा अगली पीढ़ी के मार्क्सवादी लेकिन आम भारतीय जनता के मन और मर्म के स्तर कुछ था जो उन्हें जोड़ता था। आज़ादी के आसपास और बाद के निराला को देखिए तो प्रगतिवादी कवि हर कहीं नजर आयेगा।

12. निराला के बहाने डॉ. शर्मा हिंदी आलोचना के क्षेत्र में उतरे और सभी छायावादी कवियों का अध्ययन किया, जिनमें एक उनके प्रिय निराला भी थे। प्रिय और प्रशंसा जैसे पद यह भ्रम उत्पन्न करते हैं कि डॉ. शर्मा ने सर्वत्र निराला जयजयकार की होगी पर स्थिति बिल्कुल ऐसी नहीं है। नहीं भूलना चाहिए कि डॉ. शर्मा के भीतर का आलोचक मार्क्सवाद की सरणियों में अपना काम कर रहा है। उसके सामने घुटती-पिसती भारतीय जनता और उस जनता के लिए जो साहित्य लिखा जा रहा है वहीं उस युग का साहित्य है। छायावादियों में निराला को छोड़ बाकी कवि ऐसा नहीं कर पाए। निराला पर बंग्ला रहस्यभावना और अध्यात्म का गहरा रंग था, जिसे डॉ. शर्मा बार-बार इंगित करते रहे। निराला के जटिल व्यक्तित्व में से डॉ. शर्मा ने उस महान कवि को निकाला और हमारे सामने रखा, लेकिन किसी श्रद्धा के लिए नहीं, अपने समय के शोषण और दुश्चक्र को जानने के लिए। निराला उनके लिए प्रेम, सौन्दर्य और संघर्ष के कवि बने और उन्होंने निराला की कविताओं से सिद्ध करके दिखया कि निराला का सौन्दर्य ब्रह्मानन्द का सहचर है। डॉ. शर्मा कविता में आने वाली ध्वनियों के प्रति भी सचेत थे और उनके आधार पर कवि द्वारा बनाए लोक प्रवेश करते थे। यहां भी निराला की उनके अधिक सहायक हुए क्योंकि ध्वनियों और नाद का निराला से बड़ा कवि कोई नहीं। डॉ. शर्मा ने हिंदी में नई आ रही लम्बी कविताओं पर ध्यान एकाग्र किया, संयोग ही था कि इनमें से अधिकांश निराला की थीं।
13. डॉ. शर्मा मार्क्सवाद के अनुरूप ऐतिहासिक ज्ञान की आवश्यकता पर बल देते हैं और उन तथ्यों का विश्लेषण करते हैं जिनके कारण अतीत का साहित्य हमें भाता है।
14. डॉ. शर्मा ने साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र पर अपनी राय रखते हुए स्पष्ट किया है कि साहित्यिक सौन्दर्य विषय, भाव, विचार और व्यंजनाप्रणाली, इन सबके मिले-जुले रूप पर आधारित होता है।
15. साहित्य भाषा के विषय में डॉ. शर्मा का कथन है कि भाषा का आदर्श रूप वही है जो लोक-चेतना को वहन कर सके। उन्होंने व्यंग्य भी किया है कि जो अपने साज-सिंगार में व्यस्त रहेगा, वह औरों की बात क्या कहेगा? स्पष्ट है कि डॉ. शर्मा साहित्य की सर्वोपरि सामाजिक और उसके साथ सहज रूप से प्रस्फुटित होनेवाली भाषाशैली को साहित्यसौन्दर्य का स्रष्टा माना है।
16. डॉ. शर्मा मार्क्सवाद के अनुरूप शैली से अधिक विषयवस्तु को महत्व देते हैं। वे मानते हैं कि साहित्य का विषय सामाजिक हो, एकांतिक होने पर भी उसके गूढ़ सामाजिक आशय हों, जैसा निराला में है। साहित्य की जनजीवन से स्पष्ट सम्बद्धता हो। उनका कहना है कि कला में शक्ति केवल उसे मांजने से नहीं आती वरन् विषय की जीवन्तता से आती है। उन्होंने एक निबन्ध ही 'साहित्य में जनता का चित्रण' नाम से लिखा है,

जिसमें स्पष्ट किया है कि यह समझना कि जनता के जीवन को निकट से देखने से कवि का भावजगत धुंधला हो जाएगा या उसके अन्तःस्थल की कोमल वृत्तियों का सर्वनाश हो जाएगा, एक प्रवंचना भर ही है।

17. डॉ. शर्मा ने बहुत सारा काम व्यावहारिक समीक्षा के रूप में किया है। प्रेमचन्द और उनका युग, प्रेचन्द, भारतेंदु युग, निराला, रामचंद्र शुक्ल उनकी ऐसी स्वतंत्र पुस्तकें हैं। उन्होंने प्रसाद और वृंदावनलाल वर्मा की कृतियों पर समीक्षाएं लिखीं, जिनमें सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षा का अच्छा मेल मिलता है। डॉ. शर्मा ने शरतचंद्र, नज़रुल इस्लाम, शेली, टैगोर, बलभद्र दीक्षित, भूषण, आई.ए. रिचर्ड्स के आलोचना सिद्धान्त आदि निबन्ध भी लिखे, जिनसे उनकी प्रगतिशील आलोचकीय दृष्टि का पता चलता है।

बोध प्रश्न 1

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. प्रगतिवाद क्या है, संक्षेप में लिखिए।
2. प्रगति से क्या तात्पर्य है?
3. हिंदी साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन का आरम्भ कब और कैसे हुआ?
4. मार्क्सवाद में लेखक को उत्पादक किस प्रकार माना जाता है?
5. डॉ. रामविलास शर्मा का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

बोध प्रश्न 2 सही विकल्प चुनिए

1.डॉ. रामविलास शर्मा का जन्म किस सन में हुआ?

अ. 1912

ब. 1920

स. 1918

द. 1909

2.निम्न में से कौन आलोचक रामविलास शर्मा का समकालीन तथा सहधर्मी आलोचक है?

अ. शिवदान सिंह चौहान

ब. डॉ. नगेन्द्र

स. रामचंद्र शुक्ल

द. हजारप्रसाद द्विवेदी

3. प्रोग्रसिव राइटर्स एसोसिएसन का गठन कहां हुआ?

अ. रोम

ब. लंदन

स. पेरिस
द. न्यूयार्क
4.प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएसन का पहला अधिवेशन कब हुआ था?
अ. 1936
ब. 1935
स. 1940
द. 1941
5.प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएसन के पहले अधिवेशन की अध्यक्षता किसने की?
अ. ई.एम. फास्टर
ब. आई.ए. रिचर्डस
स. टी.एस. इलियट
द. इनमें से कोई नहीं
6.भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना कब हुई?
अ. 1934
ब. 1935
स. 1936
द. 1945
7.भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना में कि अंग्रेजी लेखक की भूमिका थी?
अ. वी.एस. नायपाल
ब. नीरद चौधुरी
स. मुल्कराज आनन्द
द. के. आर. नारायण
8.भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना में कि उर्दू लेखक की भूमिका थी?
अ. सआदत हसन मंटो
ब. सज्जाद जहीर
स. के आसिफ
द. कृष्ण चन्दर
9.प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन का सभापति कौन था?
अ. निराला
ब. रामविलास शर्मा
स. प्रेमचन्द
द. सुमित्रानन्दन पंत

बोध प्रश्न 3 निम्न कथनों में सत्य/असत्य का निर्धारण कीजिए

1. प्रगतिशील आलोचना राजनीतिक रूप से मार्क्सवाद से प्रेरित है ?
2. नागार्जुन प्रगतिशील कवि है ?
3. केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील कवि नहीं है?
4. प्रगतिशील आलोचना का विस्तार आज की आलोचना में है?

9.7 सारांश

हिंदी आलोचना में आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के बाद डॉ. रामविलास शर्मा सबसे आलोचक हैं जिन्हें उनकी सैद्धान्तिक-व्यावहारिक समीक्षा तथा विभिन्न विषयों पर लेखकीय प्रचुरता के कारण याद किया जाता है। वे अंग्रेजी के विद्वान थे और अध्यापक भी। वे पश्चिमी सिद्धान्तों को भी उनके मूल से जानते थे और भारतीय को भी। दो विश्वयुद्धों के बीच वे युवा हुए और उनका सम्पर्क मार्क्सवादी विचारधारा से हुआ। उन्हें प्रतीत हुआ कि भारत की जनता भी शोषण और अमानवीय जीवन-स्थितियों की उसी चक्की में पिस रही है, जिसे साम्राज्य और पूंजीवाद कहते हैं। यहां से उन्हें दिशा मिली। भारतेन्दु और महावीरप्रसाद द्विवेदी के युग में उन्होंने भारतीय नवजागरण देखा, जहां आम जनता आजादी और स्वाभिमान के लिए सचेत होती जा रही थी और अपनी भाषा और साहित्य के लिए भी। हम विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि रामविलास जी वे आलोचक हैं जिन्होंने प्रगतिशील आलोचना के लिए भूमि तैयार की। उनकी इतिहासदृष्टि भी विलक्षण थी, जो कबीर, तुलसी, रहीम, रसखान तक एक पूरी परम्परा को समाहित करती है। उदाहरण के लिए निराला की लम्बी कविताएं 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' का उनका किया विश्लेषण देखा जा सकता है। रामविलास जी तैयार की हुई विचारभूमि पर उनके तुरत बाद कई आलोचकों ने सार्थक सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना की। शिवदान सिंह चौहान तो उनके समकालीन ही रहे। फिर बच्चन सिंह, नामवर सिंह, मैनेजर पांडे आदि आज के बड़े आलोचक हैं। हालांकि जैसा कि पहले भी उल्लेख हुआ अपने अंतिम समय में डॉ. शर्मा आर्य संस्कृति की ओर कुछ कार्य करना चाहते थे जिसके कतिपय साम्प्रदायिक आशय भी रहे और उनके परवर्तियों का उनसे विरोध भी रहा। डॉ. शर्मा ने अस्तित्ववाद का जो आरोप मुक्तिबोध पर लगाया उसे डॉ. नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'कविता के नए प्रतिमान' में पूरी तरह ध्वस्त कर दिया। यह किसी आलोचक की सबसे बड़ी तार्किक हार कही जा सकती है। लेकिन अपने क़द में डॉ. रामविलास शर्मा अपने वक़्त के सबसे बड़े आलोचक कहे जाते हैं, जिन्होंने प्रचुर मात्रा में लेखन किया।

9.8 शब्दावली

विराट - विशाल, बड़ा

आडियोलोजी - विचारधारा
अनुपयोगी - जो उपयोगी न हो
ऐतिहासिक - इतिहास संबंधी
स्त्रष्टा - बनाने वाला सृजन करने वाला

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 2 के उत्तर

अ. 1912
अ. शिवदान सिंह चौहान
स. पेरिस
ब. 1935
अ. ई.एम. फास्टर
स. 1936
स. मुल्कराज आनन्द
ब. सज्जाद जहीर
स. प्रेमचन्द

बोध प्रश्न के 3 उत्तर

सत्य
सत्य
असत्य
सत्य

9.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. निराला की साहित्य साधना - भाग एक : रामविलास शर्मा
2. निराला की साहित्य साधना - भाग दो : रामविलास शर्मा
3. निराला की साहित्य साधना - भाग तीन : रामविलास शर्मा
4. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी - भाग एक: रामविलास शर्मा
5. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी - भाग दो: रामविलास शर्मा
6. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी - भाग तीन: रामविलास शर्मा
7. भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद - भाग एक: रामविलास शर्मा
8. भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद - भाग दो: रामविलास शर्मा

9. मार्क्स और पिछड़े हुए समाज -रामविलास शर्मा
10. भारत की भाषा समस्या -रामविलास शर्मा
11. भाषा और समाज -रामविलास शर्मा
12. आस्था और सौन्दर्य -रामविलास शर्मा
13. नई कविता और अस्तित्ववाद -रामविलास शर्मा
14. भारतीय साहित्य की भूमिका -रामविलास शर्मा
15. प्रेमचन्द और उनका युग -रामविलास शर्मा
16. आचार्य रातचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना -रामविलास शर्मा
17. भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं-रामविलास शर्मा
18. भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्पराएं -रामविलास शर्मा
19. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण-रामविलास शर्मा
20. ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा -रामविलास शर्मा
21. पाश्चात्य दर्शन और सामाजिक अन्तर्विरोध-रामविलास शर्मा
22. परम्परा का मूल्यांकन-रामविलास शर्मा
23. निराला -रामविलास शर्मा
24. प्रेमचन्द-रामविलास शर्मा
25. हिंदी आलोचना का विकास- नंदकिशोर नवल
26. हिंदी ओलोचना - विश्वनाथ त्रिपाठी
27. हिंदी समीक्षाः स्वरूप और संदर्भ - रामदरश मिश्र
28. हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी - निर्मला जैन
29. मार्क्सवादी, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आलोचना- पांडेय शशिभूषण शीतांशु
30. हिंदी आलोचनाः शिखरों का साक्षात्कार -रामचंद्र तिवारी

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

1 प्रगति शब्द का आशय स्पष्ट करते हुए प्रगतिवाद प्रकाश डालिए तथा डॉ. रामविलास शर्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दीजिए।

2. हिन्दी आलोचना के प्रमुख मार्क्सवादी आलोचना सिद्धान्तों पर विस्तृत लेख लिखिए साथ ही डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष पर प्रकाश डालिए।

3. प्रगतिशील आंदोलन का विस्तृत परिचय देते हुए उसके विकास क्रम को स्पष्ट कीजिए।

4. डॉ0 रामविलास का परिचय देते हुए उनकी आलोचात्मक विकास यात्रा पर निबंध लिखिए तथा प्रगतिशील हिन्दी आलोचना में डॉ0 शर्मा का अवदान स्पष्ट कीजिए।

इकाई 10 – डॉ. नामवर सिंह और हिंदी आलोचना

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 समकालीन हिंदी आलोचना
10.4 मार्क्सवादी आलोचना परम्परा
10.5 रचना और आलोचना के बदलते ढाँचे
10.6 डॉ. नामवर सिंह का व्यक्तित्व
10.7 डॉ. नामवर सिंह के आलोचना सिद्धान्त
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.12 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप समकालीन हिंदी आलोचना के उद्भव एवं विकास को समझ सकेंगे साथ ही समकालीन आलोचना के प्रमुख हस्ताक्षर डॉ. नामवर सिंह की आलोचनात्मक दृष्टि का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि -

- समकालीन हिंदी आलोचना क्या है?
- समकालीन हिंदी आलोचना की अलग अलग धाराएं क्या हैं?
- प्रमुख समकालीन आलोचक कौन है?
- समकालीन हिंदी आलोचना में डॉ. नामवर सिंह का व्यक्तित्व एवं महत्व क्या है?
- डॉ. नामवर सिंह के आलोचना सिद्धान्त क्या हैं?

10.3 समकालीन हिंदी आलोचना

समकालीन एक ऐसा पद है, जिसमें कम से कम तीन पीढ़ियां समाहित हो सकती हैं। तीन उम्रों के आलोचक। हिंदी आलोचना की समकालीनता भी कमोबेश ऐसी ही है। पहली पीढ़ी में नामवर सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, मैनेजर पांडेय, नंदकिशोर नवल, कमला प्रसाद और परमानंद श्रीवास्तव हैं। दूसरी पीढ़ी में पुरूषोत्तम अग्रवाल, सुधीश पचौरी, जीवन सिंह, वागीश शुक्ल, मदन सोनी आदि हैं। तीसरी पीढ़ी में प्रणय कृष्ण, कृष्णमोहन, आशुतोष कुमार, अनिल त्रिपाठी, ज्योतिष जोशी, पंकज चतुर्वेदी, व्योमेश शुक्ल आदि। इस पहली, दूसरी और तीसरी पीढ़ी में कुछ समकालीन कवि भी हैं, जिन्होने अत्यन्त समर्थ आलोचना लिखी है जिनमें चन्द्रकान्त देवताल, अशोक वाजपेयी, विष्णु खरे, राजेश जोशी, अरुण कमल, विष्णु नागर, विजय कुमार, मंगलेश डबराल, लीलाधर मंडलोई आदि नाम प्रमुख हैं।

समकालीन कविता की अंतर्धाराएं भी अलग अलग हैं। नामवर सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, मैनेजर पांडे, परमानन्द श्रीवास्तव समेत कई बाद तक के आलोचक प्रतिबद्ध मार्क्सवादी हैं। दूसरे छोर पर मार्क्सवाद का विरोध या उससे निस्पृहता है - रमेशचंद्र साह, अशोक वाजपेयी, वागीश शुक्ल, मदन सोनी, ज्योतिष जोशी आदि। नई पीढ़ी में सभी समर्थ आलोचक मार्क्सवादी हैं, जैसे प्रणय कृष्ण, आशुतोष कुमार, पंकज चतुर्वेदी, कृष्णमोहन आदि।

10.4 मार्क्सवादी आलोचना परम्परा

- जैसा कि पहले ही उल्लेख हुआ समकालीन आलोचक अधिकांशतः मार्क्सवादी अथवा वामपंथी हैं। प्रगतिशील आंदोलन की एक गहरी छाप उन पर है, जिसे उन्होंने अगली पीढ़ियों तक अपने श्रेष्ठतम रूप में बढ़ाया। मार्क्सवादी आलोचना की बात करें तो साफ़ तौर एक परम्परा का विकास हुआ है। डॉ. रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, नामवर सिंह, बच्चन सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, देवीशंकर अवस्थी, मैनेजर पांडे, मधुरेश, पुरुषोत्तम अग्रवाल, रामकृपाल पांडे, पांडेय शशिभूषण शीतांशु, रविभूषण, कुंवरपाल सिंह, परमानंद श्रीवास्तव, वीरन्द्र यादव और बीच की पीढ़ी के कवि आलोचक मुक्तिबोध, विष्णु खरे, चंद्रकांत देवताले, विजय कुमार, राजेश जोशी, अरुण कमल, मंगलेश डबराल, लीलाधर मंडलोई। नई पीढ़ी के प्रणय कृष्ण, कृष्णमोहन, पंकज चतुर्वेदी आदि। एक पूरी साठ साल की परम्परा है यह, जिसे हम मार्क्सवादी आलोचना कह रहे हैं। इसमें कुछ भीतरी रंग भी हैं, जैसे कवि विजेन्द्र और आलोचक जीवन सिंह का लोकराग के प्रति अतिरिक्त आग्रह।

10.5 रचना और आलोचना के बदलते ढाँचे

इन साठ सालों में रचनाओं ने अपने रंग और ढंग बदले है यानी उनके शिल्प-स्वरूप आदि में पर्याप्त फेरबदल हुआ है। इसी काल में तार सप्तक और प्रयोगवाद हुआ। इसी काल खंड में नई

कविता और नई कहानी आए। किसान आंदोलन हुए। नक्सलबाड़ी और श्रीकाकुलम हुआ। आपातकाल लगा। हिंदू-सिख साम्प्रदायिकता हुई। बाबरी मस्जिद ढहा दी गई। बम विस्फोट हुए - आतंकवाद बढ़ता ही गया। उधर देश की व्यापार और अर्थनीतियों में आमूलचूल परिवर्तन हो गया। नेहरू युग का समाजवाद अब ढह गया। भारत खुले बाज़ार का एक हिस्सा बन गया। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ आयीं। किसानों से ज़मीनें छीनी जाने लगीं। किसान आत्महत्याएं करने लगे। आज़ादी के बाद कितना कुछ हुआ इस देश में उसे संक्षिप्त रूप में लिखना भी दरअसल विस्तार ही होगा।

इन बदलावों के कारण सभी रचना विधाओं में विषयवस्तु और शिल्प में परिवर्तन हुआ। मार्क्सवादी आलोचना चूंकि सैद्धान्तिक आलोचना है इसलिए उस नई बदलावों को समझने की जिम्मेदारी सबसे अधिक थी।

नई कहानी से बात आरम्भ करें तो ये नई आज़ादी के बाद अब सपनों के बनने-टूटने का सिलसिला था। बनने का कम, टूटने का ज़्यादा। हिंदी आलोचना के सामने भी रचनाओं के बदलने का सवाल था। अब कहानी महज कहानी न कही जाकर नई कहानी कही जा रही थी और वह भी स्वयं कहानीकारों द्वारा। आलोचना को अपने सिद्धान्तों की कसौटी पर देखना था कि नया क्या है। नामवर सिंह ने शिल्प और अनूठे भाषा प्रयोग के लिए निर्मल वर्मा की परिन्दे कहानी को पहली नई कहानी का श्रेय दे दिया। नई कहानी के साथ आंचलिक कथाकार भी थे। आंचलिकता एक आन्दोलन हो चला था और उसके समर्थक भी काफी थे। मार्क्सवादी आलोचना को देखना था कि आंचलिक समाज जो कि सामन्ती समाज भी है किस तरह कथा-कहानी में आ रहा है।

कुछ कहानीकार प्रतिबद्ध मार्क्सवादी थे, उन्हें कैसे नया कहानीकार कहना है या उनमें क्या नया है, यह देखना भी मार्क्सवादी आलोचना के जिम्मे था। नामवर सिंह तो विचारधारा के लिए उस वक़्त इतने प्रतिबद्ध थे कि साहित्य छोड़ अपने ग्रामीण इलाके से सांसद का चुनाव लड़ने चले गए थे, जीत नहीं पाए, ये दीगर बात है और साहित्य के लिए अच्छी भी कि इस कारण इस भाषा को उसका इतना समर्थ आलोचक मिला। भैरवप्रसाद गुप्त के कहने पर उन्होंने कहानी की आलोचना श्रंखलाबद्ध ढंग से उनकी पत्रिका में की, जिसका बाद में **कहानीःनई कहानी** नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशन हुआ। कविता में प्रगतिवाद के विरुद्ध प्रयोगवाद का नारा था, जिसे अज्ञेय बड़ी सौम्यता से चला रहे थे। आगे चल कर नई कविता हो गया। लक्ष्मीकांत वर्मा एक लोहियावादी विद्धान हुए जिन्होंने नई कविता के प्रतिमान नामक पुस्तक लिखी, जिसमें क्षणवाद और लघुमानववाद की अस्तित्ववादी स्थापनाएं थी। इस पुस्तक के प्रतिकार रूप में कहें तो हमें नामवर सिंह की पुस्तक कविता के नए प्रतिमान मिली।

मुक्तिबोध महाराष्ट्रीय परिवेश के कवि थे जो फंतासी के शिल्प में ऐसी हिंदी कविताएं लिख रहे थे, जो हिंदी में विचार और भाषा दोनों में एक नया अनुभव था- हालांकि मुक्तिबोध के महत्व और महानता को हिंदी समाज ने उनकी मृत्यु के बाद स्वीकारा। डॉ. रामविलास शर्मा उन दिनों **नई**

कविता और अस्तित्ववाद लिख रहे थे। उन्हें मुक्तिबोध अस्तित्ववाद के निकटतम कवि लगे और अपनी प्रिय प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल से तुलना करते हुए उन्होंने मुक्तिबोध को नकारना आरम्भ किया। नामवर सिंह ने मुक्तिबोध के प्रतिबद्ध वामपंथी रूप को पहचाना, इसमें हरिशंकर परसाई और शमशेर भी उनके सहायक हुए। नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'कविता के नए प्रतिमान' मुक्तिबोध को ही समर्पित करते हुए यह भी स्वीकार किया है कविता के नए प्रतिमान के केंद्र में मुक्तिबोध हैं। नई कहानी और नई कविता दोनों अपने वक़्त पर अपने अवसान को समर्पित हुए। किसान आंदोलन और जमींदारों के अत्याचार ने श्रीकाकुलम और नक्सलबाड़ी को जन्म दिया। हिंदी संसार तब अकविता और अकहानी में कहीं उलझ रहा था। धूमिल, राजकमल चौधरी, केदारनाथ सिंह, लीलाधर जगूड़ी, चंद्रकांत देवताले, वेणुगोपाल, कुमार विकल, सौमित्र मोहन आदि कई कवि हिंदी कविता के फलक पर आए। उधर प्रगतिशील कविता के चारों कवि अपनी प्रतिभा के शिखर पर थे। उनकी रचनाएं लगातार आ रही थीं। कविता की इस प्रचुरता का सारा मूल्यांकन आलोचना में होना था। हिंदी आलोचना में अब दो विभाजन दिखने लगे थे। पहला स्पष्ट रूप से मार्क्सवादी था और प्रभावी भी, दूसरा कवि अशोक वाजपेयी के इर्दगिर्द पनप रहा था। यह नवआलोचक मार्क्सवादी रचना और आलोचना दोनों का निकट निरीक्षण अपने मानदंडों पर करते थे।

हिंदी कविता के समकालीन संसार में एक परम्परा आठवें दशक की पीढ़ी कहने की है, जिसमें आलोक धन्वा, वीरेन डंगवाल, अरुण कमल, मनमोहन, मंगलेश डबराल, असद ज़ैदी आदि आते हैं। ये सभी नक्सलबाड़ी आंदोलन की वैचारिकी से उत्पन्न कवि माने गए और इनकी आलोचना मार्क्सवादी सिद्धान्तों में सहूलियत के साथ हुई किंतु प्रतिपक्ष में इन पर कई प्रश्न भी उठाए गए।

10.6 डॉ. नामवर सिंह का व्यक्तित्व

नामवर सिंह का जन्म 28 जुलाई 1926 को बनारस जिले के जीयनपुर गांव में हुआ। एक सामान्य किसान परिवार में जन्मे नामवर सिंह ने प्राथमिक शिक्षा बनारस के देहाती स्कूलों में प्राप्त की फिर बनारस उदयप्रताप कालेज से इंटर किया। यहीं से लिखने का सिलसिला भी शुरू हुआ जो गद्य न होकर कविता में था।

पहली कविता इंटर करते हुए क्षत्रियमित्र नामक पत्रिका में छपी। 1949 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय से बी.ए. , 1951 में एम.ए. तथा वहीं से 1956 में पी-एच.डी. की। 1953 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय में व्याख्याता के पद पर अस्थाई नियुक्ति भी हुई। 1959 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रूप में चकिया-चन्दौली लोकसभा सीट पर चुनाव लड़ा और हारे। इसी वर्ष काशी हिंदू विश्वविद्यालय से भी कार्यमुक्त हुए। 1959-60 में म.प्र. के सागर विश्वविद्यालय में कुछ समय के लिए नियुक्ति रहे। विभागीय राजनीति के चलते पद छोड़कर 1960 से 65 तक बनारस में ही रहकर स्वतंत्र लेखन किया। 1965 में पार्टी के जनयुग साप्ताहिक में सम्पादक होकर दिल्ली आए। इसी के साथ राजकमल प्रकाशन

के साहित्यिक सलाहकार भी हुए और अब तक हैं। 1967 से राजकमल प्रकाशन की आलोचना पत्रिका सम्पादन। 1970 में जोधपुर विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष-प्रोफेसर के रूप में नियुक्त। 1974 में कुछ समय के लिए क.मा.मुं. हिंदी विद्यापीठ आगरा के निदेशक भी रहे और उसी साल जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केंद्र में हिंदी के प्रोफेसर नियुक्त हुए और 1987 में वहां से सेवानिवृत्त होने के बाद 5 वर्ष के लिए पुनः नियुक्त। 1993 से 96 तक राजा राममोहन राय लाइब्रेरी फाउंडेशन के अध्यक्ष रहे। फिलहाल महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय वर्धा के कुलाधिपति हैं। उनकी लिखी पुस्तकों की सूची निम्नवत है -

1. पृथ्वीराज रासो: भाषा और साहित्य
2. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां
3. कहानीः नई कहानी
4. हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान
5. काशी के नाम
6. आलोचक के मुख से
7. वाद विवाद संवाद
8. दूसरी परम्परा की खोज
9. कविता के नए प्रतिमान
10. इतिहास और आलोचना
11. छायावाद
12. ज़माने से दो-दो हाथ
13. हिंदी का गद्यपर्व
14. प्रेमचंद और भारतीय समाज
15. कविता की ज़मीन और ज़मीन की कविता

नामवर सिंह के इस संक्षिप्त जीवनवृत्त से पता लगता है कि उन्होंने हिंदी में कितने क्षेत्रों में कितना योगदान और कितना विपुल लेखन किया है।

1 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. समकालीनता क्या है?
2. नामवर सिंह ने रस सिद्धान्त के विषय में क्या कहा है?
3. नामवर सिंह ने छायावाद के विषय में क्या कहा है?
4. समकालीन आलोचकों के नाम लिखिए।

2 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

क .निम्न में से कौन समकालीन आलोचक नहीं है
अ. विश्वनाथ त्रिपाठी
ब. हजारी प्रसाद द्विवेदी
स. प्रियम अंकित
द. पंकज चतुर्वेदी
ख .निम्न में से कौन सा आलोचक मार्क्सवादी नहीं है
अ. विश्वनाथ त्रिपाठी
ब. अशोक वाजपेई
स. राजेश जोशी
द. इनमें से कोई नहीं

10.7 डॉ. नामवर सिंह के आलोचना सिद्धान्त

जैसा कि पहले भी स्पष्ट हुआ है कि नामवर सिंह एक राजनीतिक चेतना के व्यक्ति हैं। रामविलास शर्मा की तरह वे घोषित कम्युनिस्ट हैं। अतः नामवर सिंह आलोचना का प्रमुख एवं मूल सिद्धान्त तो मार्क्सवाद ही है। उसे कुछ बिन्दुओं में हम इस तरह देख सकते हैं।

1. नामवर सिंह वाद के विवादों को निरर्थक मानते हैं। उनकी विचारधारा मार्क्सवाद प्रेरित और प्रतिबद्ध है किंतु हिंदी में चल पड़े कई-कई वादों पर उनका अभिमत इस प्रकार है -हिंदी में साहित्यिक वादों एवं प्रवृत्तियों का परिचय अनेक पुस्तकों में सुलभ है। सर्वत्र वादों की संख्या गिनाने की होड़-सी लगी हुई है। बहुज्ञता प्रदर्शित करने के लिए जैसे सबसे खुला मैदान यही दिखाई पड़ रहा है। कोशिश यही है कि किसी पाश्चात्य वाद का नाम न छूट जाए। कुछ उत्साही तो अपनी मौलिक खोज प्रमाणित करने के लिए हर यूरोपीय वाद के लिए हिंदी में कुछ-न-कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत कर देते हैं। इस प्रकार हिंदी धड़ल्ले से अभिव्यंजनावाद, अतियथार्थवाद, अस्तित्ववाद, प्रतीकवाद, प्रभाववाद, बिम्बवाद, भविष्यवाद, समाजवादी यथार्थवाद आदि की चर्चा हो रही है, गोया ये सभी प्रवृत्तियां हिंदी साहित्य की हैं अथवा हिंदी में भी प्रचलित रही हैं। कहना न होगा कि ज्ञानवर्धन के इन उत्साही प्रयत्नों से आधुनिक हिंदी साहित्य की अपनी वास्तविक प्रकृति के बारे में भ्रम फैल रहा है।
2. नामवर सिंह ने आधुनिक साहित्य प्रवृत्तियाँ नामक पुस्तक लिखते हुए सिर्फ़ चार प्रवृत्तियों को मान्यता दी है - छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद।
3. नामवर सिंह के अनुसार छायावाद हिंदी के रोमांटिक उत्थान काव्यधारा है जो 1918 से 1936 तक प्रभावी रही और जिसमें प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी प्रमुख कवि हुए। नामवर सिंह के शब्दों में छायावाद सामान्य भावोच्छवास प्रेरित स्वछन्द

कल्पना वैभव की वह 'स्वछन्द प्रवृत्ति' है जो देश-काल-गत वैशिष्ट्य के साथ संसार की सभी जातियों के विभिन्न उत्थानशील युगों की आशा-आकांक्षा में निरन्तर व्यक्त होती रही। स्वच्छन्दता की उस सामान्य भाव-धारा की विशेष अभिव्यक्ति का नाम हिंदी साहित्य में छायावाद पड़ा।

4. नामवर सिंह की मानना है कि रहस्य-भावना प्राचीन है किन्तु रहस्यवाद नवीन। रहस्यवाद का सम्बन्ध कुछ भक्तिकाल से और कुछ छायावाद से है। नामवर सिंह उसे छायावाद से ही जोड़ते हैं -रहस्यवाद आधुनिक है और हिंदी में छायावादी काव्य आंदोलन से सम्बद्ध है।
5. प्रगतिवाद वह चिंतनधारा है जिससे नामवर सिंह के आलोचक का जन्म हुआ। 1958 के आसपास सैद्धान्तिक रूप से वे लिखते हैं कि प्रगतिवाद के इन बीस वर्षों का इतिहास साहित्य में स्वस्थ सामाजिकता, व्यापक भावभूमि और उच्च विचार के निरन्तर का विकास इतिहास है, जो केवल राजनीतिक जागरण से आरम्भ होकर क्रमशः जीवन की व्यापक समस्याओं की ओर, आदर्शवाद से आरम्भ होकर क्रमशः यथार्थवाद की ओर और यथार्थवाद अथवा नग्न यथार्थ से आरम्भ होकर क्रमशः स्वस्थ सामाजिक यथार्थवाद की ओर अग्रसर होता जा रहा है।
6. नामवर सिंह के सामने नई कविता का प्रश्न था। नई कविता के प्रतिमान नाम की एक समूची पुस्तक ही थी और नएपन के सायास आग्रह के साथ कवियों का समूह था। नामवर सिंह ने कविता के नए प्रतिमान की भूमिका के पहले वाक्य में स्पष्ट कर दिया है कि नए से उनका आशय क्या है- किसी काव्यकृति का कविता होने के साथ ही नई होना अभीष्ट है। वह नई हो और कविता न हो, यह स्थिति साहित्य में कभी स्वीकार्य नहीं हो सकती।
7. इससे पहले हमने रचना और आलोचना के बदलते ढंग की बात की। नामवर सिंह मानते हैं कि कविता जब नई होगी या नए ढंग पर लिखी जाएगी, उसके लिए नए प्रतिमानों की ज़रूरत होगी। यहां स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि नामवर सिंह मार्क्सवदी सिद्धान्तों हटने की बात नहीं कर रहे। मुक्तिबोध उनकी पुस्तक **कविता के नए प्रतिमान** के केन्द्र में है, अतः सोच तो वही मार्क्सवादी रहेगी पर अभिव्यक्ति का ढंग बदलेगा और उसे परखने वाले आलोचना के प्रतिमान या उपकरण बदलेंगे।
8. अपने पूर्ववर्ती हर समर्थ आलोचक की तरह नामवर सिंह भी रस सिद्धान्त पर अपना मंतव्य स्पष्ट करते हैं। उन्होंने रस के प्रतिमान की प्रसंगानुकूलता पर बात की है। दरअसल नामवर के साथ डॉ. नगेन्द्र भी आलोचना में सक्रिय थे और अपने समय के कवियों में रस निष्पत्ति खोज रहे थे। नामवर सिंह रस को नए रूप में देखना चाहते हैं। इस क्रम में नामवर सिंह रस की **गूढता** के बजाए कविता के आस्वाद पर बल देते

हैं। उन्हें लगता है कि समकालीन नए कवियों पर रस आरोपित करने से बेहतर है कि उनकी कविता में आस्वाद के तत्व खोजे जाएं।

9. नामवर सिंह ने एक अहम काम कथालोचक के सन्दर्भ में किया है जो 'कहानीःनई कहानी' नाम से उपलब्ध है। नई कहानी आंदोलन के दौरान तीन धाराएं थीं जो साफ़ अलग दिखती थीं। पहली शेखर जोशी और भीष्म साहनी जैसे मार्क्सवादियों की, दूसरी रेणु जैसे आंचलिकों की, तीसरी मोहन राकेश-राजेन्द्र यादव-कमलेश्वर की त्रयी और चौथी जिसमें शैलेश मटियानी और शानी जैसे कहानीकार थे। निर्मल वर्मा उस दौर के बड़े कथाकार थे और नामवर जी ने उनकी कहानी परिन्दे को पहली नई कहानी का खिताब दिया था हालांकि बाद में अपनी चूक मानते हुए उसे उन्होंने लौटा भी लिया। नामवर सिंह ने नए कहानीकारों पर महत्वपूर्ण लेख लिखे, जो समय के साथ दस्तावेज़ जैसे हो गए हैं।
10. नामवर सिंह के आलोचना में सक्रिय होने तक आलोचना में बहुत काम हो चुका था लेकिन तब भी लोग छायावादोत्तर कविता के मूल्यांकन में आ रही समस्या की बात करते थे। दरअसल पुराने खांचे टूटने से यह समस्या खड़ी हुई। छायावाद तक भी लोग रस, छन्द, अलंकार खोज लेते थे और बिम्ब-प्रतीक जैसे आधुनिक उपकरणों की झलक भी दिखा लेते थे पर नए कवियों जैसे मुक्तिबोध के साथ ये सब करना असम्भव था। इस पर नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक कविता के नए प्रतिमान में विस्तार से लिखा है।
11. नई कविता के समय में अचानक रामधारी सिंह दिनकर की पुस्तक 'उर्वशी' छप कर आयी। ये किताब परम्परागत छंद में थी और आलोचना नए रास्ते पर चल पड़ी थी। अपने शिल्प में यह किताब चालीस बरस पीछे थी अतः विषयवस्तु में ही कुछ बहस सम्भव थी। नामवर सिंह ने कल्पना में छपे उर्वशी विवाद पर कुछ पृष्ठ कविता के नए प्रतिमान में लिखे हैं। उन्होंने इसे पारम्परिक और आधुनिक जीवनमूल्यों का टकराव माना है।
12. उर्वशी के साथ ही यह हुआ कि कई आलोचकों ने छायावादी कृति कामायनी पर पुनर्विचार करने के प्रयत्न किए। इस पुनर्मूल्यांकन में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेवनारायण साही से लेकर मुक्तिबोध तक संलग्न रहे। मुक्तिबोध ने कामायनी को फैंटसी रूप में देखा-जाँचा-परखा और उसमें निहित जीवनमूल्यों की समीक्षा की। एकदम यही राह फिर नामवर सिंह ने मुक्तिबोध की कविता के सन्दर्भ में अपनायी।
13. नई कविता के सामने काव्यभाषा और सृजनशीलता का प्रश्न भी था। काव्यभाषा कैसी हो? गद्यभाषा से कितनी अलग हो या नहो? उसमें सृजनशीलता का पक्ष कैसे

मुखर हो - ये सब प्रश्न तब कि ही नहीं अब की कविता के भी हैं। इस विषय में नामवर सिंह ने विजयनारायण देव साही के कथन का सन्दर्भ लेते हुए कहा है कि कविता को बोलचाल भी भाषा के निकट लाने का अर्थ केवल बोलचाल के शब्दों को अपनाने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सही माने में आज के जीवन की धड़कन को व्यक्त करने वाली लय को गहरे तक पकड़ना है। काव्यभाषा की सृजनशीलता पर विचार करते हुए वे कहते हैं कि काव्यभाषा की सृजनशीलता को किसी एक नुस्खे अथवा कुछ नुस्खों में बांधना असम्भव है। भाषा, कवि से जिस सृजनशीलता की अपेक्षा रखती है, वहीं सृजनशीलता आलोचक के लिए भी आवश्यक है।

14. नामवर सिंह के आलोचना में पदार्पण के साथ ही काव्य बिम्ब और सपाटबयानी अथवा बिम्बविहीनता का प्रश्न भी उठने लगा था। अंग्रेजी में ये इमेज और नरेशन के सवाल थे। हिंदी आलोचक के सम्मुख इनका उठना लाज़िमी ही था खासकर तब जबकि नागार्जुन, अज्ञेय, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धूमिल, चन्द्रकांत देवताले, लीलाधर जगूड़ी, केदारनाथ सिंह आदि एक साथ रचनारत हों। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि कविता में अर्थग्रहण भर से काम नहीं चलता बिम्बग्रहण भी आवश्यक होता है। नई कविता अपने बुनियादी रूप में बिम्बधर्मी थी। नामवर सिंह ने कविता के नए प्रतिमान में इस बिम्बधर्मिता के कई सकारात्मक उदाहरण(नागार्जुन कृत अकाल और उसके बाद) प्रस्तुत करते हुए उसका समर्थन भी किया है, लेकिन फिर वे रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा और केदारनाथ सिंह की काव्यपंक्तियों का हवाला देते हुए सपाटबयानी तक आते हैं। उनके अनुसार कविता में सपाटबयानी का यह आग्रह वस्तुतः गद्य सुलभ जीवन्त वाक्य विन्यास को पुनःप्रतिष्ठित करने का प्रयास है, जिसके मार्ग में बिंबवादी रुझान निश्चित रूप से बाधक रहा। इसके बाद नामवर सिंह ने कविता के गद्य को सन्दर्भित करने के लिए त्रिलोचन का उदाहरण दिया - नई कविता के उत्कर्षकाल में भी प्रवाह-पतित होने का ख़तरा उठा कर एक कवि धारा के विरुद्ध वाक्य विन्यास की रक्षा के लिए आवाज़ बुलन्द करता रहा , लेकिन उसकी आवाज़ न तब सुनी गई न अब - वह कवि है 'धरती' और 'दिगंत' का रचनाकार त्रिलोचन। जाहिर नामवर सिंह बिम्ब और सपाटबयानी, दोनों ही प्रकरण में अतिवादी नहीं हैं। उनके लिए दोनों का मोल है बशर्ते वो कविता हो, फिर चाहे बिम्बवादी हो या सपाट। अपने इस सिद्धान्त को नामवर सिंह ने पिछले पचास साल से संजो कर रखा है।

15. कविता की संरचना कैसी हो, यह प्रकरण भी काफी विचार-विमर्श का विषय रहा है। नई कविता से पहले छायावाद में भी दो तरह की काव्य संरचना सामने थी -

प्रगीतात्मक और नाटकीय। प्रगति, प्रयोग और नए तक पग धरते ये दो संरचनात्मक रूप कमोबेश बने रहे और नामवर सिंह ने भी इन पर विस्तार विचार किया। छायावाद में महादेवी और पंत काफी प्रगीतात्मक थे, निराला और प्रसाद भी लेकिन नाटकीयता प्रसाद और सबसे अधिक निराला में है। प्रगतिशील कविता में वह बहुत है, सबसे ज्यादा नागार्जुन के यहां । प्रयोगवाद में खुद अज्ञेय के पास भी कम नहीं। मुक्तिबोध तो उसको फंतासी के स्तर पर ले गए हैं। डॉ. नामवर सिंह प्रगीतात्मकता को महत्व देते हुए भी मुक्तिबोध के हवाले से नाटकीयता को प्रधानता देते हैं।

16. विसंगति और विडम्बना के पद नई कविता के साथ आए और नामवर सिंह ने भी उन पर अपना मंतव्य रखा। वे मानते हैं कि जीवन में यदि विसंगतियां और विडम्बनाएं हैं तो कविता में उन्हें आना चाहिए। वे इसके लिए निराला, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, प्रभाकर माचवे आदि की कविताओं के सन्दर्भ ग्रहण करते हैं। इससे पहले हमने नाटकीयता का उल्लेख किया है, उसे तनिक नामवर जी के इस कथन के साथ जोड़कर देखा जाए -स्पष्ट है कि आज की विडम्बनापूर्ण स्थिति के सम्मुख नाटकीय काव्य के लिए अपार सम्भावनाएं हैं और नाटकीय रचनाएं ही इस स्थिति की चुनौती को अच्छी तरह स्वीकार भी कर सकती हैं।
17. कविता महज मनोरंजन नहीं। आधुनिक कविता तो हरगिज़ नहीं। आज की कविताओं में अनुभूति की जटिलता और तनाव का एक अनायास विन्यास स्पष्ट देखा जा सकता है। यह अनुभूति भी अब महज अनुभूति न कह कर प्रामाणिक अनुभूति कही जाती है। नामवर सिंह का सिद्धान्त स्पष्ट हैं। जटिलता और तनाव अर्थात द्वंद्वात्मकता जो मार्क्सवादी आलोचना का मूल है।

3 बोध प्रश्न- सही विकल्प चुनिए

क **. निम्न में से कवि ने अपनी कविता फंतासी का प्रयोग किया है**

अ. श्रीकांत वर्मा

ब. रघुवीर सहाय

स. मुक्तिबोध

द. चन्द्रकांत देवताले

ख निम्न कथनों में सत्य / असत्य का निर्धारण कीजिए

1. नामवर सिंह का जन्म बनारस के निकट भदोही ग्राम में हुआ था।
2. नामवर सिंह की पहली प्रकाशित रचना एक कविता थी
3. नामवर सिंह ने परिन्दे को पहली नई कहानी माना।
4. नामवर सिंह हिंदी अत्यधिक वादों के उल्लेख से सहमति नहीं रखते।
5. प्रणय कृष्ण समकालीन युवा आलोचक है।

घ लघु उत्तरीय प्रश्न

4. नामवर सिंह ने रहस्य-भावना के सम्बन्ध क्या विचार प्रकट किए?
5. नामवर सिंह के अनुसार प्रगतिशीलता क्या है?
6. नामवर सिंह ने उर्वशी-विवाद के सम्बन्ध में क्या मत प्रकट किया है?
7. मुक्तिबोध ने कामायनी को किस प्रकार का काव्य माना है?

10.8 सारांश

समकालीन आलोचना के इस विवेचन के बाद आप जान चुके हैं कि यह कितनी तरह जटिल चिंतनधाराओं का समुच्चय है। जैसा कि पहले भी उल्लेख हुआ इसकी प्रभावी धारा मार्क्सवाद ही रही। कई पुस्तकों पर व्यावहारिक समीक्षा होती रही, कभी मार्क्सवादी तो कभी मार्क्सवाद विरोधी, किन्तु ऐसी आलोचना उस तरह की हुई जिसे प्रभाववादी कहते हुए शुक्ल जी ने खारिज कर दिया था। समकालीनता में प्रचुरता भी है। कितने आलोचक, कितनी अलग-अलग पीढ़ियों के, एक साथ सक्रिय हैं। नामवर सिंह अभी हिंदी आलोचना के शिखर पुरुष कहे जाते हैं। उनके द्वारा बोला गया हर शब्द ध्यान से जाँचा-परखा जाता है। लिखने का क्रम नामवर सिंह कुछ सालों से नहीं निभा पा रहे किन्तु वे लगातार देशभर में विविध विषयों पर अद्भुत व्याख्यान दे रहे हैं, जिनका मोल सैद्धान्तिक आलोचना से कम नहीं। नामवर सिंह की इसी तरह की चार आलोचना पुस्तकें अभी छप कर आयी हैं और चार छपने वाली हैं।

10.9 शब्दावली

समकालीन - वर्तमान
आंचलिक - किसी विशेष भू-भाग से संबंधित
इर्दगिर्द - आस-पास
बहुज्ञता - बहुत जानना, विद्वान होना
अभीष्ट - जिसकी इच्छा हो वह वस्तु
सपाटबयानी - सीधी बात
फंतासी - फैंटेसी

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 2 के उत्तर

क -ब. अशोक वाजपेई
ख ब. हजारी प्रसाद द्विवेदी

बोध प्रश्न 3 के उत्तर - सही विकल्प चुनिए

क- स. मुक्तिबोध

ख - गलत
सही
सही
सही
सही

10.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नामवर संचयिता- नामवर सिंह
2. कृति विकृति संस्कृति - सत्यप्रकाश मिश्र
3. आलोचना से आगे- सुधीश पचौरी
4. हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी - निर्मला जैन
5. हिंदी आलोचना का विकास- नंदकिशोर नवल
6. हिंदी ओलोचना - विश्वनाथ त्रिपाठी
7. आलोचना की पहली किताब - विष्णु खरे

10.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. समकालीन आलोचना से आप क्या समझते हैं? समकालीन और शुक्ल जी आलोचना में अंत बताइए।
2. समकालीन शब्द का आपकी दृष्टि में क्या अर्थ है? समकालीन मार्क्सवादी आलोचना की परम्परा पर प्रकाश डालिए।
3. डॉ. नामवर सिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए तथा उनके प्रमुख आलोचना सिद्धान्त का विवेचन कीजिए

इकाई 11 : डॉ. मैनेजर पांडेय और हिंदी आलोचना

इकाई की रूपरेखा
11.1 उद्देश्य
11.2 प्रस्तावना
11.3 मैनेजर पांडेय : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
11.3.1 मैनेजर पांडेय : व्यक्तित्व
11.3.2 मैनेजर पांडेय : कृतित्व
11.4 मैनेजर पाण्डेय की आलोचना दृष्टि
11.5 मैनेजर पांडेय का महत्व
11.6 सारांश
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
11.10 सहायक पाठ्य सामग्री
11.11 निबंधात्मक प्रश्न

11.1उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के बाद आप :

- हिंदी आलोचना परंपरा में बदलते जीवन मूल्यों के संदर्भ में मार्क्सवादी समीक्षा के महत्त्व का निर्धारण करना समझ सकेंगे।
- मार्क्सवादी आलोचना में मैनेजर पांडेय द्वारा प्रतिष्ठापित मानदंडों का मूल्यांकन करना जान पाएंगे।
- आधुनिक विमर्शों को लेकर मैनेजर पांडेय के दृष्टिकोण का अध्ययन कर सकेंगे।
- अन्य समीक्षा पद्धतियों के प्रति मैनेजर पांडेय का दृष्टिकोण समझ सकेंगे।
- मैनेजर पांडेय के साहित्यिक कर्म का हिंदी साहित्य में महत्त्व निर्धारित कर सकेंगे।

11.2 प्रस्तावना

जब सभ्यता समीक्षा की संस्कृति को सूक्ष्मता से परखा जाता है तो उसमें जीवन के आरंभिक समय से ही आलोचना दृष्टि हमें परिलक्षित होती है। यही आलोचना दृष्टि आगे विभिन्न कलाओं, संगीत व साहित्यों के निर्माण का आधार बनती है। साहित्य भी जीवन की आलोचना ही है। वो भी ऐसी

आलोचना जो समग्रतः सम्पूर्ण मानव सभ्यता को गति देती है। ठीक यही प्रक्रिया साहित्य में भी परिघटित होती है। साहित्य की आलोचना साहित्य को निरंतर उन्नति, संशोधित व परिष्कृत करती है। आलोचना परम्परा की जड़ें बहुत गहरी हैं। हमारी आलोचकीय दृष्टि जीवन दृष्टि है बशर्ते सिर्फ उसे गुण-दोषों तक सीमित न रखा जाय। साहित्य की आलोचना ने न सिर्फ साहित्य के निरंतर समाजोन्मुखी बनाए रखा बल्कि समाज को भी साहित्य के प्रति संवेदित किया। आलोचना, साहित्य व समाज के बीच समय-समय पर तादात्म्य स्थापित करती रहती है। यही कारण है कि आलोचना सर्वदा महत्वपूर्ण रही है। हिन्दी आलोचना की परम्पराओं की जड़ें हमें भले ही संस्कृत साहित्य में दिखाई देती है किंतु आज यह एक हरे-भरे छायादार वृक्ष की तरह विकसित हो चुका है।

समकालीन आलोचना में मार्क्सवादी आलोचना पद्धति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है तथा प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने इसी पद्धति का अनुसरण करते हुए जहाँ एक ओर अपनी मार्क्सवादी पद्धति को ज्यादा प्रभावशाली तथा सामर्थ्यवान बनाया हैं वहीं हिन्दी आलोचना परम्परा में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

11.3 मैनेजर पांडेय : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

11.3.1 मैनेजर पांडेय व्यक्तित्व

मैनेजर पाण्डेय का जन्म बिहार के लोहटी गांव में हुआ था । जो जिला गोपालगंज में पड़ता है। 23 सितंबर 1941 को श्रीमती लखपति देवी व श्री ब्रह्मदेव पाण्डेय के घर एक बालक जन्मा जो आज प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक मैनेजर पाण्डेय के नाम से जाने जाते हैं। तत्कालीन समाज में शिक्षा-दीक्षा को लेकर भयंकर उदासीनता थी। मैनेजर पाण्डेय के माता-पिता भी शिक्षित नहीं थे किंतु उन्होंने अपने पुत्र को शिक्षा देने का प्रयास किया। मैनेजर पाण्डेय की प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा गांव में ही हुई तथा हाई स्कूल की परीक्षा जी. ए. हाईस्कूल कटैया से पास किया । हाईस्कूल में अध्ययन करने के दौरान उन्हें कई तरह की मुश्किलों का सामना करना पड़ा क्योंकि वह स्कूल उनके गांव से लगभग 7 से 8 किलोमीटर दूर था। तब ना तो कोई साधन की सुविधा थी ना ही किसी अन्य तरह की सहूलियत। हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास किया। इसके आगे की शिक्षा के लिए उन्हें बनारस आना पड़ा। साहित्य में रूचि के संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय को दो नाम याद आते हैं स्कूल के अध्यापक शेख वाजिद व हाईस्कूल के शिक्षक लक्ष्मण पाठक 'प्रदीप'। इन्हीं की प्रेरणा से मैनेजर पाण्डेय का झुकाव साहित्य की तरफ हुआ।

आप उच्च शिक्षा के लिए बनारस आ चुके थे और उन्होंने 1961 में इंटरमीडियेट तथा 1963 में स्नातक की परीक्षा डीएवी डिग्री कॉलेज वाराणसी से पास किया। तत्पश्चात बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में 1965 में परास्नातक में प्रवेश किया। 1968 ई. में जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के निर्देशन में 'सूर का

काव्यः परंपरा और प्रतिभा' पर अपनी पीएचडी पूरी की। स्नातक अवधि में डीएवी कॉलेज में पढ़ते हुए वह विश्वनाथ राय जी के संपर्क में आए, जो गांधीवादी थे और सर्वोदय में सक्रिय थे। यही कारण है कि मैनेजर पाण्डेय पूरे स्नातक काल तक सर्वोदय से जुड़े रहे। मार्क्सवादी चिंतन से जुड़ाव उनका बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में आने के उपरांत हुआ। जहाँ बीएचयू में छात्र राजनीति के दौरान कई बार पुलिस के बर्बर प्रहारों को भी झेला। छात्र आंदोलन के साथ-साथ आलोचनात्मक लेखन भी प्रारंभ किया। उनके लेख शांतिनिकेतन से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'विश्वभारती तथा 'प्रज्ञा' पत्रिका में प्रकाशित हुए।

अपना शोधकार्य पूर्ण करने के अगले ही वर्ष 1969 में उन्हें बरेली कॉलेज, बरेली में नौकरी मिल गई। मैनेजर पाण्डेय ने अपना अध्यापन कार्य यहीं से प्रारंभ किया। तभी सितंबर 1970 में जोधपुर विश्वविद्यालय के लिए भी साक्षात्कार दिया। 1971 में जोधपुर विश्वविघालय में लेक्चरर पद पर ज्वाइन किया जहाँ पर पहले से ही प्रोफेसर के पद पर नामवर सिंह भी नियुक्त थे। मैनेजर पाण्डेय ने लगभग 6 वर्ष यहाँ अध्यापनकार्य को कुशलता पूर्वक किया। मैनेजर पाण्डेय ने व्यवस्थित ढंग से अपना आलोचना-कर्म जोधपुर विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करते हुए शुरू किया था। फलतः 'शब्द और कर्म' तथा 'साहित्य और इतिहास दृष्टि' के ज्यादातर लेख इसी समय प्रकाशित हुए थे, जिनका क्रमबद्ध प्रकाशन नामवर सिंह ने अपनी पत्रिका 'आलोचना' में किया था। ये लेख ही मैनेजर पाण्डेय की अलोचकीय पहचान बने। मार्च 1977 में मैनेजर पाण्डेय जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय दिल्ली के भारतीय भाषा केंद्र में बतौर असिस्टेंट प्रोफेसर नियुक्त हुए और जे. एन. यू. ही आखिर तक उनकी कर्म स्थली बनी रही। मैनेजर पाण्डेय यहाँ से 2006 में सेवानिवृत्त हुए। 6 नवंबर 2022 को दिल्ली मे अपनी अंतिम साँसे ली।

11.3.2 मैनेजर पांडेय : कृतित्व

मैनेजर पाण्डेय का हिंदी आलोचना में आगमन सत्तर के दशक के आरम्भ में हुआ। उनका पहला आलोचनात्मक लेख 'भक्तिकाव्य की लोकधर्मिता' (1968) प्रकाशित हुआ। मैनेजर पाण्डेय की ख्याति एक प्रखर आलोचक की रही। अपने युग की सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों का गहरा असर उनकी आलोचना में परिलक्षित होता है। मैनेजर पाण्डेय जी की उल्लेखनीय पुस्तकें हैं -

1. शब्द और कर्म (1981),
2. साहित्य और इतिहास दृष्टि (1981),
3. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य (1982),
4. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका (1989),
5. आलोचना की सामाजिकता (2005),
6. हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान

7. आलोचना में सहमति-असहमति
8. उपन्यास और लोकतंत्र
9. भारतीय समाज में प्रतिरोध की परम्परा
10. शब्द और साधना
11. दारा शुकोह : संगम संस्कृति का साधक

इनके अलावा उन्होंने **पुस्तकों का सम्पादन** भी किया है जिनमें-

1. मुक्ति की पुकार (1996),
2. सीवान की कविता (1998),
3. कुमार विकल की कविताएँ (1999),
4. अनभै साँचा (2002)
5. देश की बात (2005),
6. माधवराव सप्रे: प्रतिनिधि संकलन (2009),
7. नागार्जुन: चयनित कविताएँ (2011),
8. सूर संचयिता (2012),
9. पराधीनों की विजय यात्रा हैं
10. 'संकट के बावजूद' (1998),
11. मैनेजर पाण्डेय: संकलित निबंध (2008)
12. मुगल बादशाहों की हिन्दी कविता
13. लोकगीतों और गीतों में 1857

मैनेजर पाण्डेय के **चार साक्षात्कारों की पुस्तकें** भी प्रकाशित हुई-

1. मेरे साक्षात्कार (1998)
2. मै भी मुँह में जबान रखता हूँ (2005)
3. संवाद परिसंवाद (2013)
4. बतकही

11.4 मैनेजर पांडेय की आलोचना दृष्टि

'हिन्दी आलोचना' साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विधा के रूप में उभर कर आई है। इस विधा की रचनात्मकता को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है। कुछ विद्वान इसे रचनानुगामी मानते हैं तो कुछ रचना के समकक्ष। आलोचना की सृजनात्मक क्षमता को लेकर के हमेशा से संदेह व्यक्त किया गया हैं किंतु वर्तमान समय में हम आलोचना को जिस अवस्था में पाते हैं उसमें कही भी वह गौण विधा के रूप में देखने को नहीं मिलती। आलोचना के महत्व को स्पष्ट करने के लिए हमें आलोचना के मूल में जाना पडेगा जिसमें की आलोचना के उद्भव व विकास से बात शुरू होती है। संस्कृत साहित्य में भी

आलोचना एक प्रमुख विधा के रूप में पाई जाती है, फिर चाहे राजशेखर रहे हों या आम सभी का महत्वपूर्ण स्थान है। दण्ड जैसे रचनाकार आलोचक जिन्होंने सृजन के दोनों पक्ष कविता और आलोचना, दोनों पर काम किया। यह आलोचना के महत्व को ही स्थापित करता है। हर साहित्यकार भले ही वह आलोचना से इतर अन्य विधा पर लेखनी चलाया हो वह स्वभावतः आलोचक ही होता है फर्क सिर्फ इतना है कि उसके रचना के केन्द्र में प्रत्यक्षतः समाज का मूल्यांकन ही होता है तथा आलोचना के केन्द्र में वह साहित्य होता है जो समाज का मूल्यांकन करता है।

हिन्दी आलोचना का विकास संस्कृत काव्यशास्त्र से ही होता है किंतु वह संस्कृत काव्यशास्त्रीय अनुशासनों से हमेशा मुक्त रही है। बदलते सामाजिक परिस्थितियों और परिवेश के अनुसार जैसे-जैसे हिन्दी समाज और उसकी भाषा में परिवर्तन आया वैसे-वैसे साहित्य भी बदला है। फलस्वरूप हिन्दी आलोचना भी नए कलेवर में दिखाई पड़ती है। द्वितीय अध्याय में हिन्दी आलोचना परम्परा की विकास यात्रा को इसी दृष्टि से देखा गया है। बदलते जीवन मूल्यों व संघर्षो के साथ हिन्दी आलोचना परम्परा के मानकों के निर्माण की आवश्यकता व प्रासंगिकता अपने महत्व को स्थापित करती है।

भक्ति आन्दोलन और सूरदास के काव्य - पर मैनेजर पाण्डेय ने जो विचार किया है तथा अपनी आलोचना के माध्यम से भक्ति काव्य और सूरदास की कविता को देखने की जो मौलिक दृष्टि दी है वह हिन्दी साहित्य के आलोचना के क्षेत्र में किसी उपलब्धि से कम नही है। मैनेजर पाण्डेय भक्ति काल को 'सामंती संस्कृति के विरूद्ध जनसंस्कृति के उत्थान का अखिल भारतीय आन्दोलन' मानते हैं। मैनेजर पाण्डेय की भक्तिकालीन आन्दोलन की यह अवधारणा परिवर्ती आलोचकों से भिन्न और नवीन है। मैनेजर पाण्डेय की आलोचना में उनकी समाजशास्त्रीय दृष्टि हमेशा पाई जाती है। वो जिस काल की कविता पर बात करते हैं उस काल की सामाजिक संरचना, जातीय गठन, सांस्कृतिक पक्ष व भाषाई चेतना आदि पर अनिवार्य रूप से विचार करते हैं। मैनेजर पाण्डेय भक्ति आंदोलन को सामंतीय संस्कृति के विरूद्ध बताते हैं। हमे यह गौर करना होगा कि यह वह समय था जब मुस्लिम शासकों का स्थाई रूप से आधिपत्य हो चुका था। मुस्लिम राज सत्ताधारी सामंतीय-व्यवस्था के सहयोग से विजित प्रदेशों में शासन-व्यवस्था संचालित कर रहे थे। आम जनमानस इन्ही सामंतीय या मनसबदारों के शासन के अधीन जीवन गुजार रहे थे, समाज में शोषण के रूप में यह तन्त्र फैल चुका था। भक्ति काल में जो कवि सामने आये वह चाहे कबीर, तुलसी, सूर, कुंभनदास, रैदास, सहजो बाई, दादू दयाल, आदि कवि समाज के सबसे निचले तबके से आये हुए कवि हैं, इनमे से कई शूद्र घोषित किये जाने वाली जातियों से सम्बन्ध रखने वाले थे। इनके काव्य कर्म को देखें तो स्पष्ट पता लगता है कि यह मुखर रूप से सामन्तीय व्यवस्था का विरोध कर रहे थे। मैनेजर पाण्डेय अपनी आलोचना में इन तमाम निचले तबके से आये कवियों की उपस्थिति व उनके स्वर को सामंतवाद के विरोध में देखते हैं। मैनेजर पाण्डेय मीराबाई की सामंती व्यवस्था के विरोध में ही पहचान करते हैं। 'भक्ति काव्य और मैनेजर

पाण्डेय की आलोचना दृष्टि' लेख में अभिषेक रौशन लिखते हैं कि ''मैनेजर पाण्डेय मीरा की कविता को स्त्री की स्वाधीनता, उसके विद्रोह की अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं।''

मैनेजर पाण्डेय साहित्य की दृष्टि से इस काल को सामाजिक व सांस्कृतिक उत्थान का काल कहते हैं क्योंकि इस काल में साहित्य रचना करने वाले कवि भिन्न भिन्न क्षेत्रों से आते थे। जितना हस्तक्षेप पुरूष कवियों का था, उतना ही स्त्री कवयित्री का भी, यदि सवर्ण कवि थे तो दलित कवि भी। हिन्दू कवियों के साथ-साथ मुस्लिम कवियों का भी योगदान बराबर देखने को मिलता है। हिन्दी साहित्य में ऐसा अद्भुत समवेत स्वर सिर्फ भक्तिकालीन काव्य में ही देखने को मिलता। इसीलिए मैनेजर पाण्डेय इस काल के सामाजिक, सांस्कृतिक, विचारधारात्मक और कलात्मक स्वरूप का मूल्यांकन करते हुए इसे सांस्कृतिक चेतना के उत्थान से जोड़ते हैं।

मैनेजर पाण्डेय सांस्कृतिक चेतना के उत्थान पर बात करते हुए दो-तीन बिन्दुओं की ओर ध्यानाकर्षित कराते हैं। पहला तो यह कि वो संस्कृत, पाली, प्राकृत के अभिजात्य वर्गीय साहित्य के बरक्स इस काल में लोकजीवन से निर्मित होने वाले अनुभवों को काव्य का केन्द्रीय विषय बनाने पर बल देते हैं। उनका मानना है कि इस काल में जो कविता रची गई उसके केन्द्र में निपट सामाजिक यथार्थ की सीधी प्रस्तुति देखने को मिलती है। लोक संघर्ष का चित्रण, विसंगतियों पर कटाक्ष तथा तमाम आडम्बरों पर मुखर विरोध इस काल की कविता में प्रमुखता से देखने को मिलता है। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि लोक जीवनानुभवों की प्रस्तुति लोकभाषा में ही की गई है जो सीधे आम जनमानस से गहराई से जुड़ी है और अपना व्यापक प्रभाव भी छोड़ती है। इस काल की कविता बोलचाल की भाषा में लिखी गई कविता है। किसी ने अवधी भाषा में कविता कर्म किया तो किसी ने ब्रज भाषा में। राजस्थानी क्षेत्र में डिंगल-पिंगल भाषा का प्रयोग हुआ। नामदेव मराठी भाषा में लिख रहे थे तो विद्यापति मैथिली को अपनी काव्यभाषा बनाते हैं। हमें तमाम क्षेत्रीय भाषाओं का स्वरूप इसी काल की कविता में देखने को मिलता है। मैनेजर पाण्डेय इसके बड़े निहितार्थ निकालते हैं। एक तरफ जहाँ इसे अभिजात्यीय वर्ग की भाषा के प्रतिपक्ष के रूप में देखते हैं वहीं दूसरी तरफ इसे सामान्तीय विरोध के रूप में भी उद्घाटित करते हैं।

सूर के काव्य में किसान जीवन - मैनेजर पाण्डेय भक्ति कालीन कविता में बात करते हुए सूरदास की कविता पर भी बात करते हैं तथा सूर की कविता को नई दृष्टि से देखने पर जोर देते हैं। मैनेजर पाण्डेय द्वारा सूर की कविता में किसान जीवन की खोज तथा सूर के काव्य को सामाजिक यथार्थ से सम्पृक्त काव्य मानने और उसे स्थापित, करने का जो कार्य किया है वह हिन्दी साहित्य के लिए उपलब्धि स्वरूप ही है। अभी तक सूर के काव्य को सिर्फ 'भक्ति और वात्सल्य प्रेम' की विशेषताओं से युक्त माना जाता था। यह भी माना जाता था कि सूर के काव्य में समाज और उसके विभिन्न अंगों पर प्रकाश नहीं डाला गया। मैनेजर पाण्डेय सूर के काव्य में किसान जीवन के बिम्बों के बहाने तत्कालीन

लोकजीवन के विभिन्न पक्षों जैसे पशु चारण, खेती, किसानी सामन्तीय शोषण, गाँव व शहर के द्वन्द्व, तत्कालीन राजनीति आदि की खोज करते हुए सूर की कविता को वात्सल्य और भक्ति से बाहर लाते हुए विस्तृत आयामों में रखते हैं। वह जोर देकर अपनी बात कहते हैं कि सूर की कविता लोक और शास्त्र के बन्धनों से मुक्त होते हुए समाज का अति सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत करती है। सूरदास जिस समय में यह कविता लिख रहे है वह 15 वीं 16 वीं सदी का समय है न कि कोई प्राचीन प्रागौतिहासिक पशुचारण का समय, जिसमें पशुचारण ही जीवन का एकमात्र आधार होता है। यह वह समय है जबकि खेती और पशुपालन दोनों एक दूसरे के पूरक के रूप में मौजूद थे आज भी कमोवेश यही अवस्था वर्तमान है हर किसान थोड़ा बहुत पशुपालन अवश्य करता है यदि हम कृषि के वैज्ञानिक दृष्टिकोण अथवा आर्थिक दृष्टिकोण से भी देखें तो दोनों एक दूसरे पर परस्पर निर्भर रहने वाले पेशे हैं। सूर की तत्कालीन सामाजिक स्थिति में कृषि कार्य और पशुपालन में अन्योन्याश्र सम्बन्ध या ऐसे यह कहना कि सूर केवल पशुपालकों के कवि थे और उनकी कविता में कृषि के चित्र नही हैं अथवा वह कृषक जीवन की सम्वेदना और दुःख से परिचित नहीं थे यह ठीक नही होगा। सूर के काव्य में कृषि के अनेक चित्र, कृषि की प्रक्रिया से सम्बन्धित अनेक रूपक आयें हैं जिनका ज्ञान बिना कृषि प्रक्रिया में गहन रूप से जुड़े बिना असम्भव है। सूरदास का निम्नपद खेती की प्रक्रिया का कितना यथार्थ रूपक उपस्थित करता है-

प्रभू जू यौं कीन्ही हम खेती
बंजर भूमि गाऊं हर जोते, अरू जेती की तेती।
काम क्रोध दोउ बैल बली मिलि, राज तामस सबे कीन्हौं।
अति कुबुद्धि मन हांकनहारे, माया जूआ दीन्हौं।
इन्द्रिय मूल किसान, महातृन अग्रज बीज बई।
जन्म जन्म को विषय वासना, उपजत लता नई।
कीजै कृपादष्टि की बरखा, जन की जाति लुनाई।
सूरदास के प्रभु सौ करियें, होईन कान कटाई।

रवि भूषण के अनुसार "रामचन्द्र शुक्ल और रामविलास शर्मा ने सूरसागर में पशुचारण काव्य की प्रवृत्ति देखी थी, पाण्डेय जी ने गौचारण प्रसंग का किसान जीवन से सम्बन्ध देखा वे सूर के काव्य को अपने समय और समाज से जुड़ा मानते हैं और सूरसागर के गोचारण के गीतो को चारागाह संस्कृति की कविता या आदिम गोचारण काव्य समझना गलत मानते हैं। कई उदाहरणों के माध्यम से वह समझाते हैं कि सूर का किसान जीवन से तदात्म्य था। "उन्हे खेती से जुड़ी हर छोटी बड़ी बात का आत्मीय ज्ञान था।"

सूरदास उस प्रक्रिया का भी वर्णन करते हैं जब किसान अपने ऊँचे नीचे खेत को पाटकर सम करता है "सूर खालकिन पाटत" तथा सूरदास को यह भी भलीभाॅति मालूम है कि कुछ फसलों को अधिक

पानी चाहिए तथा कुछ पानी की अधिकता से नष्ट हो जाते हैं इसलिए उन्हंे एक साथ उपजाया ही नहीं जा सकता है "सूरदास तीनांे न हि उपजत, धनिया, धान कुम्हाडे"। जिस तरह से तुलसीदास ने खेती निराई का जिक्र किया है उसी प्रकार सूरदास ने भी अपने काव्य में कृषि में निराई की पूरी प्रक्रिया का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त पशुपालन में जो लोग लगे हैं अथवा जो भी ग्रामीण परिवेश से सम्बन्धित हैं उन्हें अवश्य पता होता है कि गाँव के लोग जानवरों के साथ साथ वृक्षों तक का नामकरण कर देते हैं तथा उनसे उनका एक भावात्मक लगाव होता है सूरदास ने भी विभिन्न गायों का नाम दिया है -

अपनी अपनी गाई ग्वाल सब, आनि करौ इक ठौरी।
धोरि, धूमरि, राती, रौधी, बुलाई चिन्हौरी,
पियरी, मौरी, गोरी, गैनी,खैरी, कजरी, जेती
दुलही, फुलही, भौंरी, भूरि हांकि ठिकाई तेती।

मैनेजर पाण्डेय कहते हैं गायो के नाम रूप और स्वभाव का यह वर्णन उन लोगो को विचित्र लगेगा जो डेयरी का दूध पीकर जवान हुए हैं लेकिन गाँव वालो के लिए आज भी गायों के ये नाम सहज और आत्मीय हैं। किसानों के जीवन के बारे में आज भी वह एक बात विद्यमान है जो नहीं बदली है वह है उनकी गरीबी, जो तब था वह आज भी जस का तस का है आज भी किसान अपनी जमीन पर खेती के लिए महाजन से सूद पर पैसे उधार लेता है तब भी लेता था तब भी वह ब्याज सुरसा के मुँह की तरह बढ़ता जाता था आज भी वह ब्याज वैसे ही बढ़ता जाता है। लाख चुकाने पर भी वह न तब खत्म होता था न ही अब, सूरदास अपने समय के समाज की इस दारूण व्यथा कथा से पूरी तरह परिचित थे इस मार्मिक व्यथा का कितना दारूण रूपक सूर की कविता में आता है-

अधिकारी जम लेखा मांगे, तातै हौं आधीनौ।
घर मैं गथ नहि भजन तिहारौ, जौन दिय मैं छूटौं।
धर्म जमानत मिल्यौ न चाहै, तातैं ठाकुर लूटौ।
अंहकार पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही।
लागै धरम, बतावै अधरम, बाकी सबै रही।

जिन लोगों ने भी अपने जीवन में ब्याज पर कर्ज लिया है वह अवश्य ही ब्याज चुकाने की वेदना से परिचित होगा गोपिकाओं के प्रसंग में सूरदास कहते है-

सवै कूर मोसो ऋण चाहत, कहौ कहा तिन दीजै।
बिनादिये दुःख देत दयानिधि, कहौ कौन विधि कीजै।

या फिर 'सूरमूर अक्रूर लै गयों, ब्याज निवेरत ऊधो। इतना ही नहीं पुरोहितों ने ब्याज की व्यवस्था को धर्म के साथ जोडकर धर्म और ब्याज का जो गठबंधन बना लिया था उस पर भी सूरदास की नजर है वह उसका भी बड़ी ही लाक्षणिक वर्णन अपनी कविता में करते हैं ।

मुकरिंजाई, कै दीनवचन सुनि, जमपुर बौधिं पठावै।
लेखौ करतलाखही, निकसत, को गनि सकत अपार।
सूरदास ने अपने समय के सामन्ती समाज का यर्थाथ चित्र खींचा है उसे ठाकुर, कोतवाल, पटवारी सबकें चरित्रों का निर्भय होकर वर्णन किया है-
मोहरिल पाँच साथ करि दीने - तिनकी बड़ी विपरीत।
मैनेजर पाण्डेय जब सूर की कविता पर नई दृष्टि से मूल्यांकन करते हैं तो सिर्फ बयानबाजी नहीं करते बल्कि सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए अपने तर्को की पुष्टि में तथ्य भी प्रस्तुत करते हैं वह सूर की कविताओं मे से उन अनेक काव्य पंक्तियों को उदधृत करते हैं जिससे मैनेजर पाण्डेय के तर्कों को खारिज करना या झुठलाना मुश्किल हो जाता है। मैनेजर पाण्डेय में एक खास बात यह देखने को मिलती है कि वह सूर के काव्य को लेकर अपने पूर्ववर्ती मार्क्सवादी चिंतन के तरीकों पर भी सवाल उठाते हैं और मानते हैं कि प्रारम्भिक प्रगतिशील आलोचना 'गहरे पानी पैठ' में नहीं जाती थी बल्कि वह सीधे-सीधे प्रत्यक्ष सामाजिक यथार्थ की खोज करती थी और सूर के काव्य में सामाजिक चिंता विशिष्ट बुनावट में अंतर्निहित थी। यही वजह रही कि उनके काव्य पर इस दृष्टि से बात नहीं हो सकी। मैनेजर पाण्डेय इसी कमी को पूरा करते हुए प्रगतिशील आलोचना को और विकसित करते हैं और सूरदास के विषय में नाभादास की उस उक्ति से सहमति जताते हंै, जिसमें नाभादास सूरदास को कवियों का कवि कहते हैं। भक्ति कालीन कविता और सूरदास की कविता में किसान जीवन की खोज हिन्दी साहित्य के लिए एक उपलब्धि है। मैनेजर पाण्डेय सूर की कविता को नई दृष्टि देते हैं उनकी इस दृष्टि के महत्व को रेखांकित करते हुए शिवकुमार मिश्र अपने लेख में लिखतें हैं कि ''उन्होंने सूरदास के काव्य के कुछ ऐसे पहलुओं पर विचार किया है, उनके काव्य लोक के ऐसे कुछ गलियारों से भी वे गये हैं जो अब तक के विवेचन में, बड़े आचार्यो के विवेचन में भी प्रायः अनदेखे रहे हैं या समुचित महत्व नहीं पा सके।''

रीतिकाल की कविता और इतिहास बोध- मैनेजर पाण्डेय साहित्य को विभिन्न अनुशासनों के साथ जोड़कर देखने वाले आलोचक हैं। फिर चाहे इतिहास का क्षेत्र रहा हो या समाजशास्त्र का क्षेत्र या फिर इनसे इतर अनुशासन उनकी यह दृष्टि पूरी तरह से तर्क सम्मत है क्योंकि ये सारे अनुशासन समाज से ही जुडे हुए हैं और साहित्य इसी समाज की प्रतिध्वनि है। एक स्तर पर आ कर इतिहास, समाजशास्त्र, दर्शन या फिर साहित्य एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं और एक विशाल संस्कृति का निर्माण करते हैं। इसीलिए मैनेजर पाण्डेय एक अच्छे आलोचक को एक अच्छे इतिहासकार के रूप में भी देखते हैं। हाल ही में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'शब्द और साधना' में एक जगह लिखते है कि, ''एक अच्छा आलोचक एक अच्छा इतिहासकार भी होता है। इतिहासकार के मेरे लिए दो अर्थ हैं आलोचक को साहित्य का इतिहासकार और समाज का भी इतिहासकार बनना पड़ता है।''

उपर्युक्त कथन में मैनेजर पाण्डेय आलोचक के कर्तव्यों के आधार पर सफल आलोचक की बात करते हैं और उसकी साफ वजह है कि जब कोई आलोचक किसी कृति का मूल्यांकन करता है तो उनके मूल्यांकन के साथ-साथ उसे यह भी देखना चाहिए कि वह किस ऐतिहासिक परम्परा से जुड़ी हुई कृति है।यदि आलोचक में इतिहास बोध होगा तो वह कृति को उस परम्परा से जोड़ते हुए उसका मूल्यांकन कर सकता है। कृति अपनी परम्परा से कितनी बेहतर है इसका पता तभी चलेगा जब उसके ऐतिहासिक परम्परा के साथ-साथ सामाजिक परिवेश का भी बोध हो। मैनेजर पाण्डेय इस दृष्टि में एक सफल आलोचक ठहरते हैं क्योकि उनमें गहन इतिहास बोध के साथ-साथ एक अच्छे समाजशास्त्री के भी गुण हैं। मैनेजर पाण्डेय की आलोचना दृष्टि और उनके इतिहास दर्शन पर बात करते हुए कमला प्रसाद जी लिखते हैं कि "साहित्य का इतिहास लेखन तो काफी पहले से होता रहा है पर सामाजिक इतिहास की संगत में साहित्य के इतिहास की मीमांसा नई है।"

मैनेजर पाण्डेय हिन्दी आलोचना के एकमात्र ऐसे आलोचक है जो साहित्य, समाज और इतिहास के समन्वित चिंतन परम्परा को जन्म देते हंै। सांकेतिक रूप से भले ही हमें यह चिंतन आ. शुक्ल से लेकर रामविलास शर्मा में देखने को मिलता हो किंतु मुखर रूप से नई चिंतन पद्धति का श्रेय मैनेजर पाण्डेय को ही जाता है। मैनेजर पाण्डेय के व्यावहारिक आलोचना में भी हमें यह चिंतन अनवरत देखने को मिलता है। उनकी यह सैद्धान्तिक आलोचना के मानक उनके व्यावहारिक आलोचना के कसौटी बनते हैं और साहित्य को नवीन दृृष्टि से देखने की तरफ अग्रसर करते हैं। उदाहरण स्वरूप हम उनके लेख 'रीति काल की कविता और इतिहास बोध' को देख सकते हैं। जैसा कि यह स्पष्ट है कि साहित्य समाज के सापेक्ष होता है जिसमें समाज की प्रतिध्वनियां होती हैं तब साहित्य और समाज के अन्तर्सम्बन्धों का बोध मैनेजर पाण्डेय किसी भी साहित्यकार के लिए जरूरी मानते हैं। यही कारण है कि मैनेजर पाण्डेय की दृष्टि ऐतिहासिक एवं समाज-शास्त्रीय रही। उनका मानना है कि जब भी साहित्य में कैनन निर्माण का प्रयास किया जाए तो उस समय का समाज से सीधा संबन्ध हो। मैनेजर पाण्डेय अपने लेख 'रीति काल की कविता और इतिहास बोध' में साहित्य के नामकरण में बात करते हुए उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर बताते हैं कि, "हिन्दी साहित्य में एक काल आदिकाल है, आदिकाल कहने से समाज के इतिहास के प्रंसग में ऐसा अर्थ निकलता है कि जैसे यह तब का काल होगा जब हम लोग यानी भारत का समाज जंगलों में रहता रहा होगा। ऐसा नहीं है। यहाँ आदिकाल शुद्ध साहित्य से जुड़ा हुआ आदि काल है।''

उपरोक्त कथन से मैनेजर पाण्डेय की इतिहास दृष्टि स्पष्ट होती है। वह समाज के इतिहास के विभाजन और साहित्य के इतिहास के विभाजन को अलग-अलग नहीं देखत, यही कारण है कि साहित्य के मध्यकाल के नामकरण पर सहमति जताते हैं क्योकि वह इतिहास का भी मध्यकाल माना जाता है।

मैनेजर पाण्डेय जब रीति कालीन साहित्य पर बात करते हैं तो उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर वह इसे देखते हैं। मध्यकालीन साहित्य के दूसरे हिस्से मतलब रीतिकाल पर बात करते हुए केशवदास, भूषण, पद्माकर को चुनते हैं तथा उनकी रीति परम्परावादी कविताओं के अलावा यह जाँच पडताल करते हैं कि उनके साहित्य में उनके वर्तमान समाज और घटित घटनाएँ प्रतिबम्बित होती हैं कि नहीं। रीति काल को देखने की उनकी यह अपनी दृष्टि है। केशव के 'वीर सिंह देव चरित ; भूषण के तीनों ग्रन्थ; शिवराज भूषण, शिवाबावनी, व छत्रसालदशक; पद्माकर के वो पद जिनमें अपने समय का इतिहास सुरक्षित है का उल्लेख करते हुए रीतिकालीन कविता को भक्ति कालीन कविता से अलग करते हैं। भक्ति कालीन कवियों की किसी भी कविता में उनके समय का इतिहास उन्हें नहीं दिखाई देता है।

रीतिकाल के सम्बन्ध में उनका मानना है कि उसमें सिर्फ श्रंगारिकता ही देखी गई और कालान्तर में उसी परिपाटी पर बात हुई। इसके लिए वह रामचन्द्र शुक्ल को दोषी मानते हैं। वह उन्हें इसलिए भी दोषी मानते हैं कि उन्होने उसमें सिर्फ श्रंगारिकता ही देखी और उस साहित्य को 'कविता में बंधी नालियों में' बहने योग्य पाया। प्रस्तुत लेख में दो महत्वपूर्ण बातें निकलकर आती हैं। एक केशव, भूषण, पद्माकर के द्वारा रीतिकालीन कविता का इतिहास बोध बताते हुए मैनेजर पाण्डेय की अपनी इतिहास दृष्टि हैं और दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु है रामचन्द्र शुक्ल पर लगाए गए मिथ्या दोष जो सही नहीं जान पड़ते हैं।

मैनेजर पाण्डेय 2016 में एक महत्वपूर्ण पुस्तक का संकलन एवं सम्पादन करते हैं जिसका नाम है 'मुगल बादशाहों की हिन्दी कविता' जिसमें वह अपनी इसी इतिहास दृष्टि के आधार पर बात करते हुए लिखते हैं कि, "भारतीय समाज के इतिहास का जो मुगल काल है वह हिन्दी साहित्य के इतिहास का भक्ति काल एवं रीतिकाल है।...रीतिकाल के लगभग सभी कवि किसी न किसी दरबार में थे इसीलिए मुगल दरबार में हिन्दी कविता की खोज का अर्थ है मुगल दरबार से रीतिकाल के कवियों के सम्बन्ध की खोज।"

उपर्युक्त कथन में दरबार और उनसे जुड़े कवियों के सम्बन्धों की जो बात मैनजर पाण्डेय करते हैं रीतिकाल पर बात करते हुए इन्ही आधारो पर केशवदास व भूषण के आश्रयदाता राजा वीर सिंह देव, छत्रसाल व राजा शिवाजी के सम्बन्धों की पड़ताल करते हैं और इनके साहित्य में उस समय के इतिहास की जाँच-पड़ताल करते हैं। नहीं तो अभी तक भक्ति कालीन कविता को परलोकवादी कविता कह कर आगे बढ़ जाया करते थे।

सैद्धान्तिक आलोचना के विकास- मैनेजर पाण्डेय का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। मैनेजर पाण्डेय अपने समय के ऐसे आलोचक हैं जिन्होने अपने विपुल लेखन में जितना व्यावहारिक आलोचना पर काम किया उतना सैद्धान्तिक आलोचना पर भी जोर दिया। मैनेजर पाण्डेय का मानना है कि समय और समाज के परिवर्तनों के साथ ही साहित्य में भी परिवर्तन होता है। इसलिए साहित्य के प्रतिमानों

का विकास समय-समय पर होते रहना चाहिए। जिसे वह बदलते समाज और साहित्य का मूल्यांकन करने में सामथ्र्यवान हो सके। इसीलिए बदलते समय के साथ, चाहे वह सोवियत संघ के विघटन के बाद का काल हो या फिर भूमण्डलीकरण के दौर का बदलाव रहा हो, के साथ जब साहित्य इन परिवर्तनों से प्रभावित होकर बदलावों के दौर से गुजरा तब-तब उसी के सापेक्ष आलोचना के प्रतिमानों के बदलते साहित्य के साथ और अधिक सामथ्र्यवान करने पर जोर दिया।

मैनेजर पाण्डेय के आलोचनात्मक लेखन का प्रारम्भ भले ही 'सूरदास के काव्य' जैसे व्यावहारिक आलोचना से हुआ हो किंतु हिन्दी साहित्य में उनकी प्रतिष्ठा अपने लेखन के प्रारम्भिक काल में लिखे गये वे सैद्धान्तिक लेख हैं जो प्रारम्भ में 'आलोचना पत्रिका' में प्रकाशित हुए और कालान्तर में वे 'शब्द और कर्म' तथा 'साहित्य और इतिहास दृदृष्टि' नामक पुस्तकों के रूप में हमें देखने को मिलें। मैनेजर पाण्डेय की पुस्तक 'शब्द और कर्म' के अधिकांश लेख सैद्धान्तिक हैं जिनमें यथार्थवाद, साहित्य और सर्वहारा, नए मार्क्सवादी सौंन्दर्यशास्त्र की आवश्कता, परम्परा और प्रतिभा, अनुभूति और सहानुभूति, जनवादी लेखन तथा शब्द और कर्म जैसे सैद्धान्तिक विषयों पर गम्भीर चिंतन व विमर्श हमें देखने को मिलता है जो हिन्दी आलोचना के सैद्धान्तिक विकास को गति देते हैं।

'साहित्य और इतिहास दृष्टि' के माध्यम से मैनेजर पाण्डेय ने एक और महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक कार्य किया जिसमें वह जहाँ एक तरफ आ. शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा के साहित्यिक इतिहास बोध व इतिहास दर्शन में लम्बी चर्चा की वहीं तमाम पाश्चात्य विचारधाराओं से तुलना की। इस पुस्तक में मैनेजर पाण्डेय साहित्येतिहास लेखन की सैद्धान्तिक समस्याओं पर बात करते हुए देश आजादी के बाद के हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याओं तक बात करते हैं। साहित्य के सामाजिक विकास में मैनेजर पाण्डेय इतिहास बोध को बहुत आवश्यक मानते हैं यही कारण है कि वह बहुत ही सुचिंतित व सुव्यवस्थित ढंग से अपने इस पुस्तक में विस्तार से बात करते हैं।

साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन को हिन्दी साहित्य में स्थाई महत्व देने का कार्य मैनेजर पाण्डेय ने किया। साहित्य में समाज की चिंता तो निहित होती ही है लेकिन समाजशास्त्रीय प्रतिमानों के निर्माण और सिद्धान्तों के विकास का महत्वपूर्ण कार्य मैनेजर पाण्डेय के द्वारा देखने को मिलता है। इसे हिन्दी आलोचना की एक उपलब्धि ही मानी जानी चाहिए। क्योंकि अभी तक आलोचना में जिन परम्पराओं व पद्धतियों के आधार पर किसी कृति का विश्लेषण व मूल्यांकन किया जाता था उनमें विचारधारा का प्रभाव तो होता था किंतु किसी कृति का समाजशास्त्रीय दृष्टि से मूल्यांकन नहीं किया जाता था। रचना की सामाजिक उपादेयता पर तो बात होती थी किंतु सामाजिक प्रतिमानों के आधार पर रचना का मूल्यांकन नहीं होता था। या यूँ कहें हमारे हिन्दी आलोचना में ऐसी कोई सुचिंतित दृष्टि व विकसित परम्परा नही थी। मैनेजर पाण्डेय इस दिशा में 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' पुस्तक के माध्यम से सफल प्रयास करते हैं। ज्योतिष जोशी अपने एक लेख में लिखते हैं कि ''हिन्दी आलोचना में

साहित्य से समाज और समाज के साहित्य से सम्बन्धों की खोज तथा उसकी व्याख्या से संबंधित आलोचनात्मक पद्धति को विकसित करने का श्रेय डा. मैनेजर पाण्डेय को जाता है।''

मैनेजर पाण्डेय साहित्य के समाजशास्त्र को साहित्य की एक विधा के रूप में मानते हैं और समाजशास्त्रीय आलोचना से उसको जोड़ते हैं क्योंकि यह पद्धति साहित्य के सामाजिकता का विश्लेषण करती है, इसलिए वह समाजशास्त्र विषय से अलग है। मैनेजर पाण्डेय साहित्य के समाजशास्त्र में समाज और साहित्य के बीच सम्बन्धों की खोज करते हैं तथा उन अन्तर्सम्बन्धों का विस्तार से विवेचन करते हैं, समाज और साहित्य के बीच अंतरद्वन्द्व हो या फिर साहित्य द्वारा समाज से स्थापित तादात्म्य सम्बन्ध, इन दोनों पक्षों को अपने विचार के केन्द्रीय भाव बनाते हुए निर्मित प्रतिमानों और उसके विकसित सौन्दर्य शास्त्र को लेकर मैनेजर पाण्डेय का प्रयास हिन्दी साहित्य के लिए दस्तावेजी कार्य है।

मैनेजर पाण्डेय बहुत ही सज़ग चिंतनशील व गम्भीर आलोचक हैं। वह किसी भी चर्चा को जब उठाते हैं तो उसे सम्पूर्णता में ही सम्पन्न करते हैं तो यहाँ तो बात सैद्धान्तिक स्थापना की थी, वह सिर्फ साहित्य के समाजशास्त्र का उल्लेख मात्र कर कैसे छोड़ सकते थे। यही कारण है कि अपनी पुस्तक 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' के प्रारम्भिक तीन अध्यायों में जहाँ वह इसके सैद्धान्तिक पक्ष पर बात करते हैं। वहीं अगले अध्याय में उसे और विकसित करते हुए साहित्य के अन्य विधा जैसे उपन्यास से जोड़ते हैं तथा उपन्यासों के सिद्धान्त के रूप में भी चर्चा करते हैं। औपन्यासिक प्रतिमानों का विकास करते हुए उसे साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन से जोड़ते हैं और इस सन्दर्भ में न सिर्फ भारतीय उपन्यास बल्कि अफ्रीका में लिखे गए उपन्यास या दक्षिण अमेरिका में लिखे गये उपन्यासों या यों कहें कि तीसरी दुनिया के उपन्यासों तथा कथा साहित्यों में अपने इस समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से चिंतन करते हैं और आखिरी अध्याय में लोकप्रिय कथा साहित्य की जाँच और परख के लिए साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन पद्धति के आधार पर विस्तार से चर्चा करते हैं।

मैनेजर पाण्डेय अपने समाजशास्त्रीय चिंतन को गति देते हुए आलोचना से भी जोड़ते हैं और आलोचना की सामाजिकता का एक सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं जिसमें साहित्य, आलोचना और पाठक तीनों का क्रमिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। उनका मानना है कि रचना के साथ आलोचना को भी सामयिक उत्तरदायित्व के साथ आगे बढ़ना चाहिए। आलोचना समाज की रचनात्मक क्रियाशीलता और साहित्यिक बोध को जगाने में कितनी सक्षम है इस बात का भी मूल्यांकन होना चाहिए। हम देखते हैं कि मैनेजर पाण्डेय आलोचना के उत्तरदायित्वों में विस्तार देते हैं। उनके यहाँ आलोचना का अर्थ सिर्फ रचना के गूढ़ार्थ तथा अस्पष्ट उद्देश्यों को स्पष्ट करना भर नहीं है। बल्कि पाठक की चेतना में विस्तार और उसके सामाजिक बोध को प्रखर करने में सामर्थ्यवान होना चाहिए हैं।

मैनेजर पाण्डेय मार्क्सवादी आलोचक हैं वह साहित्य के समाजशास्त्र को भले ही स्वतन्त्र विधा कहें किन्तु उसे मार्क्सवाद से अलग नहीं मानते हैं। इन दोनों के बीच अन्तर्सम्बन्धों को भी वह स्पष्ट करते हैं। हिन्दी साहित्य में मैनेजर पाण्डेय द्वारा किया गया यह 'साहित्य के समाजशास्त्र का सिद्धान्त' जिसका बीजारोपण कभी नामवर सिंह ने किया था, न सिर्फ विकसित किया बल्कि हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान दिलाया।

यह उनके सैद्धान्तिक आलोचना दृष्टि का ही परिणाम है। कि उनकी लगभग सभी पुस्तकों के पहले खण्ड में सैद्धान्तिक आलोचना पर विचार किया गया है। उसी को उन्होने व्यावहारिक आलोचना की कसौटी के रूप में पुस्तक के अगले खण्ड में इस्तेमाल किया है। उनके द्वारा किए गए सैद्धान्तिक कार्य न सिर्फ हिन्दी साहित्य के लिए बल्कि प्रो. पाण्डेय के लिए एक उपलब्धि हैं। मैनेजर पाण्डेय का मन जितना सैद्धान्तिक आलोचना में रमता है उतना व्यावहारिक आलोचना में नहीं। यही कारण रहा है कि कई पुस्तकें सिर्फ सैद्धान्तिक आलोचना पर ही केन्द्रित हंै जिसमें सिद्धान्तों का क्रमिक-विकास व प्रतिपादन देखने को मिलता है। जबकि व्यावहारिक आलोचना में उनके यत्र-तत्र लेख ही हैं। सिर्फ सूरदास पर ही उनकी एक समग्र रूप में पुस्तक है जो उनकी व्यावहारिक आलोचना पर आधारित पुस्तक है। नामवर सिंह उनके सैद्धान्तिक आलोचनात्मक कार्यों के महत्व को देखते हुए ही उन्हे 'आलोचकों का आलोचक' कहा है।

11.5 मैनेजर पाण्डेय का महत्व

मैनेजर पाण्डेय हिन्दी आलोचना के सजग आलोचक हैं। वे मार्क्सवादी विचारधारा को मानने वाले आलोचक हैं। और जिस भी विषय पर उन्होने बात की उनके केन्द्रीय तत्वों में इसी विचारधारा का प्रभाव रहा। मैनेजर पाण्डेय ने स्वतन्त्र रूप में मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर कोई पुस्तक तो नहीं लिखी किंतु मार्क्सवादी चिंतन परम्परा के विकास क्रम में वह लगातार अपना योगदान देते रहे हैं। हिन्दी में आलोचना की एक लम्बी परम्परा रही है जिसमें बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह आदि आलोचकों ने हिन्दी आलोचना को अनवरत समृद्ध किया। उसी परम्परा को मैनेजर पाण्डेय अभी भी गति देने में लगातार प्रयासरत हैं। मैनेजर पाण्डेय ने भक्ति काल में कबीर, सूर, मीरा, दादू दयाल, रहीमदास जैसे कवियों पर गहन अध्ययन के साथ-साथ गम्भीर लेखन भी किया। सूरदास की कविताओं पर उनका एक शोध-प्रबन्ध है जो कालान्तर में एक पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुआ, जिस पर विस्तृत चर्चा की जा चुकी है। भक्तिकालीन कवियों की कविताओं को देखने की उनकी अपनी मौलिक दृष्टि है। यह बात सूर के साथ-साथ मीरा के कविताओं पर लिखे लेखों से स्पष्ट हो जाती है। ज्यादातर मीरा की कविताओं पर बात करते हुए मीरा को अपने आराध्य के भक्ति के सन्दर्भ में ही उल्लिखित किया गया हैं, किन्तु मैनेजर पाण्डेय मीरा की कविताओं में सामंतवादी संस्कृति के विद्रोह के साथ-साथ पितृसत्तात्मक समाज के

प्रति विरोध भी देखते हैं। मैनेजर पाण्डेय मीरा की कविताओं में स्त्री मुक्ति की चेतना देखते हैं। यही कारण है कि जब स्त्री विमर्श पर बात करते हुए आधुनिक विमर्शकार पाश्चात्य विद्वानों से अपनी बात शुरू करते हैं तो वह कड़ी आपत्ति दर्ज कराते हुए मीरा के स्त्री मुक्ति की चेतना से सम्पृक्त कविताओं का उल्लेख करते हुए उन्हे भारत में स्त्री स्वतन्त्रता और अधिकारों के अगुवा के रूप में देखते हैं। मैनेजर पाण्डेय भक्तिकालीन कविता में समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधित्व को देखते हुए हिन्दी साहित्य का सबसे लोकतान्त्रिक काल मानते हैं, क्योंकि इस काल में उन्हे हर वर्ग का प्रतिनिधित्व दिखाई पड़ता हैं जो कि स्वातंत्र्योत्तर भारत के साहित्य संसार में भी देखने को नहीं मिलता है।

मैनेजर पाण्डेय के लेखन को देखें तो पता चलता है कि वह सिर्फ कविता भर के आलोचक नहीं हैं उनके यहाँ कविताओं के अलावा अन्य विधाओं पर भी किया गया आलोचनात्मक कार्य देखने को मिलता है। उपन्यास विधा में तो वह कई लेख लिखते हैं जिसमें वह उपन्यासों की भारतीयता तथा भारतीय उपन्यास दोनों में विस्तार से बात करते हैं और उपन्यास विधा को लोकतान्त्रिक विधा के सबसे नजदीक पाते हैं। यही कारण रहा है कि उनकी एक पुस्तक का नाम भी 'उपन्यास और लोकतन्त्र है। उपन्यास व प्रेमचन्द्र पर कई लेख हैं। जिनमें 'राष्ट्रवाद ; 'उपन्यास और प्रेमचन्द्र ; 'प्रेमचन्द्र आज भी लोकप्रिय क्यों'; 'भारतीय उपन्यास व प्रेमचन्द्र', 'सन 1857 की विरासत और प्रेमचन्द्र', 'प्रासंगकिता का प्रश्न और प्रेमचन्द्र कीं प्रासंगकिता', 'प्रेमचन्द्र और बिहार', आदि लेख मैनेजर पाण्डेय ने लिखे। जिससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि मैनेजर पाण्डेय प्रेमचन्द्र को भारतीय उपन्यास में एक महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। उनके अनुसार जो स्थान आलोचना में रामचन्द्र शुक्ल का है उपन्यास विधा में वही स्थान प्रेमचन्द्र का, इसके अलावा उपन्यासों की पूरी परम्परा निर्धारित करते हुए क्रमबद्ध ढंग से मूल्यांकन करते हैं जिसमें जैनेन्द्र, नागार्जुन, शाद अजीमावादी, रणेन्द्र तथा संजीव व मदनमोहन तक के उपन्यासों की चर्चा करते हुए अपने चिंतन को समकालीन उपन्यास परम्परा तक विस्तार देते हैं।

आलोचना के सिद्धान्तों, कविता व उपन्यास विधा के अतिरिक्त उन्होने आत्मकथाओं पर भी अपनी आलोचकीय दृष्टि डाली है, तुलसीराम की 'मुर्दहिया', बेचन शर्मा 'उग्र' की 'अपनी खबर', बेबी काम्बले की आत्मकथा और सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकन्जे के दर्द' पर बहुत हीं सुचितिंत लेख लिखे हैं। यहाँ ज्यादातर लेख दलित साहित्यकारों पर हैं।

मैनेजर पाण्डेय अपने चिंतन को भारतीय परम्परा से जोड़ करके उसे विस्तार देने के लिए जाने जाते हैं। हालांकि पाश्चात्य साहित्य पर उनकी गहरी पकड़ है किंतु वह किसी भी पद्धति या विचार को भारतीय परिवेश के हिसाब से देखने का प्रयास करते हैं। और हिन्दी साहित्य पर सप्रयास विदेशी विचार पद्धतियों को लादने का प्रयास नहीं करते हैं। अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था जब सवाल यहाँ के हैं तो उनके जबाव ढूँढने के लिए हम विदेशी विचारों के पास क्यों जाए। भले ही बाकी

विद्वान तमाम विमर्शो के उभार और उनसे सम्बन्धित चर्चाओं के लिए उत्तर आधुनिकता को जिम्मेदार मानते हों किन्तु मैनेजर पाण्डेय इस बात से सहमत नहीं होते। वह बहुत ही तथ्यात्मक तथा से अपनी बात को जोरदार ढंग से रखते हैं। और कहते हैं कि, यह विमर्श हमारे यहाँ देश आजादी के पहले से ही चल रहे हैं। स्त्री विमर्श को वह मीरा से जोड़ते हुए भक्ति काल के विचारों में देखते हैं वहीं दलित विमर्श भी उन्हें भक्ति काल से ही देखने को मिलता हैं। मैनेजर पाण्डेय अकेले ऐसे मार्क्सवादी आलोचक हैं जिन्होने सबसे ज्यादा दलित चिंतन पर न सिर्फ लेख लिखें बल्कि अपने पूर्ववर्ती मार्क्सवादी विचारकों पर दलित साहित्य की उपेक्षा करने पर नाराजगी जताई। मैनेजर पाण्डेय का पहला लेख दलित चिंतन पर 1992 पर आता है तब हिन्दी साहित्य में दलित चिंतन बिल्कुल हाशिए पर था। 'हंस' के तत्कालीन संपादक राजेन्द्र यादव और आलोचकों में मैनेजर पाण्डेय अकेले साहित्यकार थे जो लगातार इस दिशा पर काम रहे थे। यही कारण है कि उनका चर्चित लेख 'क्या आपने वज्र सूची का नाम सुना है? 'हंस' पत्रिका में छपा था। इस लेख का शीर्षक ही कई गम्भीर सवाल खड़े करता है। मैनेजर पाण्डेय अकेले ऐसे मार्क्सवादी आलोचक है जो मार्क्सवाद और दलित चेतना को अलग-अलग नहीं देखते। मैनेजर पाण्डेय दलित चिंतन को बहुत ही गम्भीरता से लेते हैं और उसे साहित्य के मुख्यधारा में स्थापित करने का काम करते हैं।

मैनेजर पाण्डेय विमर्शो में स्त्री विमर्श पर भी बात करते है और मीरा की कविता से स्त्री मुक्ति की चेतना व अधिकारों की परम्परा मानते हैं। मैनेजर पाण्डेय स्त्री विमर्श पर जब बात करते है तो स्त्रियों की पराधीनता पर बात करते हुए पितृसत्तात्मक दृष्टि और उसके चरित्र पर से भी पर्दा उघाड़ते हैं। वे एक साथ दो मोर्चो पर लड़ाई लड़ते हैं, यह उनकी आलोचकीय दृष्टि ही हैं, जो चुनिन्दा बिन्दुओं पर नहीं विस्तृत समस्याओं पर बात करती है। पितृसत्तात्मक चरित्र को उघाड़ते हुए मैनेजर पाण्डेय बड़े सवाल भी खड़े करते हैं और अपने साहित्यिक समाज में दुराग्रहों और पुरूष मानसिकता की मौजूदगी को रेखांकित करते हैं। वह ताराबाई शिंदे, पण्डित रमाबाई, सिमान्तनी उपदेश की अज्ञात लेखिका के लेखन व स्त्री मुक्ति के प्रयासों को नजरअंदाज करने के लिए हिन्दी साहित्य के पुरूष वादी मानसिकता से ग्रसित साहित्यकारों को आड़े हाथों लेते हैं। महादेवी वर्मा के उस गद्य पक्ष को वह उजागर करते हैं जिसमें बहुत ही मुखर ढंग से स्त्री अधिकारों और उनकी स्वतन्त्रता पर बात की गई थी। साथ ही वह लताड़ भी लगाते हैं उन साहित्यकारों को जो मीरा को विरह और रहस्यात्मक कवयित्री के रूप में ही देखते हैं। मैनेजर पाण्डेय स्त्री मुक्ति चिंतन को बहुत ही गम्भीरता से अपने आलोचकीय दृष्टि के माध्यम से अपने लेखों में जगह देते हैं तथा स्त्री विमर्श को समृद्ध करते हुए एक नई दिशा प्रदान करते हैं। मैनेजर पाण्डेय जैनेन्द्र के उपन्यासों में स्त्रियों के मनोवैज्ञानिक चिंतन को बहुत ही ज्यादा महत्व देते हैं। नागार्जुन के उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' के माध्यम से पितृसत्तात्मक सोंच को स्पष्ट करते हुये स्त्री स्वाधीनता पर बल देते हैं।

अनुवाद व लेखन-

अनुवाद और लेखन का कार्य हिन्दी साहित्य में लगभग प्रत्येक महत्वपूर्ण आलोचक ने किया है। इसे आलोचक के महत्वपूर्ण कार्य के रूप में देखा जाता है क्योंकि आलोचक ही ऐसा साहित्यकार होता है जो अनिवार्य रूप से विभिन्न वादों, सिद्धान्तों, पद्धतियों, विचार-धाराओं आदि का गहन अध्ययन कर किसी कृति के उद्देश्यों गूढ़ार्थो और अप्राकट्य को बाहर लाने में सक्षम होता है। आलोचक के लिए यह जरूरी है कि वह समाज के उन सभी तत्वों का गहन अध्येता व जानकार हो जो समाज और साहित्य को प्रभावित करते हैं। तभी वह किसी रचना का समग्र रूप से मूल्यांकन कर पाता है। इसके लिए कई बार आलोचक को अपनी भाषा से इतर जाकर अन्य भाषा में लिखे गए साहित्य को भी जानना पड़ता है। उसकी जिम्मेदारी भी बनती है कि वह स्वभाषेतर साहित्य को भी पाठकों के सम्मुख रखे। इसके लिए कई बार आलोचकों को अनुवादों का काम करना पड़ता है, और हिन्दी आलोचना में हमें यह परम्परा प्रारम्भ से ही दिखाई पड़ती है और मैनेजर पाण्डेय इसी परम्परा को आगें बढ़ाते हुए इसे और समृद्ध करते है। मैनेजर पाण्डेय ने कई विदेशी साहित्यकारों, लेखों व पुस्तकों की लिखी भूमिकाओं का अनुवाद किया हैं। 1998 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित उनकी चर्चित अनुवादित पुस्तक, 'संकट के बावजूद' अनुवाद की परम्परा को आगे बढ़ाती है तथा मैनेजर पाण्डेय के आलोचना कर्म को और विस्तार देती है। इस पुस्तक के अभी तक तीन संस्करण निकल चुके हैं जो मैनेजर पाण्डेय के काम की लोकप्रियता को दर्शाता है। मैनेजर पाण्डेय विदेशी मार्क्सवादी/समाजवादी साहित्यकारों के लेखों का समय-समय पर अनुवाद करते रहें हैं तथा एक और महत्वपूर्ण कार्य जो मैनेजर पाण्डेय ने किया है वह यें कि वह न सिर्फ भारतीय साहित्यकारों की कृतियों पर आलोचना लिखते हैं बल्कि पाश्चात्य व हिन्दीतर भाषा भाषी साहित्यकारों की कृतियों का भी मूल्यांकन करते हैं। चूँकि वह रामविलास शर्मा की हिन्दी साहित्य की अवधारणा को बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं इसीलिए वह हिन्दी साहित्य से इतर जिन साहित्यकारों के लेखों पर बात करते हैं उनका सम्बन्ध किसी न किसी तरह हिन्दी जातीय साहित्य की समृद्धि से ही जुडा होता है।

मैनेजर पाण्डेय हिन्दी आलोचना की उन सभी महत्वपूर्ण परम्पराओं को समृद्ध करते हैं जिनसे न सिर्फ हिन्दी आलोचना अपितु समग्र हिन्दी साहित्य संसार और ज्यादा दैदीप्यमान होता है। हिन्दी आलोचना की तमाम परम्पराओं में से एक सम्पादन की परम्परा है। हमारे सभी महत्वपूर्ण साहित्यकार इस परम्परा को समय-समय पर विकसित करते रहे हैं। मैनेजर पाण्डेय का सम्पादन कार्य कुछ विशिष्ट रहा है वह यूँ कि जहाँ वह एक तरफ सूरदास, नागार्जुन, कुमार विकल आदि की कविताओं का सम्पादन करते हैं वहीं वो कुछ ऐसी कृतियों का भी सम्पादन करते हैं जो हिन्दी परम्परा में कम देखने को मिलती है। जैसे कि, 'मुगल बादशाहों की हिन्दी कविताओं' को खोज कर निकालते हैं, उनको संकलित करते हैं और सम्पादित करते हुए हिन्दी साहित्य के पाठकों की रूचि उस ओर मोड़ने का प्रयास करते हैं जिधर हमेशा उपेक्षा के भाव से देखा गया है। इसी परम्परा में उनके द्वारा संकलित व सम्पादित की गई पुस्तक 'लोकगीतों और गीतों में 1857' को देखा जा सकता है जिसमें वह हिन्दी पट्टी के विभिन्न क्षेत्रों में

मौजूद ऐसे लोकगीतों का संकलन करते हैं जिसमें 1857 की क्रान्ति को हम इतिहासकारों, बौद्धिक वर्गो के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि जनमानस के दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करते है क्योकि यह दृष्टिकोण आम जन के मनोभावों का चित्रण है। जो सबसे सटीक ओर यथार्थ के सबसे सन्निकट होता हैं। 'देश की बात' जो 'देशर कथा' पुस्तक का हिन्दी रूपान्तरण है का पुर्नप्रस्तुतीकरण कर मैनेजर पाण्डेय एक और मानीखेज काम करते हैं। उपरोक्त जितने भी संकलित व सम्पादित पुस्तके हैं वह परम्परा से हटकर सम्पादित पुस्तके हैं हिन्दी साहित्य में इन ऐतिहासिक सन्दर्भो में वह समाज के इतिहास के रेखाकंन से सीधे सम्बन्धित पुस्तकों के रूप में सामने आती हैं।

मैनेजर पाण्डेय द्वारा संकलित, सम्पादित व पुनप्र्रस्तुत पुस्तकों की लिखी गई लम्बी भूमिकाएं मैनेजर पाण्डेय के चिंतन पक्ष को उद्घाटित करती हैं। हिन्दी साहित्य में लम्बी भूमिकाओं का अपना महत्व हैं इनकी भी एक लम्बी व विकसित परम्परा देखने को मिलती हैं। मैनेजर पाण्डेय इन परम्पराओं को भी समृद्ध करते हैं।

बोध प्रश्न

1.मैनेजर पांडे की व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

.....

.....

.....

2. मैनेजर पाण्डेय के आलोचकीय निर्मिति को रेखांकित कीजिए।

.....

.....

.....

3. मैनेजर पाण्डेय के अनुवाद एवं संपादन कर्म की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

4. मैनेजर पाण्डेय की आलोचना दृष्टि को रेखांकित कीजिए।

.....

.....

.....

11.6 सारांश

मैनेजर पाण्डेय मार्क्सवादी आलोचक हैं। उनके चिंतन में कभी भी विचारधारा से भटकाव व विचलन देखने को नहीं मिलता मैनेजर पाण्डेय मार्क्सवादी चिंतन-परम्परा को बदलती परिस्थितियों के साथ विकसित व समृद्ध करते रहे हैं। उन्होने मार्क्सवादी चिंतन की सीमाओं का भी विस्तार किया। उन्हे जब भी ऐसा लगा कि समाज का कोई ऐसा पक्ष छूट रहा है जो हमारे चिंतन का विषय होना चाहिए वह उसे केन्द्रीय भाव के रूप में लाते हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण दलित वर्ग को वर्ग संघर्ष में किसान, मजदूर और शोषितों के साथ जोड़ कर देखना। मैनेजर पाण्डेय ऐसा मानते हैं कि दुभाग्र्यवश अभी तक दलित वर्ग मार्क्सवादी चिंतन के मूल चिंतन पक्ष में शामिल नहीं रहा यही कारण है कि मैनेजर पाण्डेय दलित वर्ग को और उसके समाज को भी अपनी चिंतन पद्धति में प्रमुखता से जोड़ते हैं। मैनेजर पाण्डेय का महत्व न सिर्फ मार्क्सवादी चिंतन पद्धति अपितु हिन्दी आलोचना परम्परा में इसलिए भी बढ़ जाता है कि वह भले ही स्वतन्त्र रूप से मार्क्सवादी सिद्धान्त पर कोई पुस्तक न लिखे हों किंतु इस वैचारिक सिद्धान्त को विकसित करने और उसकी सीमाओं के विस्तार में वह महत्ती भूमिका अदा करते हैं। मैनेजर पाण्डेय मार्क्सवादी चिंतन के तहत जो दूसरा महत्वपूर्ण कार्य करते हैं वह है जाति-व्यवस्था पर प्रहार। मैनेजर पाण्डेय पहले आलोचक हैं जो पहले जाति व्यवस्था को तोड़ने, तब वर्ग संघर्ष की अवधारणा को सफल करने की बात कहते हैं। यह दृष्टि मैनेजर पाण्डेय की भारतीय परिवेश व उसकी आवश्यकतानुसार वर्ग संघर्ष की प्रांसगिकता को स्थापित करती है। क्योंकि भारत में चर्तुवर्ण व्यवस्था लम्बे समय से स्थापित है और शोषण का प्रमुख कारण है। मैनेजर पाण्डेय मार्क्सवादी चिंतन धारा को विदेश से लाकर हूबहू भारत में थोपने के पक्षकार नही हैं वह भारत में मौजूद शोषक वर्ग, जिसमें वर्ण व्यवस्था भी शामिल है और समाज में गहरी पैठ बनाए हुए है को नजरअन्दाज करने से रोकते हैं तथा इसके भीतर वर्ग संघर्ष को देखते हैं। उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों का शोषण हजारों वर्षो से चल रहा है। सिर्फ जन्म के आधार पर व्यक्ति के अधिकार को सीमित किया जाता रहा है। यह व्यवस्था भारत के अलावा किसी अन्य देशों में देखने को नही मिलती। इसलिए मैनेजर पाण्डेय भारतीय परिस्थिति के भीतर मौजूद समस्याओं को ध्यान में रखते हुए मार्क्सवादी चिंतन पद्धति के स्वरूप के निर्धारण की बात करते हैं। उनकी यह दृष्टि अति महत्वपूर्ण है और प्रासंगिक भी। उनके इन्ही कामों से उनका महत्व हिन्दी साहित्य में बढ़ जाता हैं। क्योकि उनके द्वारा लगातार मार्क्सवादी चिंतन को न सिर्फ समृद्ध किया जाता है बल्कि उसे प्रासंगिक बनाए रखने का प्रयास किया जाता है। मैनेजर पाण्डेय जिस साहित्य के समाजशास्त्र की अवधारणा पर विस्तृत चर्चा करते हैं वह भी कमोबेस हमें मार्क्सवादी चिंतन के विस्तार में ही दिखाई पड़ती है।

मैनेजर पाण्डेय आलोचना को रचना के समकक्ष रखते हुए समाजोन्मुखी बनाते हैं। आलोचना और आलोचकों के कर्तव्यों को रेखांकित करते हैं कई दफा वह अपनी ही मार्क्सवादी चिंतन परम्परा पर गम्भीर सवाल खड़ा करते हैं। उनकी आलोचना का यह आत्मसंघर्ष उनके कद को बड़ा कर देता है क्योकि वह आलोचना को किसी भी पद्धतियों के भीतर नहीं मानते और हर बड़े आलोचक का मूल

उद्देश्य मजबूत आलोचना पद्धति विकसित करना है इसके लिए वे अपने विचारधारात्मक चिंतन पक्ष में मौजूद कमियों को रेखांकित करते हैं बल्कि उसे दूर भी करते हैं। मैनेजर पाण्डेय अनवरत् सभ्यता समीक्षा करते हुए हिन्दी आलोचना परम्परा में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। मैनेजर पाण्डेय हिन्दी आलोचना के शिखर पुरूष हैं उनकी आलोचना कर्म में कभी भी अन्तर्विरोध देखने को नही मिलता है। वह प्रतिबद्ध मार्क्सवादी चिंतक हैं वह जिस पक्ष को लेकर के खड़े हुए अंत तक उसके साथ डटे रहे हैं। वह आलोचना में कभी भी किसी का मूल्यांकन करते हुए जल्दीबाजी नहीं करते हैं। बहुत ही सचेत ढंग से और सूक्ष्म रूप से चीजों का विश्लेषण करते हैं तथा जिस निष्कर्ष तक पहुंचते हैं आखिर तक अडिग रहते हैं यही विशेषता उनके महत्व को बढ़ा देती है।

11.7 शब्दावली

दृष्टिकोण : देखने का तरीक़ा
परिलक्षित : दिखाई देना
परिष्कृत : जिसका परिष्कार यानी शोधन किया जा चुका
अडिग : स्थिर रहना
मार्क्सवादी चिंतन : कार्लमार्क्स के विचारों के आधार पर किया गया चिंतन
गूढ़ार्थ : गूढ़ अर्थ
अप्राक्ट्य : जो प्रकट नहीं हो यानी छिपा हुआ हो

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 11.3 और 11.4 देखें।
2. 11.3 और 11.4 देखें।
3. 11.3 और 11.4 देखें।
4. 11.3 और 11.4 देखें।

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शब्द और कर्म, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. साहित्य और इतिहास दृष्टि, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
5. आलोचना की सामाजिकता, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
6. हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

7. उपन्यास और लोकतंत्र, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
8. शब्द और साधना, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
9. दारा शुकोह : संगम संस्कृति का साधक, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

11.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. शब्द और कर्म, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. साहित्य और इतिहास दृष्टि, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
5. आलोचना की सामाजिकता, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
6. हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
7. उपन्यास और लोकतंत्र, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
8. शब्द और साधना, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
9. दारा शुकोह : संगम संस्कृति का साधक, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मैनेजर पाण्डेय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को रेखांकित करते हुए उनके आलोचनात्मक निर्मितियों पर विचार कीजिए।

2. मैनेजर पांडेय के महत्व को बतलाते हुए उनके आलोचनात्मक दृष्टि का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 12 : गजानन माधव मुक्तिबोध और हिंदी आलोचना

इकाई की रुपरेखा

12:00 मुक्तिबोध और हिंदी आलोचना
12.11 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 मुक्तिबोध का रचना संसार
12.4 मुक्तिबोध की आलोचना दृष्टि
12.4.1 रचनाकार और आलोचक की आलोचना दृष्टि
12.4.2 मुक्तिबोध की आलोचना दृष्टि
12.5 मुक्तिबोध का आलोचनात्मक अवदान
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

मुक्तिबोध हिंदी के प्रमुख कवि -आलोचक हैं | कवि के रूप में मुक्तिबोध की प्रतिष्ठा रही है | 1960 के बाद के कवियों में हिंदी कविता को मुक्तिबोध ने सर्वाधिक प्रभावित किया है |

मुक्तिबोध की रचना यात्रा तारसप्तक (1943) से प्रारंभ होती है | कालांतर में आप लम्बी कविताओं की ओर झुकते चले गए | लम्बी कविता के शिल्प को मुक्तिबोध ने सर्वाधिक सफलतापूर्वक साधा है | अपने शिल्प के कारण मुक्तिबोध की कविताएं, कहानियां और उपन्यास बेहद जटिल हो गए हैं | लेकिन इसका कारण यह है कि मुक्तिबोध का साहित्य मौलिक रहा है |

मुक्तिबोध मूलत : कवि हैं, किंतु आपकी आलोचना भी बहुत महत्वपूर्ण रही है | कामयानी :एक पुनर्विचार और नयी कविता की समस्याएं जैसी कृतियों में मुक्तिबोध की आलोचना की मौलिकता को देखा जा सकता है | एक साहित्यिक की डायरी में मुक्तिबोध ने सैद्धांतिक आलोचना संग्रहित हैं | इस पुस्तक में रचना प्रक्रिया और रचना समस्या आदि पर मुक्तिबोध ने मौलिक ढंग से विचार किया है | प्रस्तुत इकाई में मुक्तिबोध की आलोचना पर विचार किया जायेगा, जिससे हम उनके आलोचनात्मक योगदान को समझ सकें |

12.2 उद्देश्य

मुक्तिबोध और हिंदी आलोचना शीर्षक यह 12 वीं इकाई है | इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

* मुक्तिबोध का परिचय प्राप्त कर सकेंगे |
* मुक्तिबोध की रचनाओं से परिचित हो सकेंगे |
* मुक्तिबोध की आलोचनात्मक कृतियों की अंतरवस्तु को जान सकेंगे |
* मुक्तिबोध की आलोचना दृष्टि को समझ सकेंगे |
* मुक्तिबोध के आलोचनात्मक योगदान को जान सकेंगे |
* मुक्तिबोध और दूसरे हिंदी आलोचकों से तुलना कर सकेंगे |

12.3 मुक्तिबोध का रचना संसार

चाँद का मुंह टेढ़ा है, भूरी-भूरी खाक धूल (कविता संग्रह), सतह से उठता आदमी, काठ का सपना, विपात्र (कथा साहित्य), कामायनी एक पुनर्विचार, भारत : इतिहास और संस्कृति, समीक्षा की समस्याएँ, नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, आखिर रचना क्यों, नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा एक साहित्यिक की डायरी के अतिरिक्त छह खंडो में प्रकाशित मुक्तिबोध रचनावली में उनकी सम्पूर्ण रचनाएँ संकलित हैं |

12.4 मुक्तिबोध की आलोचना दृष्टि

मुक्तिबोध कवि के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं | किंतु कवि -आलोचक के रूप में भी आपकी उपस्थिति कम महत्वपूर्ण नहीं रही है | कामया।नी: एक पुनर्विचार नामक कृति से ही आप चर्चित हो चुके थे | बाद. एं सैद्धांतिक समीक्षक के रूप में आपकी एक साहित्यिक की डायरी पुस्तक भी बहु चर्चित हुई | कह सकते हैं कि व्यावहारिक आलोचना के साथ ही सैद्धांतिक समीक्षक के रूप में भी आप सफल रहे हैं | मुक्तिबोध की आलोचना दृष्टि की पड़ताल करने से पूर्व कवि -आलोचना पर सैद्धांतिक ढंग से विचार करना समीचीन प्रतीत होता है |

12.4.1 रचनाकार-आलोचक की आलोचना दृष्टि

संसार के आलोचना संसार में कवि/ रचनाकारों द्वारा की गयी आलोचनाएं अपनी आत्मनिष्ठ दृष्टि के कारण विचारोतेजक एवं प्रामाणिक रही हैं, बावजूद उनकी आलोचना को बहुत गंभीरता से नहीं लिया गया। इसका कारण क्या है? क्या उनकी आलोचना वैचारिकता से हीन रही हैं? या उसमें तार्किकता का अपेक्षाकृत अभाव रहा है? इन प्रश्नों के उत्तर से पूर्व हम आलोचना के प्रमुख गुणों को समझें। आलोचना किसी कृति के बहाने अपनी सभ्यता-संस्कृति को देखने का बौद्धिक-तार्किक अनुशासन है; यानी यह किसी ;रचना की केन्द्रीयता' से प्रारंभ होती है या उस पर आधारित होती है। इसका

ध्येय सभ्यता-संस्कृति की समीक्षा या मूल्यांकन करना होता है तथा यह बौद्धिक-तार्किक एवं वस्तुनिष्ठ ढंग से अपने मत को रखने वाला अनुशासन/ पद्धति है। यही वह कुछ बिंदु हैं जो संसार के प्रायः बड़े आलोचकों में सार्वभौमिक रूप से मिलते हैं। यह आलोचना के अंतिम निकष नहीं हैं और न एकमात्र गुण...। इसलिए भी इसके अतिरिक्त आलोचना की ;अपनी सैद्धांतिकी; रही है तथा आलोचना का व्यवहार भी। ज़ाहिर है कवि/ रचनाकारों द्वारा की गई आलोचनाएं भी ;अतिरिक्त आलोचना का भाग बनी रहीं, किन्तु महत्वपूर्ण भाग...। हिंदी आलोचना में पन्त, निराला, प्रसाद की आलोचनाएं हों या मुक्तिबोध-अज्ञेय-निर्मल की आलोचनाएं या नई कहानी के दौर में ;नई कहानीकारों की भूमिकाएं-आलोचनाएं...। मुझे तो मुक्तिबोध की आलोचना किसी भी दृष्टि से किसी प्रसिद्ध आलोचक की आलोचना से कमज़ोर नहीं लगती। बावजूद मुक्तिबोध, अज्ञेय जैसे रचनाकारों की आलोचना पर स्वतंत्र रूप से कार्य कम हुआ...या वे लोकप्रिय न हो सकीं। इसका कारण क्या यह रहा है कि रचनाकारों की आलोचनाएं प्रायः अपनी ;रचना को स्पष्ट (डिफेंड) करने के क्रम में रचित हुई हैं? याद करें जब पंत को पल्लव की लंबी भूमिका (पल्लव का ;प्रवेश घोषणा पत्र) लिखनी पड़ी या प्रसाद को रहस्यवाद की भारतीय पृष्ठभूमि के साक्ष्य जुटाने पड़े। यह कुछ वैसा ही था, जैसे रोमांटिसिज्म आंदोलन में वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज को लिरिकल वैलेड्स; के माध्यम से उसका घोषणा पत्र लिखना पड़ा था। यही स्थिति प्रयोगवाद और नई कहानी आंदोलन के प्रयोक्ताओं के सामने भी थी। बाद में तो ढेरों आंदोलन चले और रचनाकारों द्वारा उसके घोषणा पत्र भी लिखे गए। क्या कवि द्वारा की गई आलोचना कवि की अपनी रचना- प्रक्रिया को स्पष्ट करने के प्रयास में या कवि द्वारा ;स्वयं की रचना को स्पष्ट करने के प्रयास में कमज़ोर हो जाती है? यदि हम इस तर्क को स्वीकार करते हैं कि आधुनिक आलोचना के लिए ;कृति की केन्द्रीयता अनिवार्य है, तो फिर यह कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि कवि द्वारा अपनी कृति पर की गयी टिप्पणी कमज़ोर होगी? यहां दोनों तथ्यों में एक बुनियादी अंतर यह है कि आलोचक की आलोचना में कृति बहाने के रूप में या प्रस्थान के रूप में आती है, किन्तु रचनाकार की आलोचना में कृति सम्पूर्णतः अपनी केन्द्रीयता में विद्यमान रहती है। यदि कोई रचनाकार अपने से संबंधित साहित्यिक आंदोलन पर भी विचार करता है तो वह उस आंदोलन की केंद्रीय भूमि और अपनी कृति के संदर्भ में ही प्रमुखतः बात करता है। इस प्रक्रिया में कवि प्रायः आत्मनिष्ठ ढंग से रचना को देखने का प्रयास करता है। अतः ऐसी आलोचना प्रायः एक अनुभूति (कवि की अपनी अनुभूति) की अभिव्यक्ति बनकर रह जाती है। जबकि आलोचक अपनी अनुभूति का सार्वभौमिकरण करता है। वह कई अनुभूतियों का सार्वभौमिकरण करता है। वह कई अनुभूति का संयोजन करता है। इस ढंग से कवि/ रचनाकार की आलोचना में भले हो मौलिक दृष्टि की तीव्रता हो, किन्तु वह वस्तुनिष्ठ प्रायः नहीं हो पाती। जबकि आलोचना की प्रधान शर्त उसकी वस्तुनिष्ठता से जुड़ी हुई है। ;यानी रचनाकार वैयक्तिक अनुभूति के आलोक में समाज को देखता है तो आलोचक विभिन्न अनुभूतियों के संयोजन क्रम में। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि रचनाकार जिस आंदोलन से जुड़ा रहता है। वह उससे पृथक होकर, समय से मुक्त होकर अपनी आलोचना को नहीं रख पाता; किन्तु एक आलोचक के लिए इस प्रकार

की समय बाध्यता नहीं है। आलोचना में अभी तक रचनाकार द्वारा की गईं आलोचना व आलोचक द्वारा की गई आलोचना को विपरीत ढंग से या अलग-अलग ढंग से देखने की परिपाटी रही है। क्या यह अच्छा न होता कि कोई शोधार्थी पंत-निराला की आलोचना के साथ रामचंद्र शुक्ल, डॉ देवराज, नंददुलारे बाजपेयी, रामविलास शर्मा...इत्यादि की आलोचना को देखने का प्रयास करता। इस तरह के प्रयास हुए तो हैं, किन्तु फुटकल रूप में...बिखरे रूप में या असंबद्ध रूप में। इसका कारण खोजना भी कठिन नहीं है। रचनाकार द्वारा की गई आलोचनाएं प्रायः अपनी रचना को करने या अपने काव्यान्दोलन की मूल स्थापना की दृष्टि में विकसित हुई हैं। इस दृष्टि से ये कवि/ रचनाकार या तो अपने समकालीन आलोचकों से विपरीत मत रखते थे या उनकी आलोचना से असंतुष्ट थे। इस ढंग से डायरी शिल्प में कई गयी मुक्तिबोध की आलोचना विशेष रूप से हमारा ध्यान खींचती है। मुक्तिबोध की ये आलोचनाएं व्यावहारिक आलोचना में न आएंगी। हां आप चाहें तो इसे सैद्धांतिक आलोचना कह सकते हैं। किंतु यह सैद्धांतिकी उस सिद्धांत-निरूपण से बहुत भिन्न है, जो रस ग्रहीता के आस-पास विकसित हुई थी। इसमें केवल रचना और पाठक की एकांत साधना नहीं है, अपितु जीवंत-गतिशील समाज भी है। रचनाकार और आलोचक की आलोचना दृष्टि के पार्थक्य का एक बड़ा कारण दोनों की आलोचना-पद्धति है। रचनाकार की आलोचना प्रायः रचना की प्रक्रिया या उसके अवयवों को अपने मूल्यांकन बिंदु में पार्श्व (अनुपस्थित नहीं) में कर देती है। वह मुख्य रूप से रचना के प्रभाव के आधार पर अपना मूल्यांकन (प्रभावात्मक आलोचना नहीं...) करता है। चूंकि वह स्वयं रचनाकार है, अतः उसकी दिलचस्पी का तथ्य रचना-प्रक्रिया नहीं है। वह रचना के बनने की प्रक्रिया को समझता तो है, किन्तु उसका उल्लेख करना उसे जरूरी नहीं लगता। इसका कारण यह है कि एक तो वह उस प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है, दूसरे उसके पाठक प्रबुद्ध होंगे; वह यह मानकर चलता है। किंतु इसके विपरीत आलोचक रचना के प्रभाव को उसकी अंतर्वस्तु में समाविष्ट करके देखता है। एक आलोचक अपनी आलोचना-प्रक्रिया में रचना को संपूर्णता में देखना पसंद करता है। उसे मालूम है कि उसकी आलोचना का पाठक सामान्य पाठक भी है, जिसे उसे रचना की समझ प्रदान करनी है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि आलोचना की प्रक्रिया या पद्धति रचना को संपूर्णता में देखने में निर्मित होती है। (जैसा कि उसके शाब्दिक अर्थ से भी यही लक्षित होता है)। तो जब किसी रचना को संपूर्णता में देखने का प्रयास किया जाता है तो रचना के विभिन्न अवयवों/ घटकों की समीक्षा आवश्यक हो उठती है। अतः जब कोई आलोचक किसी रचना की समीक्षा के लिए तत्पर होता है तो उसका ध्येय रचना के विभिन्न घटकों को एक सूत्र में देखने का होता है। यानी वह रचना के विभिन्न घटकों के बीच एक अन्तरसूत्र तलाश करने का कार्य करता है। और इसी अन्तरसूत्र तलाश की व्यवस्थित प्रक्रिया के बीच आलोचना निर्मित होती है। यानी आलोचक की आलोचना दृष्टि एक व्यवस्था, अनुशासनबद्ध पद्धति से चलती है। जबकि रचनाकार की आलोचना विशेषतः अपनी अनुभूति के आलोक में तय होती है।

अभ्यास प्रश्न)१

1- चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध की आलोचना कृति है|

2- भारत: इतिहास और संस्कृति मुक्तिबोध द्वारा लिखित इतिहास की पुस्तक है|
3- कामयनी: एक पुनर्विचार नामक कृति इतिहास ग्रन्थ है|
4- एक साहित्यिक की डायरी में मुक्तिबोध की सैद्धांतिक आलोचनाएँ हैं|
5- पल्लव का प्रवेश छायावाद का घोषणा पत्र है|

12.4.2 मुक्तिबोध की आलोचना दृष्टि

मुक्तिबोध की आलोचना दृष्टि मार्क्सवादी है| आप मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित थे | मुक्तिबोध ने 'नई कविता' और प्रगतिशील आंदोलन पर विस्तार पूर्वक लिखा है | उन्होंने रचना -आलोचना की जड़ता पर प्रहार करते हुए साहित्य को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा | मुक्तिबोध ने व्यक्ति-स्वातंत्र्य की अपेक्षा सामाजिक संघर्ष और रचनाकार के अंतःसंघर्ष को महत्त्व दिया | मुक्तिबोध ने 'कामायनी: एक पुनर्विचार' और 'नया साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' जैसी कृतियों में अपनी मौलिक और पैनी दृष्टि से साहित्य के मूल्यांकन के नए मानदंड स्थापित किए|

मुक्तिबोध कवि-आलोचक के रूप में ख्यात रहे हैं| अपनी मौलिक दृष्टि के कारण मुक्तिबोध हिंदी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण आलोचक रहे हैं| संक्षेप में मुक्तिबोध की आलोचना के कुछ प्रमुख आधार निम्न हैं-

मार्क्सवादी आलोचक: मुक्तिबोध ने वर्ग-भेद आधारित समाज और साहित्य की सूक्ष्म आलोचना की है | मुक्तिबोध की विचारधारा मार्क्सवादी रही है, इसलिए के तीव्र आलोचक थे, उन्होंने साहित्य में वर्ग-चेतना और सामाजिक यथार्थ को केंद्र में रखा। कामायनी की व्याख्या मुक्तिबोध ने मार्क्स वादी पद्धति पर की| कामायनी की पूरी व्यवस्था सांनती व्यवस्था पर टिकी हुई है| मनु ढहती हुई व्यवस्था का प्रतीक है| श्रद्धा भाववाद और इड़ा पूँजीवाद की प्रतीक है| जाहिर है कि मुक्तिबोध की यह व्याख्या काफ़ी विचारोतेजक थी|

'नई कविता' के आलोचक- मुक्तिबोध मूलत: आलोचक न थे, किंतु नई कविता पर मुक्तिबोध ने गहराई पूर्वक विचार किया है|

आत्म-संघर्ष और फैंटेसी- मुक्तिबोध की आलोचना में कवि के 'आत्म-संघर्ष' और 'फैंटेसी' (काल्पनिक विधान) का गहन विश्लेषण मिलता है, जो व्यक्ति के आंतरिक जगत और बाह्य यथार्थ के द्वंद्व को दर्शाता है। मुक्तिबोध ने फैंटेसी के निर्माण में कला के तीन क्षणों का उल्लेख किया है – "कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और ऐसी फैंटेसी का रूप धारण कर लेना मानो वह फैंटेसी अपने आँखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णवस्था तक की गतिमानता। शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर जो प्रवाह रहता है वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह रहता है।" सभ्यता-समीक्षा: मुक्तिबोध की

आलोचना दृष्टि में वर्तमान सभ्यता और समाज की गहरी छान-बीन थी, जो कवि-व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक बनी। सभ्यता समीक्षा मुक्तिबोध की रचना और आलोचना का महत्वपूर्ण पद है|

ईमानदारी और मौलिकता- मुक्तिबोध की आलोचना में अनुभव की ईमानदारी और पारदर्शिता थी, जिससे वे ऐसे तथ्यों को उजागर कर पाए जिन पर सामान्यतः ध्यान नहीं दिया जाता था। हिंदी आलोचना में सैद्धांतिक समीक्षा के तौर पर केवल काव्यशास्त्र की चर्चा होती थी, किंतु मुक्तिबोध ने रचना प्रक्रिया और रचना के विभिन्न उपादानों पर जितने विस्तार से लिखा है, उतना हिंदी आलोचना में अन्यत्र किसी आलोचक ने नहीं लिखा है|

सैद्धांतिक समीक्षा- मुक्तिबोध ने रचना प्रक्रिया पर मौलिक ढंग से विचार किया है| उनकी पुस्तक एक साहित्यिक की डायरी पुस्तक इस ढंग से मौलिक कृति है| इस पुस्तक में कला के तीन क्षण नामक निबंध में मुक्तिबोध ने रचना प्रक्रिया पर विचार करते हुए लिखा है- एक सृजनात्मक प्रक्रिया के तीन चरण हैं: पहला क्षण तीव्र 'जीवन-अनुभव' (उत्कट अनुभव), दूसरा क्षण उस अनुभव का 'फैंटेसी' या कल्पना में बदलना (अनुभव से अलगाव), और तीसरा क्षण उस कल्पना का 'शब्दबद्ध' या अभिव्यक्ति होने की प्रक्रिया (शब्दों में ढलना) है, जो कलाकृति को जन्म देता है.

अभ्यास प्रश्न)२

टिपण्णी कीजिए

फेंटेसी शिल्प

.....

.....

.....

कवि-आलोचक

.....

.....

.....

मुक्तिबोध और आलोचना दृष्टि

.....

.....

.....

12.5 मुक्तिबोध का रचनात्मक अवदान

मुक्तिबोध हिंदी आलोचना में मौलिक आलोचक के रूप में ख्यात हैं| मुक्तिबोध की आलोचना के दो रूप हैं| कामा यनी: एक पुनर्विचार और नई कविता की समस्याएं आपकी व्यावहारिक आलोचना की

कृति याँ हैं, वहीं एक साहित्यिक की डायरी आपकी सैद्धांतिक आलोचना की कृति कही जा सकती है| इन कृतियों के माध्यम से मुक्तिबोध ने आलोचना के नए संस्कार हिंदी आलोचना को दिये|

* कामायनी को वैचारिक कृति के रूप में स्थापित करने की पहल
* सभ्यता समीक्षा के रूप में साहित्य को देखने की पहल
* रचना प्रक्रिया पर हिंदी आलोचना में सर्वाधिक विस्तार से लिखने की कोशिश
* फेन्टेसी शिल्प पर सर्वाधिक मौलिक चिंतन
* प्रतिबद्ध आलोचक के तौर पर मुक्तिबोध प्रश्न खड़ा करते हैं कि"पार्टनर तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है?
* रचनाकार और आलोचक के अंतर्विरोध पर मुक्तिबोध ने विस्तार से लिखा है|

12.6 सारांश

मुक्तिबोध हिंदी साहित्य के अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाकार हैं| जैसा कि स्पष्ट है कि मुक्तिबोध आलोचक न थे, किंतु हिंदी आलोचना में मुक्तिबोध का योगदान कम नहीं है| कामा यनी महाकाव्य को मुक्तिबोध से पूर्व रूपक के तौर पर देखा जाता था या महाकाव्य की विशेषताओं के समतुल्य देखा जाता था| हिंदी आलोचना में पहली बार मुक्तिबोध ने कामायनी को वैचारिक कृति के तौर पर प्रतिष्ठित किया| मार्क्स वादी आलोचना को वैचारिक आधार देने में भी मुक्तिबोध ने महत्वपूर्ण योग दिया है| सभ्यता समीक्षा को प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से भी मुक्तिबोध हिंदी के महत्वपूर्ण आलोचक हैं| फैन्टेसी शिल्प पर हिंदी में मुक्तिबोध ने ही सर्वाधिक मौलिक ढंग से विचार किया है|

12.7 शब्दावली

फेन्टेसी शिल्प - स्वप्न और अवचेतन को आधार बनाकर लिखी गयी शैली

काल्पनिक विधान - रचना को बनाने वाली ललित कल्पना
व्यक्ति -स्वातंत्रय - व्यक्ति स्वतंत्रता को स्वीकार करने का भाव
घोषणापत्र -किसी सिद्धांत को बद्ध करने की स्थिति

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1-असत्य
2-सत्य
3-असत्य
4-सत्य
5-सत्य

12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कामायनी: एक पुनर्विचार- मुक्तिबोध
2. नयी कविता और अस्तित्व वाद- रामविलास शर्मा

12.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.कविता के नए प्रतिमान- नामवर सिंह
2. नयी कविता के प्रतिमान-लक्ष्मीकांत वर्मा

12.11निबंधात्मक प्रश्न

1. कवि आलोचना की प्रकृति पर विचार कीजिये |
2. मुक्तिबोध की आलोचना दृष्टि पर विचार करें |

इकाई 13 समकालीन हिंदी आलोचना

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 समकालीन हिंदी आलोचना : अर्थ एवं सीमा
13.3.1. हिंदी आलोचना की परम्परा
13.4 समकालीन हिंदी आलोचना के प्रमुख आलोचक
13.5 समकालीन हिंदी आलोचना के विविध आयाम
13.6 समकालीन साहित्यिक पत्रिकाएँ
13.7 समकालीन हिंदी आलोचना के प्रमुख विमर्श
13.8 समकालीन हिन्दी आलोचना के प्रमुख बीज-शब्द
13.9 सारांश
13.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.11 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

यदि साहित्य जीवन की व्याख्या है और आलोचना साहित्य की व्याख्या तो कहना न होगा कि आलोचना मूलतः जीवन की ही व्याख्या है। आलोचना मात्र कोरी सैद्धांतिक उठापटक नहीं बल्कि सहज मानवीय जीवन की दोहरी व्याख्या है। संसार भर की अन्य साहित्यिक परम्पराओं की ही भांति हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में भी साहित्य और आलोचना की परस्पर सहभागिता अपना स्पष्ट महत्त्व रखती है। निश्चित ही जिस प्रकार अच्छी आलोचना के लिए अच्छे साहित्य की ज़रूरत होती है उसी प्रकार महान साहित्य के लिए गभीर आलोचना की भी आवश्यकता होती है। शिक्षार्थी जानते ही हैं कि हिंदी आलोचना की अपनी स्पष्ट और दीर्घ परम्परा रही है, जिसका क्रमशः विकास हुआ है। अब तक की इकाईयों में आपने जाना है कि भारतेंदु युग के आरम्भ होकर क्रमिक रूप से हिंदी आलोचना का विकास कैसे हुआ। हिन्दी आलोचना में ठेठ हिंदी का जातीय स्वरुप तो रहा ही है साथ ही इसने प्राचीन संस्कृत आलोचना और पश्चिम की सैद्धांतिकी को भी मौलिक रूप में आत्मसात किया है।

प्रस्तुत इकाई में शिक्षार्थी आधुनिक हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी आलोचना का एक संक्षिप्त अध्ययन करेंगे।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात शिक्षार्थी –

- हिंदी साहित्य के संदर्भ में समकालीनता को समझ सकेंगे।
- समकालीन हिन्दी आलोचना की संक्षिप्त रूपरेखा को जान सकेंगे।
- समकालीन हिन्दी आलोचना के क्रमिक विकास को जान सकेंगे।
- हिंदी के प्रमुख आलोचकों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- हिंदी की प्रमुख लघु पत्रिकाओं, कुछ प्रमुख आलोचनात्मक विमर्शों को जान सकेंगे।
- समकालीन हिंदी आलोचना के कुछ महत्त्वपूर्ण बीज-शब्दों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

13.3 समकालीन हिंदी आलोचना : अर्थ एवं सीमा

समकालीन हिंदी आलोचना का विश्लेषण करते हुए जैसा कि हिंदी के शीर्षस्त कवि-आलोचक शिरीष मौर्य ने लिखा है, "समकालीन एक ऐसा पद है, जिसमें कम से कम तीन पीढ़ियां समाहित हो सकती हैं। तीन उम्रों के आलोचक। हिंदी आलोचना की समकालीनता भी कमोबेश ऐसी ही है। पहली पीढ़ी में नामवर सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, मैनेजर पांडेय, नंदकिशोर नवल, कमला प्रसाद और परमानंद श्रीवास्तव हैं। दूसरी पीढ़ी में पुरुषोत्तम अग्रवाल, सुधीश पचौरी, जीवन सिंह, वागीश शुक्ल, मदन सोनी आदि हैं। तीसरी पीढ़ी में प्रणय कृष्ण, कृष्णमोहन, आशुतोष कुमार, अनिल त्रिपाठी, ज्योतिष जोशी, पंकज चतुर्वेदी, व्योमेश शुक्ल आदि। इस पहली, दूसरी और तीसरी पीढ़ी में कुछ समकालीन कवि भी हैं, जिन्होंने अत्यन्त समर्थ आलोचना लिखी है। समकालीन कवि-आलोचक की अंतर्धाराएं भी अलग-अलग हैं। चन्द्रकान्त देवताल, अशोक वाजपेयी, विष्णु खरे, राजेश जोशी, अरुण कमल, विष्णु नागर, विजय कुमार, मंगलेश डबराल, लीलाधर मंडलोई आदि।

"नामवर सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, मैनेजर पांडे, परमानन्द श्रीवास्तव समेत कई बाद तक के आलोचक प्रतिबद्ध मार्क्सवादी हैं। दूसरे छोर पर मार्क्सवाद का विरोध या उससे निस्पृहता है , रमेशचंद्र साह, अशोक वाजपेयी, वागीश शुक्ल, मदन सोनी, ज्योतिष जोशी आदि। नई पीढ़ी में सभी समर्थ आलोचक मार्क्सवादी हैं, जैसे प्रणय कृष्ण, आशुतोष कुमार, पंकज चतुर्वेदी, कृष्णमोहन आदि"।

13.3.1. हिंदी आलोचना की परम्परा

हिंदी आलोचना का इतिहास अत्यंत समृद्ध और विकासशील रहा है। संस्कृत काव्यशास्त्र की शास्त्रीय परंपरा से लेकर आधुनिक काल की मार्क्सवादी और व्यक्तिवादी आलोचना तक, हिंदी आलोचना ने कई वैचारिक पड़ाव तय किए हैं। हिंदी आलोचना के आरंभिक युग में संस्कृत काव्यशास्त्र के रस, अलंकार, रीति, औचित्य और ध्वनि जैसे सिद्धांतों का प्रभाव था। हालाँकि ये सिद्धांत काव्य

की आत्मा के अनुसंधान में सक्षम थे, किंतु ये अक्सर आरोपित प्रतीत होते थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी आलोचना को एक नई दिशा दी। उन्होंने साहित्य की श्रेष्ठता का आधार कवि की मूल्य-दृष्टि को बनाया। आचार्य शुक्ल ने 'लोकमंगल' की अवधारणा के माध्यम से गोस्वामी तुलसीदास को हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनकी दृष्टि में काव्य केवल व्यक्तिगत आनंद का विषय नहीं, बल्कि लोक के पोषण का साधन था।

आचार्य शुक्ल के पश्चात हिंदी आलोचना में दो मुख्य धाराएँ लक्षित होती हैं । एक ओर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी थे, जिन्होंने आदिकालीन हिंदी कविता और मध्यकालीन संत काव्य – विशेषतः कबीर के महत्त्व का साहित्यिक विवेचन किया । वहीं दूसरी ओर नंददुलारे वाजपेयी ने छायावादी काव्य के सौंदर्य और उसकी आंतरिक शक्ति साहित्यिक विश्लेषण किया । हालाकि इन दोनों ही आलोचकों ने आचार्य शुक्ल की मान्यताओं के विपरीत अपनी नवीन और मौलिक स्थापनाएं प्रस्तुत की थी परन्तु प्रकारांतर से इन दोनों ही आलोचकों ने आचार्य शुक्ल की आलोचना परम्परा का ही विकास प्रस्तुत किया।

हिन्दी आलोचना के इस जातीय उत्थान के बाद इस क्षेत्र में मार्क्सवादी-समाजवादी सैद्धांतिकी का प्रभाव बढ़ने लगा ।

हिंदी आलोचना के इतिहास में डॉ. शिवदान सिंह चौहान और डॉ. रामविलास शर्मा का आगमन एक क्रांतिकारी मोड़ था। इन्होंने मार्क्सवादी चिंतन को अपनी आलोचना की आधार बनाया। इस धारा ने साहित्य को वर्ग-संघर्ष के एक अस्त्र के रूप में देखा। यहाँ सारा बल इस बात पर था कि साहित्य समाज के शोषित वर्ग के पक्ष में खड़ा हो। नामवर सिंह ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। उनकी कृति 'कविता के नये प्रतिमान' ने हिंदी आलोचना के क्षेत्र में एक नए वैचारिक विमर्श को जन्म दिया । नामवर सिंह का द्वंद्व यह था कि वे एक ओर मार्क्सवादी प्रतिबद्धता से जुड़े थे, तो दूसरी ओर काव्य के रसज्ञ भावक के साथ-साथ पश्चिम की आलोचनात्मक सैद्धांतिकी – न्यू क्रिटिसिज्म – से प्रभावित भी । उनके बाद के दौर में मैनेजर पाण्डेय, शिवकुमार मिश्र और डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र जैसे आलोचकों ने शुद्ध मार्क्सवादी वैचारिकता को और अधिक दृढ़ता प्रदान की। 1980 के बाद की हिंदी आलोचना केवल साहित्यिक कृतियों की व्याख्या नहीं है, बल्कि वह सभ्यतागत संकटों और सामाजिक बदलावों का एक जीवंत दस्तावेज़ है। इस कालखंड में आलोचना ने 'सत्ता-विमर्श' (पावर पॉलिटिक्स) और 'ज्ञान' के संबंधों की पड़ताल शुरू की। जहाँ नामवर सिंह ने संवाद की संस्कृति को जीवित रखा, वहीं अशोक वाजपेयी ने कलात्मक स्वायत्तता पर बल दिया। इसी दौर के अगले चरण के रूप में पुरुषोत्तम अग्रवाल ने कबीर जैसे कवि को अपनी मौलिख और महत्त्वपूर्ण अवधारणा - 'देशज आधुनिकता'

के आधार पर विश्लेषित किया और गरिमा श्रीवास्तव प्रतिबद्ध जैसे स्वर ने अस्मितामूलक स्त्री विमर्श को देह से आगे बढ़ाकर इतिहास और स्मृति तक पहुँचाया।

13.4 समकालीन हिंदी आलोचना के प्रमुख आलोचक

1. डॉ. नामवर सिंह : (जन्म - 1926 , मृत्यु - 2019)

नामवर सिंह इस दौर के सबसे प्रभावशाली आलोचक रहे हैं। उन्होंने आलोचना को पारस्परिक संवाद के रूप में स्थापित किया। साहित्य के अंतर्गत 'दूसरी परंपरा की खोज' और सैद्धांतिक रूप से 'वाद-विवाद-संवाद' को उनकी आलोचना का आधार माना जा सकता है । उन्होंने स्थापित किया कि साहित्य में एक मुख्यधारा के समानांतर हमेशा एक विद्रोही लोक-परंपरा की उपस्थिति रहती है। उन्होंने मार्क्सवादी आलोचना को कट्टरता से मुक्त कर उसमें 'लोकतांत्रिक संवाद' को स्थान दिया। नामवर सिंह का मानना है कि "आलोचना यदि कुछ है, तो वह रचना के साथ संवाद है; और यह संवाद तभी संभव है जब हम रचना को उसकी पूरी ऐतिहासिकता और सामाजिकता में देखें।" 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ', 'पृथ्वीराज रासो की भाषा', 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग', 'छायावाद, 'इतिहास और आलोचना', 'वाद-विवाद-संवाद' (1989), 'दूसरी परंपरा की खोज' (1982), 'कविता के नए प्रतिमा, 'कहानी नई कहानी'उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं ।

(शिक्षार्थियों से यह आशा की जाती है कि वे इंटरनेट अथवा किसी सार्वजनिक पुस्तकालय से नामवर सिंह की अन्य पुस्तकों के विषय में जानकारी एकत्रित करेंगे)

2. अशोक वाजपेयी : (जन्म - 1941) वरिष्ठ कवि, आलोचक, कला मर्मज्ञ एवं सुरुचिपूर्ण संपादक श्री अशोक वाजपेयी समकालीन हिंदी आलोचना के बहुत महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं । सैद्धांतिक रूप से कला की स्वायत्तता और कविता का अक्षय महत्व अशोक जी की वैचारिकी का अनोखापन मना जा सकता है । समकालीन आलोचना में अशोक वाजपेयी एक ऐसे आलोचक हैं जिन्होंने कविता की 'साहित्यिकता' और 'कलात्मक गरिमा' को विचारधारा के दबावों से मुक्त रखने का प्रयास किया। उन्होंने मार्क्सवादी आलोचना के गुरुडम का विरोध किया और सौंदर्यशास्त्र को प्रधानता दी। उनकी पुस्तकें 'शहर अब भी संभावना है', 'तत्पुरुष', 'समय के पास समय', 'थोड़ी सी जगह', 'कविता का गल्प', 'फिलहाल', 'कविता का जनपद' और 'पूर्वग्रह' कविता के प्रति उनके समर्पण को दर्शाती हैं। साहित्य या प्रकारांतर से कला की स्वायत्तता को महत्त्वपूर्ण मानते हुए अशोक जी का कहना है कि, "साहित्य का काम राजनीति का पिछलग्गू बनना नहीं है। कविता अपने समय के अंधेरे से टकराती ज़रूर है, लेकिन उसकी अपनी एक भाषा और अपनी एक नैतिकता होती है, जिसे कलात्मक स्वायत्तता

कहते हैं"। अपनी विवेकसंपन्न आलोचकीय दृष्टि से उन्होंने समकालीन हिन्दी कविता को ' कोरी नारेबाजी' से विलगाकर 'संवेदना के सौंदर्य' की ओर मोड़ने का वैचारिक आधार तैयार किया।

(शिक्षार्थियों से यह आशा की जाती है कि वे इंटरनेट अथवा किसी सार्वजनिक पुस्तकालय से अशोक वाजपेयी की अन्य पुस्तकों के विषय में जानकारी एकत्रित करेंगे।)

3. प्रोफ़ेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल : (जन्म : 1955) 'अकथ कहानी प्रेम की'(2009) पुरुषोत्तम अग्रवाल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। पुरुषोत्तम अग्रवाल ने हिंदी आलोचना को पश्चिम की आयातित दृष्टि से देखने के बजाय भारतीय (गैर पश्चिम-एशियाई-अफ्रीकी) समाज की अपनी वास्तविकता में देखने की दृष्टि प्रदान की । अपनी पुस्तक में उन्होंने कबीर को केवल एक विद्रोही संत के रूप में नहीं, बल्कि 'भारतीय आधुनिकता' के पहले प्रवक्ता के रूप में प्रस्तुत किया। पुरुषोत्तम अगरवाल ने लिखा कि, "कबीर की आधुनिकता पश्चिम से नहीं आई थी, वह इस देश की मिट्टी और यहाँ के श्रमजीवी समाज की अपनी उपज थी। कबीर का धर्म मनुष्यता का धर्म था, जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है"। पुरुषोत्तम जी ने समकालीन हिंदी आलोचना को 'मध्यकालीन भक्ति कविता' को विश्लेषित करने की नवीन दृष्टि प्रदान की ।

प्रोफ़ेसर अग्रवाल की कुछ प्रमुख पुस्तकें हैं – 'अकथ कहानी प्रेम की' , तीसरा रुख', 'संस्कृति : वर्चस्व और प्रतिरोध', 'भारतमाता', 'विचार का अनंत', 'नाकोहस'।

(शिक्षार्थियों से यह आशा की जाती है कि वे इंटरनेट अथवा किसी सार्वजनिक पुस्तकालय से पुरुषोत्तम अग्रवाल की अन्य पुस्तकों के विषय में जानकारी एकत्रित करेंगे।)

4. गरिमा श्रीवास्तव : (जन्म - 1970) सुप्रसिद्ध आलोचक गरिमा श्रीवास्तव ने समकालीन हिंदी आलोचना को स्त्री दृष्टि और शोधपरक विमर्श का एक नया वैचारिक आयाम प्रदान किया है। उन्होंने केवल समकालीनता पर ही नहीं, बल्कि हिंदी समाज में 'इतिहास और स्मृति' के अंतर्संबंधों पर भी अपने आलोचना कर्म को केंद्रित किया है। उन्होंने स्त्री के दुख को केवल विलाप नहीं, बल्कि एक 'ऐतिहासिक चेतना' के रूप में देखने का प्रयत्न किया है। उनकी कृतियाँ जैसे 'देह ही देश' और 'हिंदी नवजागरण : इतिहास गल्प और स्त्री प्रश्न' स्त्री विमर्श के इन्हीं गंभीर आयामों को विश्लेषित करती हैं। गरिमा श्रीवास्तव का मानना है कि, "स्त्री का लेखन केवल शिकायत का दस्तावेज़ नहीं है, वह उन मौन क्षेत्रों को आवाज़ देना है जिन्हें इतिहास ने हाशिए पर डाल दिया था। स्त्री आलोचना दरअसल पुरुष-सत्तात्मक भाषा का विखंडन है" । गरिमा श्रीवास्तव ने प्रवासी साहित्य और युद्धकालीन स्त्रियों के संकटों पर गंभीर विमर्शात्मक कार्य कियाहै और समकालीन हिंदी आलोचना के भूगोल को वैश्विक बनाया।

(शिक्षार्थियों से यह आशा की जाती है कि वे इंटरनेट अथवा किसी सार्वजनिक पुस्तकालय से गरिमा श्रीवास्तव की अन्य पुस्तकों के विषय में जानकारी एकत्रित करेंगे।)

13.5 समकालीन हिंदी आलोचना के विविध आयाम

जैसा कि शिक्षार्थियों को बताया गया है कि समकालीन हिंदी आलोचना का एक बढ़ा हिस्सा मार्क्सवादी आलोचना के रूप में जाना जाता है। समकालीन हिंदी आलोचना के अधिकाँश मुख्य आलोचक मार्क्सवाद से प्रभावित रहे हैं । नामवर सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, मैनेजर पांडे, परमानन्द श्रीवास्तव समेत कई बाद तक के आलोचक प्रतिबद्ध मार्क्सवादी हैं। दूसरे छोर पर मार्क्सवाद का विरोध या उससे निस्पृहता है , रमेशचंद्र साह, अशोक वाजपेयी, वागीश शुक्ल, मदन सोनी, ज्योतिष जोशी आदि। नई पीढ़ी में सभी समर्थ आलोचक मार्क्सवादी हैं, जैसे प्रणय कृष्ण, आशुतोष कुमार, पंकज चतुर्वेदी, कृष्णमोहन आदि। इसके अतिरिक्त दलित चेतना के आलोचक डॉ. धर्मवीर और ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भी अपनी सघन उपस्तिथि अंकित की है । सुधीश पचौरी, वागीश शुक्ल और मदन सोनी की आलोचनात्मक पुस्तकों ने समकालीन हिन्दी आलोचना को उत्तर आधुनिक विमर्श के का एक और आयाम दिया है । इस कालखंड में आलोचना केवल भारी-भरकम ग्रंथों तक सीमित नहीं रही। वर्ष 2000 के पश्चात इंटरनेट और सोशल मीडिया के उदय ने समकालीन हिंदी आलोचना को गतिमान बनाया। अब हिंदी आलोचना का परिदृश्य मात्र लिखित-प्रकाशित आलोचना पुस्तकों और पत्रिकाओं मात्र के बंधन से बाहर निकलकर ब्लॉग की दुनिया तक पहुँची। हालांकि इससे गंभीरता में कुछ कमी आई, लेकिन साहित्य का 'लोकतंत्रीकरण' हुआ।

1980 से 2015 तक की हिंदी आलोचना की यात्रा यह इंगित करती है कि हिंदी समाज अपनी जड़ों को पहचान रहा है। जहाँ नामवर सिंह और अशोक वाजपेयी के बीच के मतभेद 'विचारधारा बनाम कला' की बहस को जीवित रखते हैं, वहीं पुरुषोत्तम अग्रवाल और गरिमा श्रीवास्तव जैसे विद्वान आलोचना को इतिहास, अस्मिता, समाजशास्त्र और लैंगिक विमर्श के नए आयामों से विश्लेषित करते हैं। उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह समझना अनिवार्य है कि आलोचना केवल दोष निकालना नहीं, बल्कि रचना के भीतर छिपी 'मानवीय संवेदना' की अनथक खोज है। 1980 के बाद की हिंदी आलोचना एक ऐसे युग में प्रवेश करती है जहाँ 'महावृत्तांतों' का अंत होता है और 'अस्मितामूलक विमर्शों' का उदय होता है। इस दौर में आलोचना केवल कृतियों का मूल्यांकन नहीं रही, बल्कि वह समाज, सत्ता और संस्कृति के अंतर्संबंधों को उघाड़ने वाली एक बौद्धिक प्रक्रिया बन गई।

आम तौर पर यह माना जाता है कि 1980 के दशक तक हिंदी आलोचना पर समाजवादी-मार्क्सवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव था। किंतु 1990 के 'आर्थिक वैश्वीकरण' और 'मंडल कमीशन' एवं 'दक्षिणपंथी राजनैतिक उभार' के उत्तर राजनैतिक परिदृश्य ने हिंदी साहित्य एवं समकालीन आलोचना के नए प्रतिमान स्थापित किए।

छात्रों के पुनर्स्मरण हेतु - प्रमुख आलोचक : पुस्तकें और विमर्श

आलोचक	कुछ प्रमुख पुस्तकें	विमर्श
नामवर सिंह	वाद-विवाद-संवाद, इतिहास और आलोचना, कविता के नए प्रतिमान, कहानी नई कहानी , दूसरी परम्परा की खोज	आलोचना में संवाद की संस्कृति और विचार एवं साहित्य की 'दूसरी परंपरा'
अशोक वाजपेयी	कविता का जनपद, पूर्वग्रह , कवि कह गया है, फिलहाल	कला एवं साहित्य की स्वायत्ता
पुरुषोत्तम अग्रवाल	अकथ कहानी प्रेम की, तीसरा रुख, विचार का अनंत, संस्कृति : वर्चस्व और प्रतिरोध	'देशज आधुनिकता' के विमर्श की स्थापना
धर्मवीर	कबीर: बाज भी, कपोत भी, कबीर के आलोचक	स्वानुभूतिगत दलित विमर्श
गरिमा श्रीवास्तव	देह ही देश , आउशवित्ज़	स्त्री विमर्श, स्त्री अस्मिता का विश्लेषण

13.6 समकालीन साहित्यिक पत्रिकाएँ

किसी भी भाषा के आलोचना के विकास में लघु पत्रिकाओं का अपना विशेष महत्त्व होता है। लघु पत्रिकाओं में प्रकाशित होने नए साहित्य और नवीन पुस्तकों की समीक्षाओं के साथ-साथ समकालीन वैश्विक और देशज विमर्श के अंतर्गुम्फन के आधार पर ही समकालीन आलोचना का विकास होता है। इस सब प्रक्रिया में लघु पत्रिकाएँ ही वह मंच है जहाँ समकालीन साहित्य पर सबसे अधिक और महत्त्वपूर्ण विमर्श होता है। हिन्दी आलोचना के इतिहास में भी लघु पत्रिकाओं ने अपनी इस सकारात्मक और निर्णयात्मक भूमिका को निर्वहन किया है। समकालीन हिंदी आलोचना के परिदृश्य की कुछ प्रमुख लघु पत्रिकाओं की संक्षिप्त जानकारी शिक्षार्थियों के लिए लाभकारी होगी।

1. हंस (संपादक : राजेंद्र यादव / वर्तमान संपादक – संजय सहाय) मुंशी प्रेमचंद द्वारा स्थापित इस पत्रिका का पुनर्जन्म 1986 में राजेंद्र यादव के संपादन में हुआ। हंस में प्रकाशित सृजनात्मक साहित्य

ने (विशेषकर कहानी और वैचारिक लेखों और सम्पादकीय ने)समकालीन आलोचना को गहरे अर्थ में प्रभावित किया। 'हंस' ने नए कहानीकारों को निरंतर प्रोत्साहित कर के दलित और स्त्री जैसे महत्त्वपूर्ण अस्मितामूलक विमर्शों को हिंदी आलोचना के केंद्र में स्थापित किया। इसके संपादकीय लेखों ने पारंपरिक और शास्त्रोक्त साहित्यिक मानदंडों को चुनौती दी। हंस के सम्पादक राजेंद्र यादव ने 'हंस' के माध्यम से साहित्य के 'पवित्रतावाद' को तोड़ा और 'देह-विमर्श' जैसे साहसी विषयों पर बहस शुरू की। इसने आलोचना को एक उग्र और प्रतिरोधी तेवर दिया।

2. तद्भव (संपादक : अखिलेश) लखनऊ से प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका ने 1999 के बाद हिंदी आलोचना को एक नई गंभीरता और 'साहित्यिकता' प्रदान की। जब आलोचना केवल विचारधाराओं की शिकार हो रही थी, तब 'तद्भव' ने रचना और आलोचना के मध्य के गहरे संबंध को पुनर्जीवित किया। 'तद्भव' में समय-समय पर सर्वश्री राजेन्द्र यादव, नामवर सिंह और अशोक वाजपेयी जैसे हिंदी के प्रमुख हस्ताक्षरों के साथ-साथ अन्य प्रतिष्ठित एवं नए रचनाकारों के महत्वपूर्ण वैचारिक लेख , संस्मरण और साक्षात्कार प्रकाशित होते रहे हैं। 'तद्भव' ने 'स्मृति-आलोचना' और 'संस्कृति-विमर्श' को बढ़ावा दिया।

3. आलोचना (संपादक : नामवर सिंह - वर्तमान सम्पादक – आशुतोष/संजीव कुमार) राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित यह पत्रिका शुद्ध रूप से आलोचना को समर्पित है। यह पत्रिका हिंदी आलोचना का 'बौद्धिक मानक' मानी जाती है। 1980 के बाद नामवर सिंह के लंबे संपादन काल में इसने मार्क्सवादी और प्रगतिशील आलोचना को विस्तार दिया। 'आलोचना' पत्रिका ने अपने कई अंकों में उत्तर-आधुनिकतावाद, विखंडनवाद और वैश्विक सिद्धांतों पर गंभीर विमर्श को संचालित – प्रसारित किया । यह शोधार्थियों और प्राध्यापकों के लिए आलोचनात्मक प्रतिमानों का मुख्य स्रोत रही है।

4. नया ज्ञानोदय (संपादक: प्रभाकर श्रोत्रिय/रविंद्र कालिया वर्तमान में मधुसूदन आनंद) भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित इस पत्रिका ने आलोचना को 'लोकप्रिय' और 'पठनीय' बनाया। इस पत्रिका ने विशेष विशेषांकों (जैसे- 'स्त्री विमर्श अंक', 'युवा अंक') के माध्यम से हिंदी आलोचना को नए अस्मितामूलक विमर्शों से जोड़ने का प्रयास किया है। नया ज्ञानोदय ने समकालीन बाजारवाद, वैश्वीकरण और बदलती जीवनशैली के साहित्य पर पड़ने वाले प्रभावों की पड़ताल की। आलोचना यहाँ केवल साहित्यिक पाठ मात्र तक सीमित न रहकर सांस्कृतिक अध्ययन का आधार बन गई।

5. वागर्थ (संपादक: वर्तमान में शंभुनाथ) भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता से प्रकाशित यह पत्रिका भाषाई समन्वय और गंभीर विमर्श का प्रतीक है। 'वागर्थ' ने हिंदी आलोचना को अन्य भारतीय भाषाओं (जैसे मराठी, बांग्ला, तमिल) की आलोचनात्मक पद्धतियों के साथ जोड़कर देखा। वागर्थ ने

समय-समय पर 'भारतीयता' और 'आधुनिकता' के परस्पर सम्बन्धों पर गंभीर विमर्श को विश्लेषित करने का प्रयत्न किया है। शंभुनाथ के संपादन में इसने 'सभ्यतागत आलोचना' और 'सांप्रदायिकता के विरुद्ध साहित्य' जैसे विषयों पर निरंतर गंभीरतापूर्वक विचार-विमर्श किया।

अभ्यास प्रश्न – इकाई के पूर्व में पठित भाग के आधार पर निम्नलिखित आलोचकों की दो-दो पुस्तकों का नाम लिखिए।

आलोचक	पुस्तकों का नाम
नामवर सिंह	....
अशोक वाजपेयी	....
पुरुषोत्तम अग्रवाल	....
धर्मवीर	....
गरिमा श्रीवास्तव	....

13.7 समकालीन हिंदी आलोचना के प्रमुख विमर्श

आज की हिंदी आलोचना अपने 'शास्त्रीय' ढाँचे से बाहर निकलकर बहुस्वरता और प्रजातांत्रिकता के मूल्यों से परिचालित है ।। अब यह केवल कुछ बड़े आलोचकों के 'निर्णयों' तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें अस्मितामूलक विमर्शों (स्त्री, दलित, आदिवासी) की प्रधानता है। वर्तमान स्वरूप की सबसे बड़ी विशेषता 'सांस्कृतिक अध्ययन' का प्रभाव है, जहाँ आलोचना केवल कविता-कहानी तक सीमित न रहकर बाज़ार, मीडिया, सिनेमा और इंटरनेट के प्रभावों की भी पड़ताल कर रही है। इस संदर्भ में सुधीश पचौरी का नाम लिया जा सकता है। प्रोफ़ेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल ने हिंदी आलोचना को '1857 की सांस्कृतिक चेतना और हिंदी नवजागरण के अंतर्द्वंद', 'देशज आधुनिकता' के विमर्शपूर्ण प्रतिमान और मध्यकालीन भक्ति कविता के नवीन विश्लेषण से पूर्ण किया।

आज ध्यान से देखने पर यह कहा जा सकता है कि हिंदी आलोचना का भविष्य डिजिटल और बहु – अंतरविषयी होगा। निश्चित ही भविष्य में आलोचना अकादमिक आयामों से बहार निकलकर सोशल मीडिया और डिजिटल माध्यमों पर अपनी जगह बनाएगी, जिससे यह और अधिक संवादधर्मी होगी। भविष्य में साहित्य और आलोचना 'पर्यावरणवाद' और 'उत्तर-मानववाद', 'उत्तर सत्य' जैसे नए विमर्श केंद्र में होंगे। चुनौती केवल इतनी होगी कि इस सूचना-विस्फोट के दौर में आलोचना अपनी वस्तुनिष्ठता और गंभीरता को कैसे बचाए रखती है। अंततः, भविष्य की आलोचना

अधिक समावेशी होगी, जो केवल पाठ की व्याख्या नहीं, बल्कि 'संवेगात्मक मानवता' के अस्तित्व की रक्षा का माध्यम बनेगी।

समकालीन हिंदी आलोचना के प्रमुख विमर्श -

दलित विमर्श - यह विमर्श जातिगत भेदभाव के विरुद्ध 'स्वानुभूति' (खुद का भोगा हुआ सच) को आधार बनाता है। यह मानता है कि सौंदर्यशास्त्र का आधार केवल आनंद नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय होना चाहिए।

स्त्री विमर्श - पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की अस्मिता, उसके अधिकार और उसकी स्वतंत्र चेतना को केंद्र में रखकर साहित्य का विवेचन करना स्त्री विमर्श का मूल है। यह देह से ऊपर उठकर सत्ता में भागीदारी की बात करता है।

आदिवासी विमर्श - यह विमर्श समग्र पारिस्थितिकी और अपनी विशिष्ट संस्कृति को संरक्षित करने के उद्देश्य से परिचालित सैद्धांतिकी पर आधारित है। यह विकास की 'आधुनिक पश्चिमी अवधारणा' को प्रश्नांकित करता है और प्रकृति के साथ मनुष्य के सह-अस्तित्व की वकालत करता है।

उत्तर-आधुनिक विमर्श - यह विमर्श किसी भी एक सत्य या 'महावृत्तांत' को नहीं मानता। यह बाज़ार, मीडिया, विखंडन और सत्यों की बहुलता पर ज़ोर देता है। सुधीश पचौरी का लेखन इस विमर्श का प्रमुख उदाहरण है।

अल्पसंख्यक विमर्श - यह समाज के उन समुदायों की पीड़ा और संघर्ष को रेखांकित करता है जो धार्मिक या भाषाई आधार पर हाशिए पर हैं। यह लोकतंत्र में विविधता और सहिष्णुता के महत्व को आलोचना का विषय बनाता है।

13.8 समकालीन हिन्दी आलोचना के प्रमुख बीज-शब्द

स्वानुभूति - दलित आलोचना का सबसे महत्वपूर्ण शब्द। इसका अर्थ है कि रचनाकार ने जो स्वयं भोगा है, वही सत्य है। यह 'सहानुभूति' के विरोध में खड़ा है।

अस्मिता (आइडेंटिटी) - समकालीन दौर 'अस्मिता' की खोज का दौर है। चाहे वह दलित हो, स्त्री हो या आदिवासी, हर वर्ग अपनी पहचान और गौरव को साहित्य में तलाश रहा है।

प्रतिमान (कैनन) - आलोचना में 'प्रतिमान' का अर्थ है वे पैमाने जिनसे किसी रचना को परखा जाता है। जैसे नामवर सिंह की पुस्तक 'कविता के नए प्रतिमान'। आज पुराने प्रतिमान बदल रहे हैं।

विखंडन (डी-कंस्ट्रक्शन) - यह उत्तर-आधुनिकता का बीज-शब्द है। इसका अर्थ है किसी स्थापित अर्थ या विचारधारा की परतों को खोलकर यह दिखाना कि उसमें अंतर्विरोध छिपे हैं।

13.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त शिक्षार्थियों को समकालीन हिंदी आलोचना का एक संक्षिप्त परिचय प्राप्त हुआ होगा। शिक्षार्थियों ने समकालीन हिंदी आलोचना की पृष्ठभूमि को जाना

और समकालीन हिंदी आलोचना की प्रमुख प्रवृत्तिओं का भी अध्ययन किया । शिक्षार्थियों ने समकालीन हिंदी आलोचना के प्रमुख आलोचकों और आंकी आलोचनात्मक सैद्धांतिकी को भी जाना । इसी क्रम में शिक्षार्थियों ने समकालीन हिंदी आलोचना के प्रमुख विमर्शों और कुछ परमुख बीज शब्दों का ज्ञान भी प्राप्त किया । आशा करते हैं कि शिक्षार्थी भविष्य में इस इकाई को ध्यान में रखते हुए अन्य संदर्भों के माध्यम से भी समकालीन हिन्दी आलोचना का अध्ययन करेंगे ।

13.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिंदी आलोचना का विकास, नंदकिशोर नवल, 1981, राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली ।
2. हिंदी साहित्य और सम्वेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, 1998, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।
3. हिंदी आलोचना, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।
4. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, 2022, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
5. MAHL 104, हिंदी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ।

13.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. समकालीनता से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट कीजिए । समकालीन हिन्दी आलोचना के प्रमुख आलोचकों का संक्षिप्त परिचय देते हुए और परमुख विमर्शों विश्लेषण कीजिए ।
2. समकालीन हिन्दी आलोचना पर एक विस्तृत निबंध लिखिए ।

इकाई 14 : सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना: परिचय
14.4 सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना: प्रमुख स्थापनाएं
14.5 सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना: मूल्यांकन
14.6 सारांश
14.7 शब्दावली
14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.11 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

सौंदर्य को शास्त्रीय आधार पर प्रतिष्ठित करने की पद्धति को ही सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना कहा गया है | रीति वादी आचार्य वामन ने सौंदर्यम अलंकार कहा था | यानी सौंदर्य ही कविता का मूल है | लेकिन रीति व अलंकार के सन्दर्भ में सौंदर्य की बात करना अलग बात है और सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना अलग चीज़ | हाँ हम प्रस्थान की दृष्टि से सौंदर्य सम्बन्धी आचार्य वामन के मत को अवश्य स्वीकार कर सकते हैं | आचार्य वामन ने स्पष्ट तौर पर कहा था कि काव्य का सौंदर्य ही अलंकार है तथा काव्य अलंकारों के कारण ही ग्राहय होता है | इसी क्रम में दंडी आदि अलंकार वादी आचार्यों ने भी कविता में अलंकार व सौंदर्य की सत्ता को मुख्य माना | पंडित राज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्दों को काव्य कहा | प्रश्न है कि कविता या साहित्य का कार्य सौंदर्य की प्रतिष्ठा है या अन्य कुछ? सौंदर्यशास्त्रीय समीक्षा कविता के सौंदर्यवादी तत्वों को केंद्र मानकर अपने निष्कर्ष तय करता है |

14.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, हिंदी आलोचना शीर्षक पुस्तक की यह 14 वीं इकाई है| इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

* सौंदर्यशास्त्रीय समीक्षा का अर्थ समझ सकेंगे
* सौंदर्यशास्त्रीय समीक्षा के मुख्य तत्वों से परिचित हो सकेंगे

* सौंदर्यशास्त्रीय समीक्षा के मुख्य समीक्षाकों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे
* सौंदर्यशास्त्रीयसमीक्षा के अवदान को समझ सकेंगे

14.3 सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना: परिचय

14.3.1 शौंदर्य शास्त्र का अर्थ

सौंदर्यशास्त्र शब्द अंग्रेजी के इस्थिटिक्स का हिंदी अनुवाद या पर्यायवाची है | सौंदर्य शब्द सुनते ही हमारे मन में अलंकार, बिम्ब या कला का चित्र उभरता है | हम जानते हैं कि पश्चिम में सौंदर्यशास्त्र में ललित कलाओं को भी समेट लिया गया है | भारतीय काव्यशास्त्र के प्रस्थान ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में भी रंगमंच, नृत्य, संगीत व अभिनय आदि को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है | किंतु कालांतर में साहित्य के भीतर केवल काव्य को ही केंद्रीयता मिली | अर्थ यह कि ललित कलाओं को साहित्य से इतर समझा जाने लगा | सौंदर्यशास्त्रीय समीक्षा सौंदर्य को केंद्र मानकर अपने मत का विस्तार करती है |

सौंदर्यशास्त्र शब्द के अर्थ ग्रहण को लेकर भी अनेक मत प्रचलित हैं | यहाँ हम कुछ अर्थ को देखेंगे | सौंदर्यबोध का एक अर्थ, 1- ऐसी वृत्ति से है जो जीवन, काव्य और कला में सौंदर्य को प्रतिष्ठित कराता है | सौंदर्यबोध रचनाकार और पाठक दोनों के स्तर पर उत्पन्न होने वाली प्रवृत्ति है | 2- इस अर्थ में हम उस वृत्ति को ले सकते हैं, जब हमारे मन में भाव, संवेग, कल्पना, विचार आदि मिलकर मन में एक सौंदर्य चेतना उत्पन्न कर देते हैं | 3- इस अर्थ में, मन में सौंदर्य का प्रभाव उत्पन्न होता है | मनन और चिंतन के आगे अब सौंदर्य आनंद तक चला जाता है | भारतीय काव्यशास्त्र में आनंद की बात अनेक स्थानों पर की गयी है | 4- इस अर्थ में सौंदर्य, कलागत अवधारणा के आधार पर प्रकट होती है | अर्थ यह कि कल किस रूप में अभिव्यक्त हो रही है? 5- ग्राहक या पाठक के स्तर पर सौंदर्य का प्रश्न भी कम महत्वपूर्ण नहीं | रचना या कला अपने मूल्यांकन की प्रक्रिया में या कि ग्रहण की प्रक्रिया में पाठकीय हस्तक्षेप की मांग करती हैं | सौंदर्य अपने आप में लगातार चलने वाली प्रक्रिया है | इस दृष्टि से यह समाज -रचनाकार -आस्वादक का त्रित्व रचने वाली प्रक्रिया है |

14.3.2 सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना का परिचय

सौंदर्यशास्त्रीय समीक्षा क्या है? इस समझ के पूर्व हमें सौंदर्य सम्बन्धी कुछ प्रमुख तथ्यों को समझना आवश्यक है | भारतीय समीक्षा पद्धति में भी और ग्रीक /यूनानी समीक्षा पद्धति में क्लासिकल वृत्तियों को केंद्रीय स्थान प्राप्त होता रहा| प्लेटो,अरस्तु आदि काव्यशास्त्रियों की मूल वृत्ति क्लासिक रही है| संस्कृत समीक्षा में भी काव्य की आत्मा खोजने के बहाने काव्य की उदात्त चेतना को खोजने का ही प्रयास किया जाता रहा है| लौंजाइनस ने तो काव्य की आत्मा को उदात्त ही कह दिया| लेकिन सौन्दर्य शास्त्रीय समीक्षा क्लासिक वृत्तियों से विचलन स्थापित करके विकसित होती है| शेक्सपियर के नाटकों में रोमेंटिक तत्व हैं| हिंदी का रीति साहित्य रोमेंटिक है| जहाँ भी क्लासिक वृत्तियों से हटकर सौन्दर्य

को कविता में केंद्रीय स्थान दिया जायेगा, वहाँ सौंदर्यशास्त्रीय समीक्षा उत्पन्न होगी| पूर्व में हमने रीति संप्रदाय के आचार्य वामन का जिक्र किया था| अलंकार, रीति, वक्रोक्ति आदि सम्प्रदायों को देह वादी कहा गया है| जबकि रस, ध्वनि जैसे संप्रदाय को आत्मवादी कहा गया| यहाँ हम रस, ध्वनि आदि काव्य सम्प्रदायों को क्लासिक की श्रेणी में रखेंगे और रीति, अलंकार आदि सम्प्रदायों को रोमेंटिक के अंतर्गत| यह द्वन्द्व हमेशा चलता रहा है| ग्रीक के क्लासिक केंद्र के समक्ष रोम का केंद्र खड़ा हो जाता है| लिरिकल वैलेडस के प्रकाशन के बाद रोमेंटिक आलोचना का जन्म होता है| इस आलोचना ने आगे चलकर सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना का पथ प्रशस्त किया|

आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे क्लासिक आलोचकों ने अपने समय के छायावादी आंदोलन को सहानुभूति न दे सके| इस कार्य को हिंदी समीक्षा में नंददुलारे बाजपेयी ने प्रारंभ किया| इसीलिए नंददुलारे बाजपेयी को सौंदर्यवादी समीक्षक कहा गया| यहाँ इस तथ्य की ओर संकेत करना भी उचित होगा कि सौंदर्यवादी समीक्षा को प्राय: वैयक्तिक रूचि व पक्षपात आदि से जोड़कर देखा जाता रहा है| अर्थ यह कि वस्तुनिष्ठ मानकों से हीन समीक्षा के तौर पर परिभाषित किया जाता रहा है| बावजूद कि कल्पना, बिम्ब आदि पर पर्याप्त महत्त्व देने के बाद भी सौंदर्य को हम मात्र वैयक्तिक नहीं मान सकते |

14.4.1 सौंदर्य और वस्तुनिष्ठता

सौंदर्य और वस्तुनिष्ठता का प्रश्न

एक भाववादी चिंतन के अनुसार वास्तविक पदार्थ ठीक इसलिए सुंदर नहीं हो सकता कि वह एक सजीव पदार्थ है, जिसे जीवन की वास्तविक प्रक्रिया की समूची कुरूपता और दुनिया भर के सौन्दर्यमूलक तत्वों का शिकार होना पड़ता है। यह एक प्रकार का विमर्श है जो सौंदर्य को वास्तविक, भाववादी ढंग से प्रस्थापित करने पर बल देता है। कई बार एक जीवित व्यक्ति के चित्र , उसकी मूर्ति उसकी वास्तविक आकृति से ज़्यादा सजीव- आकर्षक लगती है।क्या उसे इसी प्रकार देखें कि वास्तविक जीवन से ज़्यादा आकर्षक कला..साहित्य है? क्या जीवन का सौंदर्य हू-ब-हू हमें आकर्षित नहीं करता? या इसीलिए जीवन की संभावना या प्रतिरूपण हमें जीवन से ज़्यादा काम्य लगते हैं? जैसे आई.ए. रिचड्र्स प्रश्न उठाता है कि वास्तविक जीवन में हमारे सामने शेर (हिंसक जीव) आ जाए तो हम डर जाते हैं, किन्तु कला या साहित्य में हम उन्हीं दृश्यों को देखकर आनंदित होते हैं। दरअसल तब हमारे भीतर वृत्तियों/मनोवृत्तियों का संयोजन हो रहा होता है। हां यह तर्क एक हद तक ही ठीक है। दरअसल वास्तविक जीवन का सौंदर्य उसकी क्रियात्मकता/संघर्ष में निहित है। वहीं कला का सौंदर्य क्रिया के प्रभाव या प्रक्रिया में। वास्तविक जीवन में क्रिया की गति इतनी तेज़ होती है कि हम स्वयं उसके भोक्ता होकर उस गति में अंतर्भुक्त हो जाते हैं। हम तब द्रष्टा रूप में उस क्रिया में शामिल नहीं हो पाते, बल्कि क्रिया की बद्धता के रूप में अपने को उसमें शामिल पाते हैं। इसीलिए कई बार या प्रायः ही कला के भीतर क्रिया की प्रक्रिया या प्रभाव की गति में पाठक/दर्शक अपने को भोक्ता कम द्रष्टा

रूप में उस दृश्य में शामिल होता हुआ देखता है। जाहिर है यह प्रक्रिया, प्रभाव उसके 'बद्ध-रूपों 'से ज़्यादा लालित्यपूर्ण होता है। जब यथार्थवादी साहित्य में कहा जाता है कि इसमें वास्तविक जीवन-स्थितियों का निरूपण हुआ है, तब इसका तात्पर्य मात्र यह नहीं होता कि इसमें यथार्थ का रूपांतरण है, बल्कि यह होता है कि इस प्रकार के साहित्य में यथार्थ की प्रक्रिया को ठीक ढंग से पकड़ने का प्रयास किया गया है। वास्तविक जीवन से ज़्यादा लालित्यपूर्ण साहित्य होता है, इस कथन से यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा कि वास्तविक जीवन में सौंदर्य नहीं होता या वास्तविक जीवन का सौंदर्य हमारे लिए काम्य नहीं होता। वास्तविक जीवन में किसी प्राकृतिक स्थान, वस्तु (सुंदर स्थान, दृश्य , सूर्य, तारे... नदी, तालाब, समुद्र, , पहाड़, पेड़-पौधे...) को देखकर हम प्रसन्न होते हैं, आनंदित होते हैं...किसी सुंदर मनुष्य (स्त्री/ पुरुष) को देखकर हमारा हमारा सौन्दर्यभाव जाग्रत होता है...। किसी बच्चे को देखकर हम संरक्षणभाव से भर उठते है...उसकी क्रियाएं हमें रोमांचित करती हैं...। इन सब से हमारा दृश्य-बोध अत्यधिक जाग्रत/क्रियाशील हो उठता है। तब हम इन प्राकृतिक दृश्यों के प्रति अपने भीतर रागात्मक चेतना महसूस करते हैं। किन्तु एक मूर्ति, चित्र या ध्वनि के वर्णन हमें उस रूप में आनंदित नहीं करते, जिस प्रकार कि प्रत्यक्ष में करते हैं। किसी संगीत के वर्णन, स्वरलहरियों का साहित्यिक वर्णन उबाऊं हो सकता है, किन्तु प्रत्यक्ष में संगीत हमें सौंदर्य और आनंद से भर देता है। क्या इसे हम इन्द्रिय-आस्वाद की पृथकता के रूप में देखें। आंखों का सौंदर्य वास्तविक जीवन में ज़्यादा सुखकर है, ध्वनि प्रत्यक्ष में हमें आनंदित करता है...किन्तु साहित्य में, कला में या तो स्थूलता, चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्यकला...हमें आकर्षित करती है या उसकी अमूर्तता-जीवन संभावना-कल्पना-आदर्श। किसी व्यंजन का स्वाद प्रत्यक्ष इन्द्रिय (जिह्वा) का विषय है, साहित्यिक आनंद का विषय नहीं। पकवानों के लंबे (उम्दा) वर्णन भी हमें उबायेंगे ही, हमारे भीतर सौंदर्य आस्वाद पैदा नहीं करेंगे। क्यों? क्योंकि हर इन्द्रिय की संरचना अलग ढंग से क्रियाशील होती है। साहित्य इस ढंग से सौंदर्य के प्रत्यक्ष जीवन रूपों का अमूर्ती करण-सूक्ष्मीकरण कर देता है। साहित्य में आकर नदी, तालाब , पहाड़, चंद्र, सूर्य सिर्फ़ प्राकृतिक उपादान नहीं रह जाते, बल्कि वे मानवीय उपादान बन जाते हैं। एक सुंदर स्त्री किसी पुरुष को प्रीतिकर लगे, प्रिय लगे वास्तविक जीवन का सौंदर्य-उपादान हो सकता है, किन्तु वही साहित्य में आकर सुंदर स्त्री रचना-प्रेरणा, रचना-भूमि, घटना-नियंता...आदि बन जाती है।रामायण में वाल्मीकि ने सीता के सौंदर्य को जिस प्रकार रेखांकित किया है या होमर ने हेलेन के सौंदर्य को जिस प्रकार रेखांकित किया है...या टॉलस्टॉय ने आन्ना करेनिन्ना के सौंदर्य का चित्र खींचा है...ये सब चित्र प्रभावात्मक हैं। सौंदर्य वस्तुत: प्रभावात्मक आरोहण है। सौंदर्य प्रभावात्मक क्रिया है। सौंदर्य का मूल गुण उसका प्रभावात्मक संयोजन होता है। कोई स्त्री बहुत सुंदर हो, किन्तु उसका प्रभाव आदि न पड़ रहा हो तो वहां सुंदरता है, सौंदर्य नहीं। सौंदर्य मूल रूप से प्रभावात्मक गति या क्रिया है। सुंदरता एक स्थिति है, सौंदर्य एक क्रिया है। साहित्य या कलाएं इसीलिए विशिष्ट होती हैं कि वे सौंदर्य के प्रभावात्मक रूपों को हमारे सामने रखती हैं।

प्रश्न किया जा सकता है कि वास्तविक जीवन के सौंदर्य प्रभाव और साहित्यिक सौंदर्य प्रभाव के बीच क्या अंतर होता है? हम वास्तविक जीवन के सौंदर्यात्मक चित्रों/ दृश्यों को देखकर प्रभावात्मक आग्रह से भर उठते हैं। किसी सुंदर स्त्री को प्रत्यक्ष देख उससे प्रभावात्मक क्रियाशीलता ग्रहण करते हैं। ...यानी इन सौंदर्य रूपों में भी प्रभाव होता है, गति होती है, उत्प्रेरणा होती है। किंतु वह प्रभाव, उत्प्रेरणा, गति तात्कालिक उत्तेजना से ज़्यादा संचालित

होती है। किसी प्रेमिका को देख कोई प्रेमी बेचैन हो जाये या अपने भीतर आवेग, गति महसूस करे, किन्तु यह सब व्यक्तिगत स्तर पर घटित होता है। साहित्यिक सौंदर्य की उत्पत्ति का आधार व्यक्तिगत नहीं, सामूहिक- सामाजिक मनोवृत्तियों की एकतानता होती है। साहित्यिक सौंदर्य का प्रभाव तात्कालिक नहीं होता, वह कालबद्ध होकर भी उससे मुक्त होता है...इसलिए उस सौंदर्य का आस्वाद हर युग के व्यक्ति अपने स्तर पर ग्रहण करते हैं। ऐसा सौंदर्य अपने प्रभाव और क्रिया में लंबे इतिवृत्त को रचता है और इसलिए वह व्यापक प्रभाव उत्पन्न करता है। रामायण में सीता को देखकर हनुमान सोचते हैं- ऐसी सुंदरी के लिए यदि राम युद्ध न करते तो आश्चर्य ही होता...। होमर के महाकाव्य इलियड, ओडिसी में स्पष्ट रूप से संकेत किया गया है कि हेलेन का सौंदर्य युद्ध की घटनाओं के लिए ज़िम्मेदार है...मूल में है। वास्तविक जीवन में हम सौंदर्य को महसूस करते हैं, अनुभूत करते हैं, प्रभाव ग्रहण करते हैं और उस प्रभाव को अपने जीवन के घटनाक्रमों में शामिल कर लेते हैं; किन्तु साहित्यिक/कलात्मक सौंदर्य में हम उस सौंदर्य प्रभाव को क्रियात्मक-रूपों की श्रृंखला और कार्य-कारण से जोड़ते हुए जीवन के शाश्वत -मूल प्रश्नों को भी उसमें शामिल कर लेते हैं। यही कारण है कि साहित्यिक-कलात्मक सौंदर्य व्यक्तिगत होकर भी सार्वभौमिक होता है। वास्तविक जीवन के सौंदर्यात्मक दृश्य आत्मनिष्ठ, व्यक्तिगत होता है...वह सार्वभौमिक मनोवृत्ति को व्यक्तिगत स्तर पर देखता है, जबकि साहित्यिक सौंदर्य में वैयक्तिक मनोवृत्तियां भी वस्तुनिष्ठ, सार्वभौमिक स्तर पर संचरणशील होती हैं।

प्रश्न है कि सौंदर्य और सृजनकार के रिश्ते/संबंध किस प्रकार निर्मित होते हैं? विकसित होते हैं? एक कलाकार अपनी कला को कैसे ढालता है? एक कलाकार की हर कृति उसके सामने एक नयी चुनौती होती है। वह कला को हर बार नए ढंग से ढालता है...नए-नए अनुभव को कलात्मक रूप देना पड़ता है। एक कलाकार मूल रूप से सुंदर मूर्ति-चित्र या सुंदर कविता रचने के लिए कुछ नहीं सृजन करता, बावजूद एक सुंदर कृति/रचना का सृजन हो जाता है।कारण यह कि कलाकार जीवन को कुरुप बना देनेवाली जीवन स्थितियों का रचनात्मक विकल्प प्रस्तुत करने वाली रचनाओं/ कृतियों की सर्जना करता है। कलाकार के संघर्ष और कला का अंतरसंबंध स्थापित करते हुए निकोलाई गाबिलोविच चेर्निशवस्की ने लिखा है- जिस प्रकार वास्तविक जीवन के क्षेत्र में सुंदर प्रकृति के अन्य तत्वों के साथ द्वंद्व में विकसित होता है, उसी प्रकार कला के क्षेत्र में भी सुंदर का विकास रचनाकार के कतिपय संघर्षों और तक़ाज़ों के साथ द्वंद्व में होता है। जिस प्रकार यह द्वंद्व वास्तविक जीवन में सौंदर्य को बिगड़ने या नष्ट होने की संभावना भी कुछ कम नहीं रहती। जिस प्रकार वास्तविक जगत में सुंदर ऐसे प्रभावों के अंतर्गत विकसित होता है जो बाह्य होते हैं और उसे एक मात्र सुंदर नहीं बनने देते, वैसे ही कलाकार

अथवा कवि की कृति भी विभिन्न प्रभावों के अंतर्गत विकसित होती है। इन प्रभावों का परिणाम भी वैसा ही होता है, जैसा कि वास्तविक जगत के प्रभावों का ;। यहां निकोलाई ग्राविलोविच चेर्निशवस्की ने एक प्रभाव का संकेत किया है। लेकिन यह प्रभाव सपाट प्रक्रिया नहीं होती। हमारी चेतना पर सौंदर्य का प्रभाव एक जैसा ही नहीं होता। एक कलाकार से सौंदर्य के रिश्ते मात्र प्रभावात्मक नहीं होते। प्रभावात्मक आग्रह कला की रचना- प्रेरणा के स्तर पर ही मुख्यतः क्रियाशील होती है।हालांकि उसमें अन्य तत्व भी होते हैं। होता यह है कि एक कलाकर की चेतना में वस्तु की अंतर्निहित संभावना से उपजे प्रभाव का आरोहण-संयोजन होता है। वस्तुतः कला में प्रभाव का अर्थ वस्तु और चेतना के द्वंद्व से गत्यात्मक मनोवृत्तियों के स्फुरण से होता है। एक कलाकार के लिए उसकी कला सामाजिक शून्य/ रिक्तता के बीच की संभावना से पैदा होती है।

अनुच्छेद -२

इवान तुर्गनेव ने अपने उपन्यास 'पूर्ववेला' में सौन्दर्य और अनुभव की एकात्मकता का प्रश्न उठाया है . तुर्गनेव ने अपने एक पात्र के हवाले से कहलवाया है- "यदि सौन्दर्य अनुभूत नहीं तो वह हमारे भीतर कला का स्रोत नहीं बन सकता". बात सही भी है , यदि सौन्दर्य हमारे भीतर कहीं गहरे नहीं उतरा है, तो वह हमारे लिए बेकार है. कहने को तो सभी व्यक्तियों को प्राकृतिक सुन्दरता अच्छी लगती है . पेड़-पौधे का बढ़ना- लहलहाना, पानी का कल-कल , पक्षियों का कलरव, फूलों का खिलना ...किसे नहीं अच्छा लगता. किन्तु प्रश्न यह है कि क्या अच्छा लगना और अनुभूत होना एक ही चीज है? और यदि एक ही चीज है, तब तो सभी के भीतर कला का स्रोत है , किन्तु क्या वाकई ऐसा है? किसी दृश्य का अच्छा लगना और किसी दृश्य का हमारे भीतर बनना ये दो चीजें हैं..दो प्रक्रियाएं हैं .जब हमें कोई दृश्य अच्छा लगता है, तब वह हमारे इन्द्रिय- संस्कार का प्रश्न होता है , किन्तु जब कोई दृश्य हमारे भीतर निर्मित होता है...रचित होता है , तब वह हमारे 'भीतर के रचाव का व्यवस्थापन' होता है. पहली घटना इन्द्रिय-आस्वाद का विषय है, तो दूसरी घटना 'आत्मिक रूपांतरण' की . किसी दृश्य का अच्छा लगना और किसी दृश्य का अनुभूत हो जाना, इसीलिए दो घटना, दो दृश्य, दो तथ्य, दो स्थितियां...बन जाती हैं. कोई घटना, कोई दृश्य हमारी अनुभूति का विषय तभी बनता है, जब हम वास्तविक रूप से दृश्य के मूल स्रोतों, उसकी प्रक्रिया तथा उसके प्रभाव को आत्मिक स्तर पर महसूस करते हैं. यहाँ अनुभूति का एक प्रश्न लेखकीय क्षमता और प्रतिभा से जुड़ता है तो दूसरा प्रश्न कला के अनुशासन से ....एक ओर सौन्दर्य की सार्वभौमिकता उसे वस्तुनिष्ठ रूप प्रदान करती है तो दूसरी ओर अनुभव का धरातल उसे आत्मनिष्ठता प्रदान करता है. रस निष्पत्ति की प्रक्रिया में रस को 'सहृदय' में स्वीकार किया गया है, इसलिए इस सम्बन्ध में प्रश्न का औचित्य तो नहीं ; किन्तु हम तो उस धरातल पर विचार करने का आग्रह कर रहे हैं, जहाँ आकर सौन्दर्य निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ होती है. रस सहृदय में अवस्थित है, यह तो ठीक है किन्तु यह स्वयं में कैसे निर्मित होता है? एक कला[सौन्दर्य] की निर्मिति कैसे होती है? यह प्रश्न महत्वपूर्ण है. तुर्गनेव जिस अनुभूति की बात कर रहे हैं, उसे भारतीय काव्यशास्त्र के रस- निष्पत्ति एवं साधारणीकरण – सहृदय के सामानांतर रख कर समझा जा सकता है. भारतीय

साहित्यशास्त्र मूलतः प्रभावात्मक रहा है, भारतीय दर्शन की तरह. 'रसो वै स:' कहने से भले ही रस की अलौकिकता, ब्रह्मतत्व सिद्ध होता हो , किन्तु उससे रस- निर्माण की प्रक्रिया पर कोई खास प्रकाश नहीं पड़ता. भारतीय साहित्यशास्त्र में काव्य के प्रभाव का ही वर्णन प्रमुखत: हुआ है. रस निष्पत्ति प्रक्रिया में भी अनुभूति और सौन्दर्य के प्रभाव का ही वर्णन है. दरअसल सौन्दर्य के दो पक्ष हैं. एक, उसका मूल यानी सौन्दर्य के रचाव, निर्माण की प्रक्रिया तथा दूसरा, उसके अनुभवं की प्रक्रिया. एक कलाकार सौन्दर्य के निर्माण तथा उसकी अनुभूति दोनों पक्षों से जुड़ा होता है|

प्रश्न है सौन्दर्य और अनुभूति के बीच किस प्रकार की प्रक्रिया घटित होती है? या इस सौन्दर्य की अनुभूति किस प्रकार होती है? या यह एक क्रमिक विकास है? एक बच्चा जिन वस्तुओं को देख-सिनकर आह्लादित होता है...वैसा ही हमेशा नहीं चला करता. एक कार्टून देख बच्चा खुश हो सकता है, कोई प्रौढ़ व्यक्ति नहीं.कहने का अर्थ है कि सौन्दर्य के निर्माण- प्रक्रिया में व्यक्ति का मानसिक-वैचारिक वार्धक्य संयुक्त होता है..साथ ही इस प्रक्रिया में आत्मिक विस्तार भी होता है.एक सामान्य व्यक्ति जिस प्रकार इन्द्रिय-आस्वाद के वशीभूत सौन्दर्य की तलाश करता है, वैसा एक कलाकार नहीं करता.एक कलाकार की दृष्टि में सौन्दर्य जीवन के उन रागों , गतियों , गत्यात्मक संवेदनों में अवस्थित होता है...और वहीँ उसकी खोज वह करता भी है. कई बार यह भ्रम भी हो जाता है कि नदी,पेड़,तालाब, झरने,चाँद-तारे,सूर्य, बादल...जैसे प्राकृतिक उपादानों पर जब एक साहित्यकार लिखता है...दृष्टि डालता है, तो वह इन्द्रिय-आस्वाद की ग्रहणशीलता के आग्रह से...किन्तु ऐसा होता नहीं. एक कलाकार का इन्द्रिय संवेदन किसी दृश्य-स्थिति के प्रति मात्र आरंभिक उपादान तक ही सीमित होता है. वह उसका प्रस्थान हो सकता है, गंतव्य नहीं. चंद्रमा की सुन्दरता एक सामान्य व्यक्ति के लिए इन्द्रिय-आस्वाद का विषय हो सकती है किन्तु एक कलाकार के लिए मानवीय अनुभूति के किसी एक पक्ष [शीतलता, कुरूपता, पूंजीवादी सौन्दर्य का प्रतिमान...] का द्योतक भी हो सकता है.कहने का अर्थ यह है कि सौन्दर्य का प्रश्न वैचारिकता से अनिवार्य रूप से जुदा हुआ है.विचार की पुष्टि संवेदना की ही पुष्टि का ही दूसरा रूप है. गहरे विचारों की घनीभूतता संवेदना को व्यापकत्व प्रदान करती है तो गहरे संवेदना की घनीभूतता विचार को गहराई. पश्चिमी दर्शन जगत जब ज्ञान और अनुभव के द्वंद्व में उलझा हुआ था , उसके बहुत पूर्व ही साहित्यकारों ने अपने निष्कर्ष स्थिर कर लिए थे. साहित्य अनुभव को ज्ञान बनाने का लालित्यपूर्ण उद्योग है. अनुभव और ज्ञान के इसी बिंदु के बीच सौन्दर्य का जन्म होता है. सौन्दर्य ज्ञान का अनुभूति में ढलाव है. जब तक ज्ञान अनुभूति का विषय नहीं बनता, तब तक वह दार्शनिक प्रत्यय मात्र है, किन्तु जब वह अनुभूति के धरातल पर उतरता है, तभी वह सौन्दर्य का रूप ले पाता है. इसीलिए तो ज्ञानी-से-ज्ञानी व्यक्ति भी सौन्द्रयवान होगा, यह तय नहीं...अनिवार्य नहीं|

सौन्दर्य की अनुभूति का प्रश्न बेहद संश्लिष्ट है. पश्चिमी साहित्यशास्त्र में सौन्दर्य को बाह्य रूप में ही प्रधानत: स्वीकार किया गया है. भारतीय साहित्यशास्त्र के मतों से हम परिचित ही हैं. प्रश्न है कि क्या दोनों दृष्टियाँ इकहरी नहीं हैं? क्या सौन्दर्य को हृदय के भीतर मान लेना उचित होगा? रस के सन्दर्भ में क्या व्यक्तिगत रचना का प्रश्न मूल रूप में उपस्थित है? क्या सौन्दर्य शाश्वत प्रत्यय है और रस व्यक्तिक

? जाहिर है कि कला का सम्बन्ध व्यक्तिक रचना या रचना की केन्द्रीयता पर निर्भर नहीं करता. यानी सौन्दर्य ग्रहीता के हृदय में।

अभ्यास प्रश्न) 1

सत्य/ असत्य का चयन कीजिए|

1. लिरिकल वैलेडस रोमेंटिक कविता आंदोलन का घोषणा पत्र माना जाता है|

2. पल्लव की भूमिका के लेखक सुमित्रा नंदन पंत हैं|

3. नंददुलारे बाजपेयी को सौंदर्य वादी आलोचक कहा गया है|

अनुच्चेद -३

आज एक प्रिय मित्र से सौंदर्य और वस्तुनिष्ठता के प्रश्न पर बातचीत हुई। मित्र ने सौंदर्य को आत्मनिष्ठ रूप में देखने की प्रवृत्ति का विरोध किया। उसके अनुसार सौंदर्य वस्तुनिष्ठ है। सामान्य स्थिति में हम सौन्दर्य को , रस को आत्मनिष्ठ रूप में देखने के अभ्यासी हैं। इसका कारण यह रहा है कि दर्शन पर आधारित भारतीय काव्यशास्त्र का सहृदय सिद्धांत रस की स्थिति सहृदय में मानता। अर्थात रस या सौंदर्य वस्तु में नहीं व्यक्ति में है या वस्तुनिष्ठ नहीं आत्मनिष्ठ है। एक ढंग से देखें तो यह सिद्धांत मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है। जब हम प्रसन्न होते हैं, तब हमें सभी चीजें अच्छी लगने लगती हैं, सूखकर लगने लगती हैं। इसी प्रकार भारतीय साहित्य शास्त्रियों की यह मान्यता कि रस तो व्यक्ति में रहता है... जैसे सुगंध मिट्टी के भीतर रहती है और जल की बूंदें पड़ने के उपरांत वह बाहर आ जाती है, प्रकट हो जाती है...उद्भूत हो जाती है। अर्थात रस तो व्यक्ति के भीतर रहता है और आश्रय, आलंबन और उद्दीपन के संयोग से रस निष्पत्ति तक पहुंचता है। इस मान्यता के अपने निहितार्थ हैं...तार्किकता है ... अपनी दृष्टि है। किंतु क्या सौंदर्य और रस को एक ही समझा जाए? सौंदर्य वस्तु के प्रति व्यक्ति के भीतर उपस्थित लालित्य है। इस ढंग से उसका आश्रय तो व्यक्ति का चित्त है, किन्तु सौंदर्य के जिस बोध की उत्पत्ति हम करते हैं, वैसा ही बोध दूसरे व्यक्ति भी करते हैं। इस ढंग से उसमें सार्वभौमिकता का गुण पाया जाता है। नदी, तालाब, झरने, समुद्र या प्रकृति सभी को अच्छे लगते हैं। यहां व्यक्ति की रुचि का सिद्धांत खंडित हो जाता है। क्रूर से क्रूर व्यक्ति भी पुष्प को देखकर आनन्दित ही होता है। पाषाण हृदय मनुष्य भी नवजात शिशु को देखकर आह्लादित ही होता है। अर्थात सौंदर्य के प्रति मनुष्य की प्रतिक्रिया भले ही एक समान न होती हो, किन्तु सौंदर्य का आस्वाद एक ही ढंग से होता है। यदि सौंदर्य व्यक्तिनिष्ठ होता तो सौंदर्य का आस्वाद भी व्यैक्तिक ढंग से क्रियाशील होता, किन्तु ऐसा नहीं होता। रस की स्थिति मनुष्य में होना और सौंदर्य का आस्वाद , एक ही स्थिति नहीं है। वस्तु पक्ष की भिन्नता और परिस्थिति के अंतर से हमारी प्रतिक्रिया या हमारा आस्वाद भी प्रभावित-परिवर्तित होता है। साहित्य शास्त्री जिसे आलंबन, उद्दीपन समझते हैं, उसे ही वस्तु-पक्ष समझा जाना चाहिए। वस्तु-पक्ष इस दृष्टि से मात्र उद्दीपन-रूप नहीं रह जाता, अपितु वह मनुष्य की चेतना-निर्मिति का एक भाग , अंग, कारक बन जाता है। यदि हम रस की स्थिति (स्थिर रूप में) सहृदय या व्यक्ति में मांन लेते हैं , तब बाह्य यथार्थ, परिस्थिति या विचार को द्वितीयक या गौण मानते हैं। यहां स्पष्ट रूप से रस की स्थिति

और रस-प्रक्रिया में भेद करने की आवश्यकता है। रस की स्थिति सहृदय में हो, यह तो काम्य है; किन्तु रस-प्रक्रिया की स्थिति वस्तुगत- नियमों से संचालित होती है। अर्थात सौंदर्य कोई स्थिर मानक नहीं है, यह परिवर्तित-परिवर्द्धित-परिष्कृत होता चलता है। इसलिए सौंदर्य आत्मनिष्ठ नियमों का अतिक्रमण भी करता रहता है। आत्मनिष्ठता यदि कहीं है तो इस ढंग से कि सौंदर्य ग्रहण करने की प्रक्रिया व्यक्ति के स्तर पर अलग ढंग से क्रियाशील होती है। यानी वस्तु पक्ष की व्यैक्तिक प्रतिक्रिया । आत्मनिष्ठ प्रतिक्रिया। ऊपर हमने कहा कि सौंदर्य का आस्वाद एक ही ढंग से होता है। यहां हसमें प्रक्रिया और प्रतिक्रिया के अंतर को समझना चाहिए। सौंदर्य की प्रक्रिया वस्तुनिष्ठ नियमों से संचालित होती है और सौंदर्य के प्रति प्रतिक्रिया आत्मनिष्ठ ढंग से। सुंदर दृश्य, सुंदर विचार हमें आकृष्ट करते हैं। कला हमें आकृष्ट करती है। यह आकृष्ट होना व्यक्तिक स्तर पर मात्र इसलिए लगता है कि क्योंकि हम कला के प्रति व्यैक्तिक प्रतिक्रिया को महत्व देते हैं। यानी कला के स्तर पर यह प्रक्रिया वस्तुनिष्ठ होती ही। यही कारण है कि सौंदर्य वस्तु में नहीं, वस्तुनिष्ठता में होती है। यदि सौंदर्य वस्तु में होता तो व्यक्ति रुचि के अनुसार हर वस्तु सुंदर या कुरुप हो जाती । इसीलिए सौंदर्य वस्तुनिष्ठता में है। यहां आकर हम सौंदर्य की वस्तुनिष्ठता की व्याख्या कर सकते हैं। मनुष्य के भाव एक व्यापक संयोजन की मांग करते हैं। एक ख़ास बिंदु पर आकर मनुष्य की मनोवृत्तियां संयोजित होती हैं। उस ख़ास बिंदु पर मनोवृत्तियों का संयोजन घनीभूत होता है। यह संयोजन ही सौंदर्य को जन्म देता है। किसी वस्तु, व्यक्ति, विचार या दृश्य को देख हमारी मनोवृत्तियां गतिशील हो उठती हैं...हम उन विचारों, वस्तु या व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्ण बिंदुओं-क्रियाओं तक पहुँचना चाहते हैं। इन क्रिया-बिंदुओं टास्क पहुंच हम आनंदित होते हैं। प्रायः हमें लगता है कि हम।किसी दृश्य को देखकर आनंदित होते हैं... किसी सुंदर स्त्री की सुंदरता हमें आकृष्ट करती है... किन्तु यह स्थूल कारण है। किसी सुंदर स्त्री को देखना एक क्रिया है, किन्तु उस सुंदर स्त्री के प्रति हमारी आवेगात्मक प्रतिक्रिया ही सौंदर्य को जन्म देती है। एक स्त्री का सुंदर लगना प्राकृतिक है, किन्तु जब जब उस उस उस स्त्री के बहाने हमारी आंतरिक वृत्तियों में संयोजन स्थापित हो जाता है, तब हमारे भीतर सौंदर्य का जन्म होता है। यानी व्यापक रूप में सौंदर्य वस्तुनिष्ठ होता है|

सौंदर्य और वस्तुनिष्ठता के प्रश्न को सौंदर्य आस्वाद की प्रक्रिया के रूप में देखना उचित होगा। सौंदर्य आस्वाद की प्रक्रिया व्यक्ति के स्तर पर घटित होती है। किसी समूह या समाज के स्तर पर नहीं। किसी नाटक या फ़िल्म को देखते समय समूह की भूमिका भी क्रियाशील होती है। नाटक या फ़िल्म को देखने पर समूह में ज़्यादा आनंद की अनुभूति होती है, कारण यह कि यह क्रियात्मक विधाएं हैं। क्रिया में समूह का प्रवेश होता ही है या प्रभावी भूमिका होती है। किंतु स्मरण रखें कि सामूहिक विधाओं (नाटक, फ़िल्म) में समूह की भागीदारी से रस में तीव्रता आती है न कि रस की निष्पत्ति होती है। स्मरण रखें कि सौंदर्य आस्वाद की प्रक्रिया व्यक्ति के स्तर पर घटित होती है। किसी रचना को पढ़कर , किसी कलाकृति को देखकर समूह के सारे व्यक्ति आनंद के उसी धरातल पर नहीं पहुंच पाते... सौंदर्य आस्वाद भले ही एक पद्धति से होता हो, किन्तु उनमें एकरूपता या एक समान क्रमिकता नहीं होती। किसी रचना/कला के प्रति हमारे आस्वाद की गति एक समान नहीं होती। कोई रचना किसी पाठक को किस

धरातल पर सन्तुष्ट कसरती है (सौंदर्य आस्वाद की प्रक्रिया पूर्ण करती है) ? यह कहना आसान नहीं है। एक पाठक से दूसरे पाठक के बीच मानसिक अंतराल का सिद्धांत कार्य किया करता है। फलत: सौंदर्य आस्वाद की प्रक्रिया में भी अंतर का आ जाना स्वाभाविक है। इसी अन्तर के कारण लोग सौंदर्य को आत्मनिष्ठ रूप में देखते रहे हैं।

सौंदर्य किसी विचार या वस्तु के प्रति व्यक्ति के भीतर घटित रचनात्मक परिवर्तन है। किसी विचार के सामने आने से , किसी दृश्य के सामने आने से, किसी रचना को पढ़ने से या किसी कलाकृति को देखने से हमारे भीतर पूर्व के संचित भाव-विचारों के प्रति अनासक्ति उत्पन्न होती है। हम उन पूर्व के दृश्यों-विचारों को नए ढंग से देखने के लिए प्रस्तुत होते हैं। पूर्व के संचित विचार और नए बोध के बीच द्वंद्व की स्थिति उत्पन्न होती है। नए विचार पूर्व के विचारों को संशोधित-परिवर्द्धित करते हैं। यह संशोधन-परिवर्द्धन ही सौंदर्य का आधार बनता है। जड़ चीजों -विचारों में सौंदर्य नहीं होता। सौंदर्य नवीनता में ही सम्भव है। इसीलिए किसी वस्तु-विचार के प्रति आवेगात्मक प्रतिक्रिया सौंदर्य को जन्म देती है। यानी सौंदर्य के लिए वस्तु या विचार की सत्ता आवश्यक है। अमूर्तता में सौंदर्य नहीं होता। सौंदर्य की इस प्रक्रिया में व्यक्ति और वस्तु (विचार- कला) दोनों की भूमिका होती है। चूंकि सौंदर्य का उद्घाटन व्यक्ति के स्तर पर होता है, इसलिए उसे आत्मनिष्ठ रूप में देखा जाता है, किन्तु यह एकांगी दृष्टि है। उद्घाटन के स्तर पर सौंदर्य आत्मनिष्ठ तथा वस्तु स्थिति या प्रक्रिया के स्तर पर वस्तुनिष्ठ है। किसी कलाकृति का... कला का कथ्य , एक वैज्ञानिक-संरचनात्मक नियमों से संचालित होता है। कोई कला भावक के अनुसार अपने स्वरूप में परिवर्तन नहीं करती। होता यह है कि भावक कला में अपनी दृष्टि का आरोपण करता है। किसी कलाकृति के प्रति भावक की मानसिक (वैचारिक-भावात्मक प्रतिक्रिया) यात्रा चलती रहती है। एक ढंग से इसे वस्तु निष्ठ कला का आत्मिक रूपांतरण कह सकते हैं। वस्तु निष्ठता की व्यक्तिक अनुभूति। इसलिए अनुभूति के स्तर पर सौंदर्य को हम आत्मनिष्ठ प्रतिक्रिया भले मान लें, किन्तु रचना प्रक्रिया और आस्वाद की दृष्टि से इसे वस्तुनिष्ठता ही माना जा सकता है।

14.4.2 सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना: प्रमुख प्रवृत्ति

1. सौंदर्य शास्त्रीय आलोचना को शुद्ध साहित्यिक, रसवादी व कलावादी आलोचना के सन्दर्भ में विश्लेषित किया जाता रहा है|

2. नवीन साहित्यिक आंदोलन से सम्बद्ध आलोचना के तौर पर सौन्दर्य शास्त्रीय आलोचना को स्वीकार किया जाता रहा है| हिंदी में छायावाद, प्रयोगवाद व विमर्श केंद्रित आलोचना को इसके अंतर्गत रखा जा सकता है|

3. सौंदर्य शास्त्रीय आलोचना को ऐतिहासिक सन्दर्भ में भी देखा जाता रहा है| खासतौर पर क्लासिक वृत्तियों से विचलन के अर्थ में|

4. मनोवैज्ञानिक आलोचना का एक सिरा सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना से जुड़ा हुआ है |

5. शैली वैज्ञानिक, मिथकीय आलोचना भी सौंदर्य शास्त्रीय आलोचना के भाग हैं |

6. सांस्कृतिक आलोचना का एक सिरा सौंदर्य शास्त्रीय आलोचना से जुड़ता है |

अभ्यास प्रश्न)२
टिपण्णी कीजिए
सौन्दर्य

.....
.....
.....

वस्तुनिष्ठता

.....
.....
.....

सौन्दर्यशास्त्रीय आलोचना

.....
.....
.....

14.4.3 सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना: कुछ स्थापनाएं

सौंदर्य शास्त्रीय आलोचना में हमने देखा कि यह कई प्रकार की साहित्यिक दृष्टियों से मिलकर बनती है| यहाँ हम संक्षेप में सौंदर्य शास्त्रीय आलोचना के कुछ प्रमुख बिंदुओं की ओर संकेत करेंगे|

1. सौंदर्य शास्त्रीय आलोचना के केंद्र में भी जीवन है| बहुत बार हम कला, कला के लिए जैसे कलावादी आंदोलन व शुद्ध कलावादी समीक्षक को हम सौन्दर्य वादी आलोचक के रूप में देखते हैं, किंतु यह दृष्टि उचित नहीं है|

2. सौंदर्य शास्त्रीय आलोचना में मानसिक विकास व प्रक्रिया को बहुत महत्त्व दिया गया है| सौंदर्य में प्रभाव का बहुत महत्त्व होता है| यदि मानसिक विकास की स्थितियों पर हमारा ध्यान न हो तो हम प्रभावादी हो उठेंगे| इसलिए सौंदर्य शास्त्री आलोचना मानसिक विकास व प्रक्रिया को बहुत महत्त्व देतीं है|

3. सौंदर्य चेतना का संबंध गहरी भावना से है| हृदय की गहरी भावनाएँ यदि उदात्त हों तो वे सौंदर्य में ढल जाती हैं| यही कारण रहा है कि रोमेंटिक वृत्तियों से सौंदर्य शास्त्रीय आलोचना का गहरा जुड़ाव रहा है|

4. हृदय की गहरी भावनाएँ हमारे भीतर एक चेतना निर्मित करती हैं| यह चेतना शुद्ध होती है| बिना सच्ची भावनाओं के सौंदर्य मूलक चेतना उत्पन्न हो ही नही सकती|

5. हृदय की सच्ची भावनाएँ व उनसे उत्पन्न भाव व चेतना की कुशल अभिव्यक्ति ही सौंदर्य को जन्म देती है| लेकिन यह अभिव्यक्ति सौंदर्य चेतना का प्राक स्वरुप है|

6. सफल अभिव्यक्ति या अभिव्यँजना के द्वारा ही सौन्दर्यआनुभूति संपन्न होती है|

14.5 सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना: मूल्यांकन

सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना को हिंदी आलोचना में पर्याप्त महत्त्व नहीं दिया गया है | बावजूद कि सौंदर्य शास्त्रीय आलोचना एक महत्वपूर्ण आलोचना पद्धति रही है | छायावाद को भी सौंदर्यवादी आलोचना कहा गया है, किंतु सौंदर्य शास्त्रीय आलोचना थोड़ी भिन्न आलोचना परम्परा रही है | सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना के केंद्र में ललित कलाओं के साथ सौंदर्य की वस्तुनिष्ठता भी रही है |

14.6 सारांश

हिंदी आलोचना सम्बन्धी यह 14 वीं इकाई है | इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि -

* सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना मात्र अमूर्त आलोचना नहीं है |
* सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना प्रभाववादी आलोचना के क़रीब है, किंतु यह मात्र प्रभाववादी आलोचना नहीं है |
* सौंदर्यवादी आलोचना के केंद्र में ललित कलाएं रही हैं |
* सौंदर्य वस्तुनिष्ठ भी होता है | यह आलोचना इस तथ्य को पुष्ट करता है |

14.7 शब्दावली

आत्मवादी - किसी वस्तु व चेतना को स्व पर पड़ा प्रभाव
वस्तुनिष्ठ - वस्तु, चेतना को सार्वभौमिक रूप में देखने की पद्धति
रस निष्पत्ति - रस को ग्रहण करने की पद्धति
सहृदय - कविता को ग्रहण करने वाला भोक्ता
गात्यात्मक - जीवन को गतिशील करने वाली चेतना

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- सत्य
2-सत्य
3- सत्य

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. सौन्दर्यशास्त्रीय आलोचना- एम. टी. नरसिहाचारी

14.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

अर्थात सौन्दर्य जिज्ञासा- रमेश कुंतल मेघ

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

सौन्दर्यशास्त्रीय आलोचना की प्रमुख स्थापनाओं को वर्णित कीजिये